गांधी-श्रद्धांजलि-ग्रंथ

——देश-विदेश के विद्वानो एव लोक-नेताओ की श्रद्धांजलियाँ——

सम्पादक

सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

१९५५

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

पहली बार १९५५
मूल्य
तीन रुपये

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक में गाधीजी के निधन पर देश-विदेश के चिन्तको एव लोक-नेताओं द्वारा अर्पित की गई कुछ चुनी हुई श्रद्धाजलियो का सग्रह है। अमरीका के सुप्रसिद्ध पत्रकार लुई फिशर ने अपनी पुस्तक 'गाधी की कहानी' में लिखा है कि ससार के शायद ही किसी महापुरुष की मृत्यु पर इतना गहरा और इतना व्यापक शोक प्रकट किया गया हो, जितना गाधीजी की मृत्यु पर। जिन्हें गाधीजी के दर्शन का अवसर मिला था, उनके मुँह से तो आह निकली ही, जिन्होने उन्हें कभी नहीं देखा था, उनकी भी आँखें डबडबा आई। इस विश्व-व्यापी वेदना का कारण यह था कि गाधीजी ने समूची दुनिया के सुख-दु ख के साथ अपनेको एकाकार कर दिया था, मानव मानव के बीच उनके लिए भेद न था। वह मानवता के लिए जिये और उसीके लिए उन्होने अपने प्राणो का उत्सर्ग कर दिया।

गाधीजी भारत में जन्मे थे, लेकिन उनकी करुणा, सहानुभूति और कार्य इस देश की परिधि तक ही सीमित नहीं थे। जहां भी उन्होने अन्याय, अत्याचार अथवा शोषण देखा, वहींपर उन्होने अपनी आवाज ऊँची की।

शाति की दृष्टि से तो वह बुद्ध, महावीर और ईसा की परम्परा के थे। दुनिया के सामने उन्होंने अपने आचरण तथा राष्ट्रीय प्रयोग के द्वारा यह सिद्ध करके दिखा दिया कि वास्तविक शाति अस्त्र-शस्त्रो के बल पर स्थापित नहीं हो सकती। उन्होने यह भी प्रमाणित कर दिया कि सबसे बडा बल आत्मिक बल है और उसके आगे कोई भी ताकत नहीं ठहर सकती।

ऐसे विलक्षण मानव के प्रति दुनिया के कोने-कोने से श्रद्धाजलियां अर्पित की गई तो यह स्वाभाविक ही था। यदि उन सब श्रद्धाजलियो को प्रकाशित किया जाय तो कई जिल्दें भर जायगी। इस पुस्तक में कुछ ही श्रद्धाजलियां सगृहीत की जा सकी है। इनका चुनाव और सम्पादन सुविख्यात चिन्तक डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने किया है। इन श्रद्धाजलियो का अपना महत्त्व है। इनमें भावभरे उद्गार तो प्रकट किये ही गए है, साथ ही गाधीजी की महानता और उनके कार्यो की विश्व-व्यापी उपयोगिता पर भी प्रकाश डाला गया है।

हिन्दी में 'गाधी-अभिनन्दन-ग्रंथ' से पाठक भलीभाँति परिचित है। उसमें गाधीजी के सिद्धान्तो और प्रवृत्तियो का विवेचन करते हुए उनके प्रति भावनापूर्ण उद्‌गार प्रकट किये गए है। इस ग्रथ में भी उनके सिद्धातो और कार्यो पर प्रकाश डाला गया है, साथ ही उनके प्रति श्रद्धाजलिया भी अर्पित की गई है। दोनो ही ग्रंयो में बड़ी मूल्यवान् सामग्री है। अतर केवल इतना है कि अभिनंदन-ग्रंथ गाधीजी के जीवन-काल में उनकी बहत्तरवी वर्षगाठ के अवसर पर निकला था; श्रद्धांजलि-ग्रथ उनके बलिदान के बाद प्रकाशित हो रहा है।

आशा है, इस ग्रंथ को भी वही लोकप्रियता और आदर प्राप्त होगा, जो 'गाधी-अभिनन्दन-ग्रंथ' को प्राप्त हुआ है।

—मत्री

विषय-सूची

परिशिष्ट

गांधी-श्रद्धांजलि-ग्रंथ

बापू अनत निद्रा में

गांधी-श्रद्धांजलि-ग्रंथ

: १ :

मानव-जाति को गांधीजी का संदेश

सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

सभ्यता स्वप्न पर आधारित है। इसके नियम और रूढ़िया, इसकी जिन्दगी के तरीके और दिमागी आदते स्वप्न पर ही सतुलित है। जबतक स्वप्न का जोर है, सभ्यता आगे बढती है, जैसे ही स्वप्न टूटता है, सभ्यता भी गिरने लगती है। जीवन जब वस्तुओ के कोलाहल मे घिर जाता है, दुनिया के अहकार और उनकी भूले जब हमें घेर लेती है, अपने चारो ओर जब हम अस्वाभाविक इच्छाओ और विनाशकारी शक्तियो के खूनी खेल देखते है और जब इन सबका कोई उद्देश्य नजर नही आता तो उस समय हम मानवीय स्थिति की परीक्षा करके यह जानना चाहते है कि आखिर गलती है कहा ? यद्यपि गत महायुद्ध ने हमे सचेत कर दिया है कि हमारी वर्तमान सभ्यता क्षणभगुर है और यदि वैज्ञानिक कौशल मे सबद्ध मनुष्य की आज की लालसा को रोका न गया तो यह सभ्यता कभी भी छिन्न-भिन्न हो जायगी। परन्तु जिस दिशा की ओर मानव-इतिहास बढ रहा है उस दिशा के बदलने की आवश्यकता के विषय में हम दुविधा और भ्रम मे पडे है। जब कभी कोई ऐसी देवात्मा, जो अपने वातावरण के बधनो से मुक्त है, जिसका हृदय दु खी मानवता के लिए समवेदना और दर्द से भरा है, हमारे सामने आकर सघर्ष और प्रतियोगिताओ से, वर्ग-भेद और युद्धो की भरी आज की दुनिया से विमुख होकर उन्नति के उस मार्ग की ओर इशारा करता है, जो सकरा और दुष्कर है, तो हमारे अन्तर का मानव प्रकट होकर इसका अनुसरण करती है। भूख में डूबी और समय के छल-फरेब मे घिरी दुनिया मे गाधीजी ने ईश्वरीय सत्यता के अमर सिद्धान्तो और मानव-प्रेम को ही उचित मानव-सबधो की स्थापना के लिए एकमात्र आधार बताया है। उनके जीवन और सदेश मे सभ्यता के उस स्वप्न को हम साकार

होते देखते है। उनके निर्माण मे शताब्दिया गुजरी और उनकी जडे युगो तक फैल गई है। ऐसी दशा मे युग-दुर्लभ और अद्‌भुत आत्मा की मृत्यु का समाचार सुनकर दुनिया का भय से कपित और दु ख से कातर हो उठना कोई आश्चर्य की वात नही थी। राष्ट्रपति ट्रूमैन ने कहा था, "मनुष्यो मे से एक देव उठ गया। यह कृशकाय छोटा-सा व्यक्ति अपनी आत्मा की महानता के कारण मनुष्यो मे देव था।" अपने-अपने क्षेत्र मे वडे और महत्त्वपूर्ण व्यक्ति भी उनके निकट खडे होने पर छोटे और तुच्छ दिखलाई पडते थे। उनकी आत्मा की गहरी सच्चाई, घृणा और द्वेष से उनका मुक्त रहना, अपने पर पूर्ण अधिकार, मित्रतापूर्ण सबको मिलानेवाली उनकी करुणा और इतिहास की अन्य महान हस्तियो के समान आत्मपतन के आगे शरीर के वलिदान को नगण्य माननेवाला वह विश्वास, जिसको उन्होने कई वार वडी नाटकीय परिस्थितियो में सफलतापूर्वक कसौटी पर कसा, आदि गुण ही आज जीवन की इस अन्तिम परिणति मे जीवन पर धर्म की, विश्व की वदलती समस्याओ पर अमर गुणो की जीत के द्योतक है।

साधारणतया जिसे धर्म कहा जाता है वही उनके जीवन की प्रेरणा थी, किन्तु धर्म का अर्थ उनकी दृष्टि मे मत विशेष के प्रति आग्रह अथवा शास्त्रोक्त पूजा-उपासना के व्यवहार तक ही सीमित न था, वरन् धर्म का उनका अर्थ था सत्य, प्रेम और न्याय के मूल्यो मे अडिग और अगाध श्रद्धा तथा उन्हें इसी दुनिया में प्राप्त करने का सतत प्रयत्न। लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व मैने धर्म के विषय मे उनकी राय पूछी थी। उन्होने उसे इन शब्दो मे व्यक्त किया था—"मै अपने धर्म को प्राय सत्य का धर्म कहता हूँ। अभी पिछले दिनो से 'ईश्वर सत्य है' यह कहने के वजाय 'सत्य ही ईश्वर है' ऐसा मै कहने लगा हूँ, ताकि मै अपने धर्म की अधिक व्यापक व्याख्या कर सकू। सत्य के अतिरिक्त अन्य और कोई भी चीज मेरे ईश्वर की इतनी पूर्णता के साथ व्याख्या नही करती। परमात्मा का निषेध हमने सुना है, पर सत्य का निषेध कोई नही करता। मनुष्य-जाति में मूर्खतम लोग भी अपने भीतर सत्य का कुछ प्रकाश रखते है। हम सब सत्य के ही ज्योति-कण है। इन ज्योति-कणो का यह सयुक्त रूप अवर्णनीय है, क्योकि सत्य का ईश्वरीय रूप हम अभीतक नही समझ पाये है। निरन्तर उपासना से इसके निकटतर पहुँच अवश्य रहा हू।"

'सत्य-ज्ञान अनन्त ब्रह्म' अर्थात् सत्य ज्ञान ही अनन्त ब्रह्म है, ऐसा उपनिषदो में भी कहा गया है। परमात्मा सत्यनारायण अर्थात् सत्य का स्वामी है।

गाधीजी कहा करते थे, "मै केवल सत्य की खोज करनेवाला हू और उसतक पहुचने के रास्ते को पाने का मै दावा कर सकता हू। उसे पाने के लिए मै सतत प्रयत्नशील हू, यह भी कह सकता हू। सत्य को पूरी तरह से प्राप्त करने का अर्थ है अपने आप को और अपने प्रारब्ध या उद्देश्य को पा लेना। दूसरे शब्दो में पूर्ण हो जाना। मुझे अपनी अपूर्णता का दु खद ज्ञान है और सचमुच यही मेरी सारी शक्ति है। मै यह बिलकुल भी दावा नही करता कि मुझमे कोई दैवी शक्ति है, और न उसकी मै इच्छा करता हू। मै भी वही दूषित होने योग्य चोला पहने हू जो मेरा कोई भी ज्यादा-से-ज्यादा कमजोर भाई पहने है, और इसीलिए दूसरे लोगो की तरह मै भी भूल कर सकता हू।" प्रार्थना, उपवास एव प्रेम के अभ्यास द्वारा गाधीजी ने अपनी पार्थिव असबद्धता और प्रकृति की चचलता पर विजय प्राप्त करने का तथा ईश्वरीय कार्य के लिए अपने को अधिक योग्य साधन बनाने का प्रयत्न किया। उनका विश्वास था कि अपने श्रेष्ठतम रूप मे सभी धर्म मानव की पूर्णता के लिए समान सयम और अनुशासन की व्यवस्था देते है।

वेद, त्रिपिटक, इजील, और कुरान, सभी आत्म-सयम की आवश्यकता पर जोर देते है। हिन्दू ऋषियो, महात्मा बुद्ध और ईसा के जीवन मे प्रार्थना और उपवास का महत्त्व हमें अच्छी तरह ज्ञात है। मुल्लाओ की वह अजान उषा की निस्तब्ध शाति को भग करती हुई पिछली चौदह शताब्दियो से 'अल्लाहो अकबर' 'ईश्वर महान् है' के रूप मे प्रतिध्वनित होकर हमे यह सदेश देती रही है कि सोते रहने से प्रार्थना करना अच्छा है और यह कि हमे अपना दैनिक कार्य ईश्वर के चिन्तन से ही प्रारम्भ करने चाहिए। इस्लाम के अनुयायी को दिन मे पाच बार नियत समय पर निश्चित शब्दो और नियत ढग से नमाज पढनी होती है और वर्ष मे एक बार रमजान के महीने मे सूर्योदय से सूर्यास्त तक बिना किसी प्रकार का कुछ भोजन किये उपवास करना होता है।

गाधीजी का यह विश्वास था कि, "सब धर्मो का लक्ष्य एक ही है। अभ्यान्तर जीवन, ईश्वर मे आत्मा का जीवन, ही एक महान् सत्य है। शेष सबकुछ बाह्य है। हम धर्म को नही, धर्म के सहायक अगो को अधिक महत्त्व देते है। आत्मा में प्रतिष्ठित भगवान के मदिर को नही, उन खभो और पुश्तो को अधिक महत्त्व देते है, जो मदिर को गिरने से बचाने के लिए बनाये गए है। धर्म के उपाग बाह्य परिस्थितियो से निर्मित होते है और किसी जाति की परम्परा इन्हे अपने अनुरूप ढाल लेती है।

हिन्दू धर्म-शास्त्र 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के कर्त्तव्य पर जोर देते है। वाह्य प्रमाणो के आधार पर फैसला न करते हुए उनके मूल्य को स्वीकार करने की बात कहते है। भारत ने आत्मेच्छा और यहा बसकर भारतीय सस्कृति की वृद्धि मे योग देने-वाली जातियो की विभिन्न जीवन-पद्धतियो को कभी कुचलने की कोशिश नही की। गाधीजी हमारा ध्यान युगो पुरानी भारत की उस परम्परा की ओर आकृष्ट करते है जिसने हमे केवल सहिष्णुता का सबक ही नही पढाया, वरन् सभी धर्मो का अगाध आदर करना भी सिखाया है। साथ-ही-साथ उन्होने हमें इस बात से भी साव-धान किया है कि कही उस विरासत को, जो पीढियो से हमारे पुरखो ने विशेष त्याग और उद्योग के साथ हमारे लिए तैयार की है, हम गवा न बैठे। जब उनसे हिन्दू धर्म की परिभाषा पछी गई तो उन्होने कहा—"यद्यपि मै एक सनातनी हिन्दू हू, तो भी मै हिन्दू धर्म की व्याख्या नही कर सकता। एक सामान्य मनुष्य की तरह जो धर्म का पडित नही है, मै यह कह सकता हू कि हिन्दू धर्म सब धर्मो को सब तरह से आदर का पात्र समझता है।"[1] गाधीजी कहा करते थे कि "सहिष्णुता मे अपने धर्म की अपेक्षा अन्य धर्मो के प्रति निष्कारण हेयभाव छिपा है, जबकि अहिंसा अन्य धर्मो के प्रति हमे वही आदर करना सिखाती है जो हम अपने धर्म के प्रति करते है और इस प्रकार वे सहिष्णुता की अपूर्णता को स्वीकार करते है।" गाधीजी एकमात्र हिन्दू धर्म की अनन्यता का दावा नही करते थे और इसीलिए वे उसे अन्य धर्मो से ऊपर नही समझते थे।

"मेरे लिए यह विश्वास करना असभव है कि मै केवल ईसाई होकर ही स्वर्ग को जा सकता हू, अथवा मोक्ष प्राप्त कर सकता हू। मेरे लिए यह मानना भी उतना ही कठिन है कि ईसा ही भगवान् के एकमात्र अवतरित पुत्र है।"[2] सत्य का ईश्वर मे

---

१ हरिजन, १ फरवरी, १९४८, पृष्ठ १३।

२ मि डोक ने एक बार गाधीजी से पूछा, "क्या ईसाइयत का भी आपके धर्मशास्त्र में कोई महत्त्वपूर्ण स्थान है?" गाधीजी ने उत्तर दिया, "यह उसका एक अग है। स्वय ईसा मसीह ईश्वर की एक उज्ज्वल अभिव्यक्ति थे।" मि डोक ने पूछा, "क्या वे इस प्रकार की एक अद्वितीय ज्योति नहीं थे जैसाकि मै समझता हूँ?" गाधीजी ने उत्तर दिया, "उस प्रकार के नहीं जैसाकि आप उन्हें सोचते है। मै उन्हे उस सिंहासन पर अकेले नहीं बिठा सकता, क्योकि मेरा विश्वास है कि ईश्वर ने बार-बार अवतार लिये है।" मि डोक ने पुन कहा, "मुझे संदेह है कि कोई भी

सबध है और विचारो का मनुष्य मे, और इसलिए हम यह निश्चयपूर्वक नही कह सकते कि हमारे विचारो ने पूर्ण सत्य को अपने मे हजम कर लिया है।

हमारे धार्मिक विचार कुछ भी क्यो न हो, हम सब एक शैल-शिखर पर चढना चाहते है और हमारी आँखे उसी एक लक्ष्य की ओर लगी है। हो सकता है कि हम विभिन्न मार्गो का अनुसरण करें और हमारे मार्गदर्शक भी अलग-अलग हो। जब हम चोटी पर पहुँच जाते है तो वहाँतक पहुँचानेवाले रास्तो का कोई मूल्य नही रहता। धर्म में प्रयत्न का विशेष महत्त्व है।

भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है। इस व्याख्या का यह अर्थ कदापि नही कि उसका एकमात्र उद्देश्य जीवन का ऐहिक सुख, सुविधाए और सफलता ही है। इसका अर्थ यह है कि राज्य सभी धर्मो को अपने-अपने मतो के प्रकाशन, अभ्यास और प्रचार के लिए उस समय तक समान और निर्बाध अधिकार देगा जबतक कि उनके विश्वास और आचरण नैतिक सिद्धान्तो का उल्लघन नही करते। सभी धर्मो के प्रति समान व्यवहार के सिद्धान्त मे विविध धर्मानुयायियो पर पारस्परिक सहिष्णुता का दायित्व भी लागू होता है। असहिष्णुता सकीर्णता का प्रतीक है। जनवरी १९२८ मे गाधीजी ने 'अन्तर्राष्ट्रीय बन्धुत्व सघ' के सम्मुख भाषण देते हुए कहा था, "लबे अध्ययन और अनुभव के उपरान्त मै इस निष्कर्ष पर पहुचा हूँ कि (१) सभी धर्म सच्चे है (२) सब धर्मो में कोई-न-कोई खराबी है और (३) सभी धर्म मुझे उतने ही प्रिय है जितना मेरा हिन्दू धर्म। मै अन्य मतो का भी उतना ही आदर करता हूँ जितना अपने मत का। इसलिए मेरे लिए धर्म-परिवर्तन का विचार ही असभव है। अन्य व्यक्तियो के लिए हमारी प्रार्थना यह नही होनी चाहिए, 'हे भगवान्, उन्हे वही प्रकाश दो जो मुझे दिया है', अपितु यह कि 'उन्हें वह प्रकाश और सत्य दो जो उनके श्रेष्ठतम विकास के लिए आवश्यक है।' मेरा धर्म मुझे वह सबकुछ प्रदान करता है जो मेरे आत्मिक उत्थान के लिए आवश्यक है, क्योकि यह मुझे उपासना

धार्मिक पथ क्या इतना विशाल हो सकता है कि जो अपने में उनके व्यापक सिद्धान्तो का समावेश करले या कोई भी चर्च-पद्धति इतनी बडी होगी कि वह उन्हें अपने में बन्द कर सके। यहूदी, ईसाई, हिन्दू, मुसलमान, पारसी, बौद्ध तथा कन्फ्यूसियस के अनुयायी का उनके हृदय में एक पिता की अनेक सतानो के समान स्थान है।" डोक द्वारा लिखित 'दक्षिणी अफ्रीका में एक भारतीय देश-भक्त' (१९०९), नामक पुस्तक के पृष्ठ ९० से।

करना सिखाता है। परन्तु यह भी प्रार्थना करता हूँ कि दूसरे लोग भी अपने धर्म में अपने व्यक्तित्व की चरम सीमा तक उन्नति करे, जिससे एक ईसाई एक अच्छा ईसाई वन सके और एक मुसलमान एक अच्छा मुसलमान। मेरा विश्वास है कि परमात्मा हमसे एक दिन यह पूछेगा कि हम क्या है और क्या करते है, न कि वह नाम जो हमने अपने को, और अपने कामो को दे रखा है।" २१ जनवरी १९४८ को अपने प्रार्थना-प्रवचन के समय गाधीजी ने कहा था, "मैंने वचपन से हिन्दू धर्म का अभ्यास किया है। जव मै छोटा था तो भूत-प्रेतो के डर से वचने के लिए मेरी दाई मुझसे रामनाम लेने को कहती थी। वाद मे मै ईसाइयो, मसलमानो और दूसरे धर्म को माननेवाले लोगो के सपर्क मे आया और अन्य धर्मो का पर्याप्त अध्ययन करने के वाद भी मै हिन्दू धर्म को अपनाए रहा। मेरा विश्वास अपने धर्म मे आज भी उतना ही प्रवल है, जितना कि मेरे वचपन मे था। मेरा यह विश्वास है कि परमात्मा मुझे उस धर्म की रक्षा करने का साधन वनायेगा जिसे मै प्रेम करता हू, जिसका पालन करता हू और जिसका मैने अभ्यास किया है।"

यद्यपि गाधीजी ने इस धर्म का साहस और स्थिरता के साथ पालन किया था, तथापि उनमे एक असाधारण विनोदी भाव था, एक प्रकार की खुश-मिजाजी, शायद विनोदी तवियत थी जिसे हम प्राय कट्टर धार्मिक आत्माओ के पास नही देखते है। यह विनोदीपन उनके हृदय की पवित्रता और आत्मा की स्वच्छदता का परिणाम था। जीवन के अति साधारण और चचल क्षणो तक मे उनकी दूरदर्शिता एक क्षण के लिए भी ओझल नही होती थी। जीवन की वुराइयाँ और कुटिलताए वस्तुओ की अच्छाई पर से उनके विश्वास को नही डिगा सकती थी। उन्होने विना किसी वाद-विवाद के मान रखा था कि उनका जीवन-क्रम स्वच्छ, सही और प्राकृतिक था जवकि इस यान्त्रिक औद्योगिक सभ्यता के युग मे हमारी जिन्दगी और रहन-सहन अप्राकृतिक, अस्वास्थ्यकर और गलत हो गये थे।

गाधीजी का धर्म अत्यन्त व्यावहारिक धर्म था। ऐसे भी धार्मिक व्यक्ति होते है, जो दुनिया की मुसीवतो और परेशानियो से वुरी तरह घिर जाने पर अपना मुह छिपाकर मठो या पहाडो की गुफाओ में चले जाते है और वही अपने हृदयो मे जलनेवाली पवित्र आग की रक्षा करते है। यदि सत्य, प्रेम और न्याय दुनिया में नही मिलते तो हम इन गुणो को अपनी आत्मा के पवित्र मदिर मे प्राप्त कर सकते है। गाधीजी के लिए पवित्रता और मानव-सेवा अभिन्न थे। "मेरी विचार-प्रणाली कुछ धार्मिक ही रही है। मै उस समय तक धार्मिक जीवन नही विता सकता जवतक

कि मानव-मात्र मे मैं अपना तादात्म्य स्थापित न कर लू। और यह मैं उस समय तक नही कर सकता जबतक कि मैं राजनीति में भाग न लू। मनुष्य के समस्त क्रिया-कलापो का विस्तार आज टुकडो मे नही बाटा जा सकता है। आज आप सामाजिक, राजनैतिक और पूर्णत धार्मिक कार्यों को किन्ही अभेद्य खडो मे बाट नही सकते। मानव कर्म से भिन्न मैं किसी धर्म को नही जानता। सत्य के प्रति मेरी भक्ति ने ही मुझे राजनीति के क्षेत्र में खीचा है और बिना किसी सकोच के, परन्तु नम्रता के साथ, मैं मानता हू कि जो लोग यह कहते है कि धर्म का राजनीति मे कोई सबध नही वे वास्तव मे धर्म के अर्थ को समझते ही नही।" इसमे से बहुत-से लोग जो अपनेको धार्मिक कहते है वे धर्म के एक बाहरी रूप का ही व्यवहार करते है। हम मशीन की तरह इसके रीति-रिवाजो का पालन करते हैं और बिना समझे इसके विश्वासो के आगे सिर झुका देते है। हम उन बाहरी शक्लो मे ऐसे सहमत हो जाते है मानो वह सहमति हमें सामाजिक और राजनैतिक सुविधाए दिलाती हो। हम रोज ईश्वर का नाम लेते हैं और अपने पडोसियो से घृणा करते है। खोखले वाक्यो और दिमागी अभिमान से अपनेको धोखा देते है। गाधीजी के लिए धर्म का आत्मजीवन के साथ एक भावनापूर्ण योग था। वह अत्यन्त व्यावहारिक और गतिशील था। वे दुनिया के दु ख के प्रति अति समवेदनशील थे और चाहते थे कि हर आँख का हर आसू वे पोछ सके। वे सपूर्ण जीवन की पवित्रता में विश्वास करते थे। धर्म-शून्य राजनीति उनके लिए एक ऐसे "शव के समान थी जो केवल दाह किये जाने के ही योग्य" हो।

वे राजनीति को धर्म और आचार-शास्त्र का ही एक अग मानते थे। उनका खयाल था कि यह सघर्ष केवल शक्ति और धन के लिए ही नही है, वरन् यह एक ऐसा अथक और अनवरत प्रयत्न है कि जिससे लाखो पीडित अच्छा जीवन प्राप्त कर सके, मनुष्यो का गुणात्मक स्तर ऊचा हो सके, स्वतन्त्रता और साहचर्य, आध्यात्मिक गाभीर्य और सामाजिक एकता की शिक्षा दी जा सके। कोई भी राजनीतिज्ञ जो इन उद्देश्यो की पूर्त्ति के लिए कार्य करता है, धार्मिक हुए बिना नही रह सकता। वह सभ्यता के निर्माण मे नैतिकता के सहयोग की उपेक्षा नही कर सकता और न ही अच्छाई के स्थान पर बुराई का समर्थन कर सकता है। जीवन की भौतिक वस्तुओ से लिप्त न होने के कारण वे उनमे परिवर्तन करने के योग्य थे। सिद्ध व्यक्ति या खलीफा इतिहास मे स्वय तटस्थ रहकर इतिहास का निर्माण करते है।

किसी भी आदमी के लिए सारी दुनिया को सुधारना धृष्टता होगी। जहाँ वह है वही से उसका काम शुरू होना चाहिए। जो काम उसके सबसे नजदीक

करना सिखाता है। परन्तु यह भी प्रार्थना करता हूँ कि दूसरे लोग भी अपने धर्म में अपने व्यक्तित्व की चरम सीमा तक उन्नति करें, जिससे एक ईसाई एक अच्छा ईसाई बन सके और एक मुसलमान एक अच्छा मुसलमान। मेरा विश्वास है कि परमात्मा हमसे एक दिन यह पूछेगा कि हम क्या है और क्या करते है, न कि वह नाम जो हमने अपने को, और अपने कामो को दे रखा है।" २१ जनवरी १९४८ को अपने प्रार्थना-प्रवचन के समय गाधीजी ने कहा था, "मैंने बचपन से हिन्दू धर्म का अभ्यास किया है। जब मै छोटा था तो भूत-प्रेतो के डर से बचने के लिए मेरी दाई मुझसे रामनाम लेने को कहती थी। बाद मे मै ईसाइयो, मसलमानो और दूसरे धर्म को माननेवाले लोगो के सपर्क मे आया और अन्य धर्मों का पर्याप्त अध्ययन करने के बाद भी मै हिन्दू धर्म को अपनाए रहा। मेरा विश्वास अपने धर्म मे आज भी उतना ही प्रबल है, जितना कि मेरे बचपन में था। मेरा यह विश्वास है कि परमात्मा मुझे उस धर्म की रक्षा करने का साधन बनायेगा जिसे मै प्रेम करता हू, जिसका पालन करता हू और जिसका मैंने अभ्यास किया है।"

यद्यपि गाधीजी ने इस धर्म का साहस और स्थिरता के साथ पालन किया था, तथापि उनमे एक असाधारण विनोदी भाव था, एक प्रकार की खुश-मिजाजी, शायद विनोदी तबियत थी जिसे हम प्राय कट्टर धार्मिक आत्माओ के पास नही देखते है। यह विनोदीपन उनके हृदय की पवित्रता और आत्मा की स्वच्छदता का परिणाम था। जीवन के अति साधारण और चचल क्षणो तक में उनकी दूरदर्शिता एक क्षण के लिए भी ओझल नही होती थी। जीवन की बुराइयाँ और कुटिलताए वस्तुओ की अच्छाई पर से उनके विश्वास को नही डिगा सकती थी। उन्होने बिना किसी वाद-विवाद के मान रखा था कि उनका जीवन-क्रम स्वच्छ, सही और प्राकृतिक था जबकि इस यान्त्रिक औद्योगिक सभ्यता के युग मे हमारी जिन्दगी और रहन-सहन अप्राकृतिक, अस्वास्थ्यकर और गलत हो गये थे।

गाधीजी का धर्म अत्यन्त व्यावहारिक धर्म था। ऐसे भी धार्मिक व्यक्ति होते है, जो दुनिया की मुसीबतो और परेशानियो से बुरी तरह घिर जाने पर अपना मुह छिपाकर मठो या पहाडो की गुफाओ मे चले जाते है और वही अपने हृदयो मे जलनेवाली पवित्र आग की रक्षा करते है। यदि सत्य, प्रेम और न्याय दुनिया में नही मिलते तो हम इन गुणो को अपनी आत्मा के पवित्र मदिर मे प्राप्त कर सकते है। गाधीजी के लिए पवित्रता और मानव-सेवा अभिन्न थे। "मेरी विचार-प्रणाली कुछ धार्मिक ही रही है। मै उस समय तक धार्मिक जीवन नही बिता सकता जबतक

कि मानव-मात्र मे मैं अपना तादात्म्य स्थापित न कर लू। और यह मैं उस समय तक नही कर सकता जबतक कि मैं राजनीति मे भाग न लू। मनुष्य के समस्त क्रिया-कलापो का विस्तार आज टुकडो मे नही बाटा जा सकता है। आज आप सामाजिक, राजनैतिक और पूर्णत धार्मिक कार्यो को किन्ही अभेद्य खडो मे बाट नही सकते। मानव कर्म से भिन्न मैं किसी धर्म को नही जानता। सत्य के प्रति मेरी भक्ति ने ही मुझे राजनीति के क्षेत्र मे खीचा है और बिना किसी सकोच के, परन्तु नम्रता के साथ, मै मानता हू कि जो लोग यह कहते है कि धर्म का राजनीति मे कोई सबध नही वे वास्तव मे धर्म के अर्थ को समझते ही नही।" इसमे से बहुत-से लोग जो अपनेको धार्मिक कहते हैं वे धर्म के एक बाहरी रूप का ही व्यवहार करते है। हम मशीन की तरह इसके रीति-रिवाजो का पालन करते है और बिना समझे इसके विश्वासो के आगे सिर झुका देते है। हम उन बाहरी शक्लो से ऐसे सहमत हो जाते है मानो वह सहमति हमें सामाजिक और राजनैतिक सुविधाए दिलाती हो। हम रोज ईश्वर का नाम लेते है और अपने पडोसियो से घृणा करते हैं। खोखले वाक्यो और दिमागी अभि-मान से अपनेको धोखा देते है। गाधीजी के लिए धर्म का आत्मजीवन के साथ एक भावनापूर्ण योग था। वह अत्यन्त व्यावहारिक और गतिशील था। वे दुनिया के दु ख के प्रति अति समवेदनशील थे और चाहते थे कि हर आँख का हर आसू वे पोछ सके। वे सपूर्ण जीवन की पवित्रता मे विश्वास करते थे। धर्म-शून्य राजनीति उनके लिए एक ऐसे "शव के समान थी जो केवल दाह किये जाने के ही योग्य" हो।

वे राजनीति को धर्म और आचार-शास्त्र का ही एक अग मानते थे। उनका खयाल था कि यह सघर्ष केवल शक्ति और धन के लिए ही नही है, वरन् यह एक ऐसा अथक और अनवरत प्रयत्न है कि जिसमे लाखो पीडित अच्छा जीवन प्राप्त कर सके, मनुष्यो का गुणात्मक स्तर ऊचा हो सके, स्वतन्त्रता और साहचर्य, आध्या-त्मिक गाभीर्य और सामाजिक एकता की शिक्षा दी जा सके। कोई भी राजनीतिज्ञ जो इन उद्देश्यो की पूर्त्ति के लिए कार्य करता है, धार्मिक हुए बिना नही रह सकता। वह सभ्यता के निर्माण में नैतिकता के सहयोग की उपेक्षा नही कर सकता और न ही अच्छाई के स्थान पर बुराई का समर्थन कर सकता है। जीवन की भौतिक वस्तुओ से लिप्त न होने के कारण वे उनमे परिवर्तन करने के योग्य थे। सिद्ध व्यक्ति या खलीफा इतिहास मे स्वय तटस्थ रहकर इतिहास का निर्माण करते है।

किसी भी आदमी के लिए सारी दुनिया को सुधारना धृष्टता होगी। जहाँ वह है वही से उसका काम शुरू होना चाहिए। जो काम उसके सबसे नज़दीक

करना सिखाता है। परन्तु यह भी प्रार्थना करता हूँ कि दूसरे लोग भी अपने धर्म में अपने व्यक्तित्व की चरम सीमा तक उन्नति करे, जिससे एक ईसाई एक अच्छा ईसाई वन सके और एक मुसलमान एक अच्छा मुसलमान। मेरा विश्वास है कि परमात्मा हमसे एक दिन यह पूछेगा कि हम क्या है और क्या करते है, न कि वह नाम जो हमने अपने को, और अपने कामो को दे रखा है।" २१ जनवरी १९४८ को अपने प्रार्थना-प्रवचन के समय गाधीजी ने कहा था, "मैने वचपन से हिन्दू धर्म का अभ्यास किया है। जव मै छोटा था तो भूत-प्रेतो के डर से वचने के लिए मेरी दाई मुझसे रामनाम लेने को कहती थी। वाद में मै ईसाइयो, मसलमानो और दूसरे धर्म को माननेवाले लोगो के सपर्क मे आया और अन्य धर्मो का पर्याप्त अध्ययन करने के वाद भी मै हिन्दू धर्म को अपनाए रहा। मेरा विश्वास अपने धर्म मे आज भी उतना ही प्रवल है, जितना कि मेरे वचपन में था। मेरा यह विश्वास है कि परमात्मा मुझे उस धर्म की रक्षा करने का साधन वनायेगा जिसे मै प्रेम करता हू, जिसका पालन करता हू और जिसका मैने अभ्यास किया है।"

यद्यपि गाधीजी ने इस धर्म का साहस और स्थिरता के साथ पालन किया था, तथापि उनमे एक असाधारण विनोदी भाव था, एक प्रकार की खुश-मिजाजी, शायद विनोदी तवियत थी जिसे हम प्राय कट्टर धार्मिक आत्माओ के पास नही देखते है। यह विनोदीपन उनके हृदय की पवित्रता और आत्मा की स्वच्छदता का परिणाम था। जीवन के अति साधारण और चचल क्षणो तक मे उनकी दूरदर्शिता एक क्षण के लिए भी ओझल नही होती थी। जीवन की वुराइयाँ और कुटिलताए वस्तुओ की अच्छाई पर से उनके विश्वास को नही डिगा सकती थी। उन्होने विना किसी वाद-विवाद के मान रखा था कि उनका जीवन-क्रम स्वच्छ, सही और प्राकृतिक था जवकि इस यात्रिक औद्योगिक सभ्यता के युग मे हमारी जिन्दगी और रहन-सहन अप्राकृतिक, अस्वास्थ्यकर और गलत हो गये थे।

गाधीजी का धर्म अत्यन्त व्यावहारिक धर्म था। ऐसे भी धार्मिक व्यक्ति होते है, जो दुनिया की मुसीवतो और परेशानियो से वुरी तरह घिर जाने पर अपना मुह छिपाकर मठो या पहाडो की गुफाओ मे चले जाते है और वही अपने हृदयो मे जलनेवाली पवित्र आग की रक्षा करते है। यदि सत्य, प्रेम और न्याय दुनिया मे नही मिलते तो हम इन गुणो को अपनी आत्मा के पवित्र मदिर मे प्राप्त कर सकते है। गाधीजी के लिए पवित्रता और मानव-सेवा अभिन्न थे। "मेरी विचार-प्रणाली कुछ धार्मिक ही रही है। मै उस समय तक धार्मिक जीवन नही विता सकता जवतक

कि मानव-मात्र से मै अपना तादात्म्य स्थापित न कर लू। और यह मै उस समय तक नही कर सकता जबतक कि मै राजनीति में भाग न लू। मनुष्य के समस्त क्रिया-कलापो का विस्तार आज टुकडो मे नही बाटा जा सकता है। आज आप सामाजिक, राजनैतिक और पूर्णत धार्मिक कार्यो को किन्ही अभेद्य खडो मे बाट नही सकते। मानव कर्म से भिन्न मै किसी धर्म को नही जानता। सत्य के प्रति मेरी भक्ति ने ही मुझे राजनीति के क्षेत्र मे खीचा है और बिना किसी सकोच के, परन्तु नम्रता के साथ, मै मानता हू कि जो लोग यह कहते है कि धर्म का राजनीति मे कोई सबध नही वे वास्तव मे धर्म के अर्थ को समझते ही नही।" इसमे से बहुत-से लोग जो अपनेको धार्मिक कहते है वे धर्म के एक बाहरी रूप का ही व्यवहार करते है। हम मशीन की तरह इसके रीति-रिवाजो का पालन करते है और बिना समझे इसके विश्वासो के आगे सिर झुका देते है। हम उन बाहरी शक्लो से ऐसे सहमत हो जाते है मानो वह सहमति हमें सामाजिक और राजनैतिक सुविधाए दिलाती हो। हम रोज ईश्वर का नाम लेते है और अपने पडोसियो से घृणा करते है। खोखले वाक्यो और दिमागी अभि-मान से अपनेको धोखा देते है। गाधीजी के लिए धर्म का आत्मजीवन के साथ एक भावनापूर्ण योग था। वह अत्यन्त व्यावहारिक और गतिशील था। वे दुनिया के दु ख के प्रति अति समवेदनशील थे और चाहते थे कि हर आँख का हर आसू वे पोछ सके। वे सपूर्ण जीवन की पवित्रता मे विश्वास करते थे। धर्म-शून्य राजनीति उनके लिए एक ऐसे "शव के समान थी जो केवल दाह किये जाने के ही योग्य" हो।

वे राजनीति को धर्म और आचार-शास्त्र का ही एक अग मानते थे। उनका खयाल था कि यह सघर्ष केवल शक्ति और धन के लिए ही नही है, वरन् यह एक ऐसा अथक और अनवरत प्रयत्न है कि जिससे लाखो पीडित अच्छा जीवन प्राप्त कर सके, मनुष्यो का गुणात्मक स्तर ऊचा हो सके, स्वतन्त्रता और साहचर्य, आध्या-त्मिक गाभीर्य और सामाजिक एकता की शिक्षा दी जा सके। कोई भी राजनीतिज्ञ जो इन उद्देश्यो की पूर्ति के लिए कार्य करता है, धार्मिक हुए बिना नही रह सकता। वह सभ्यता के निर्माण मे नैतिकता के सहयोग की उपेक्षा नही कर सकता और न ही अच्छाई के स्थान पर बुराई का समर्थन कर सकता है। जीवन की भौतिक वस्तुओ से लिप्त न होने के कारण वे उनमे परिवर्तन करने के योग्य थे। सिद्ध व्यक्ति या खलीफा इतिहास से स्वय तटस्थ रहकर इतिहास का निर्माण करते है।

किसी भी आदमी के लिए सारी दुनिया को सुधारना धृष्टता होगी। जहाँ वह है वही से उसका काम शुरू होना चाहिए। जो काम उसके सबसे नजदीक

है वही काम उसे पहले लेना चाहिए। अफ्रीका से वापस आने पर जव गाधीजी ने भारतीयो को कुचले हुए अभिमान, भूख, क्लेश और पतन से पीडित पाया तो उन्होने उनके मुक्ति-कार्य को एक चुनौती और सुयोग समझकर तत्काल हाथ में ले लिया। कमजोर का अत्याचार के आगे झुकना और वलवान का और अधिक दवाते जाना दोनो गलत है। उनका विश्वास था कि विना राजनैतिक स्वतत्रता के कोई भी उन्नति सभव नही। परावीनता से मुक्ति, गुप्त सगठनो, सगस्त्र क्रातियो, आग लगाने और मारकाट के सामान्य तरीको से नही प्राप्त करनी चाहिए। स्वाधीनता का रास्ता न तो गिडगिडाकर विनती करने का रास्ता है और न क्राति-कारी हिंसा का। स्वाधीनता किसी राष्ट्र पर तोहफे की शकल मे ऊपर से नही टपकती, वरन् उसके योग्य वनने के लिए उन्हे यत्न करना पडता है। महात्मा वुद्ध ने कहा था, "तुम जो कष्ट भोग रहे हो यह समझो कि तुम अपने आप ही भोग रहे हो और कोई तुम्हे इसके लिए वाध्य नही करता।" आत्मशोधन मे ही स्वाधीनता का सच्चा मार्ग छिपा है। वल या जोर कोई उपाय नही है। ऐसी परिस्थितियो मे वल का प्रयोग एक अशिष्ट या मलिन खेल है। आत्मशक्ति अजेय है। गाधीजी कहते थे, "अग्रेज चाहते है कि हम अपने सघर्ष को मशीनगनो के स्तर पर लाये। परन्तु उनके पास शस्त्र है, हमारे पास नही है। उनके हिसाव मे हम उन्हे तभी हरा सकते है जव हम ऐसे स्तर पर वने रहे जहा हमारे पास हथियार हो और उनके पास न हो।" गलत वात को सहन करते समय हमे उस उदारता मे उसका मुकावला करना चाहिए जो जुरम करनेवालो को चोट पहुँचाने तथा घृणा करने से हमे रोकती है। यदि हम अपने भीतर सपूर्ण साहस को इकट्ठा कर सके तो आततायी के भीतर छिपा हुआ मनुष्यत्व हमारी अपील का विरोध नही कर सकता। विदे-शियो द्वारा शताब्दियो मे कुचली गई जातियो को उन्होने एक नया आत्म-सम्मान, एक नया आत्म-विश्वास और शक्ति का एक नया भरोसा दिया। उन्होने ऐसे सामान्य स्त्री-पुरुषो को लिया, जो वीरता और दभ की, महानता और तुच्छता की अप्रामाणिक खिचडी थे। इनके भीतर से ही वीरो का निर्माण किया और अग्रेजी शक्ति के विरुद्ध अहिंसक क्राति का सगठन किया।

उन्होने देश को विप्लव और रक्त-क्राति मे मुक्ति दिलाई और राजनैतिक आत्मा को नष्ट हो जाने से वचा लिया। भारत के स्वाधीनता-सग्राम में कई ऐसे अवसर आये जव उन्होंने ऐसे साधनो को अपनाया जो केवल एक कोरे राजनीतिज्ञ की नजर में वुद्धिमत्तापूर्ण न थे। ऐसे वडे नेता भी है, जो व्यक्तियो को अपने में मिलाने

के लिए उनके सामने झुकना और चापलूसी करना भी जानते हैं। यद्यपि वे अपनी दृष्टि अपने लक्ष्य पर केंद्रित रखते हैं, तथापि वे लक्ष्य तक पहुंचने के साधनों के विषय में चिन्ता नहीं करते, किन्तु गांधीजी में यह बात न थी। "यदि भारत हिंसा के सिद्धान्तों को अपनाता है तो वह अस्थायी विजय भले ही प्राप्त कर ले, लेकिन तब वह मेरे हृदय का गर्व नहीं रहेगा। मेरा पूर्ण विश्वास है कि भारत को दुनिया के लिए एक संदेश देना है। लेकिन यदि भारत ने हिंसात्मक साधनों को अपनाया तो यह परीक्षा का समय होगा। मेरा जीवन अहिंसा-धर्म द्वारा भारत की सेवा के लिए समर्पित है, जिसे मैं हिन्दू धर्म की बुनियाद मानता हूं।" उन्होंने असहयोग आन्दोलन को स्थगित करने का उस समय आदेश दिया था जब उन्होंने स्वयं देख लिया कि उनके लोग उनके उच्च आदर्शों पर टिकने के काबिल नहीं है। आन्दोलन बन्द करके इस प्रकार उन्होंने अपनेको विरोधियों की आलोचना का लक्ष्य बनाया। "हमारे इस अपमान पर, जिसे पराजय भी कहा जा सकता है, विरोधियों को खुशी मना लेने दो। कायरता का आरोप सहन करना अपनी शपथ तोड़ने और ईश्वर के खिलाफ पाप करने से अधिक अच्छा है। अपनी आत्मा के विरुद्ध कार्य करने की अपेक्षा दुनिया की हंसी का पात्र बनना लाख दर्जे अच्छा है। मैं जानता हूं कि समस्त आक्रमणात्मक योजनाओं का यह तीव्र परिवर्तन राजनैतिक दृष्टि से अविवेकपूर्ण और गलत हो सकता है। लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि धार्मिक दृष्टि से यह बिलकुल ठोस है।" जो नैतिक रूप से गलत है वह राजनैतिक रूप से ठीक नहीं हो सकता। ८ अगस्त १९४२ की शाम को 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने पास किया तो गांधीजी ने कहा था, "हमें दुनिया का सामना शांत और साफ निगाहों से करना है, हालांकि दुनिया की आंखें आज रक्तपूर्ण है।" बंबई में जब नौ-सेना-उपद्रव आरम्भ हुआ तो गांधीजी ने इसके संगठन करनेवालों को यह कहकर बुरा-भला कहा था कि "चारों ओर घृणा का वातावरण छाया हुआ है। अधीर देश-प्रेमी यदि उनके लिए संभव हुआ तो हिंसात्मक तरीके से देश की आजादी की लड़ाई को आगे बढ़ाने में इसका बड़ी आसानी से फायदा उठा सकते हैं। मैं सलाह दूंगा कि यह नीति किसी भी समय और हर जगह गलत और अशोभनीय है, खास तौर पर ऐसे देश के लिए, जिसकी आजादी के लड़नेवालों ने दुनिया के सामने यह घोषणा कर रखी है कि उनकी नीति सत्य और अहिंसा की है।" उनका दृढ़ विश्वास था कि हिंसा की प्रवृत्ति एक अवशेष मात्र है, जो कुछ समय में स्वयं अपने को खत्म कर लेगी। भारत की भावना के यह सर्वथा विरुद्ध है। "मैंने भारत की

आजादी के लिए जीवनभर कोशिश की है, लेकिन यदि इसे सिर्फ हिसा द्वारा ही पाया जा सकता है तो मै इसे पाना नही चाहूगा। स्वाधीनता प्राप्त करने के साधन उतने ही महत्त्वपूर्ण है, जितना कि स्वय साध्य।" अनैतिकता द्वारा प्राप्त भारत की स्वाधीनता वास्तव मे स्वाधीनता नही हो सकती। उन्होने भारत मे भी अफ्रीका की तरह ही जमी हुई सरकार के विरुद्ध बिना किसी जातीय भावना के दबाव के वडी शाति के साथ आन्दोलन का सचालन किया। १५ अगस्त १९४७ का दिन हमारे सघर्ष की समाप्ति का दिन है। यह सघर्ष सद्भावना और दोस्ती के वातावरण में तय होनेवाले समझौते मे खत्म हुआ।

गाधीजी के लिए स्वाधीनता केवल एक राजनैतिक तथ्यमात्र न थी। यह एक सामाजिक सचाई भी थी। वे भारत को विदेशी शासन से नही, अपितु सामाजिक कुरीतियो और साम्प्रदायिक झगडो से भी मुक्ति दिलाने के लिए लडे थे। "मै एक ऐसे भारत के लिए काम करूगा, जिसमे गरीब-से-गरीब भी यह महसूस करे कि यह देश उसका है और इसके निर्माण मे उसकी जोरदार आवाज़ है। ऐसे भारत में, जिसमे ऊच-नीच वर्गो का भेद नही होगा, जिसमे सभी जातिया मेल-मिलाप के साथ रहेगी, छुआछूत और नशेबाजी के लिए कोई स्थान नही होगा। स्त्रियो और पुरुषो के समानाधिकार होगे। हम शेष दुनिया के साथ शाति-सबध कायम करेंगे, न शोपण करेगे और न शोपण होने देगे, और इसलिए हमारी सेना इतनी कम होगी, जिसकी कोई कल्पना भी नही कर सकता। ऐसे तमाम हितो का जो लाखो भोले-भाले लोगो के हितो के विरुद्ध नही है, उदारता के साथ आदर किया जायगा। व्यक्तिगत तौर पर मै स्वदेशी और विदेशी के भेद से घृणा करता हूँ। यह है मेरे स्वप्नो का भारत।"

किसी भी राष्ट्र के स्वप्नो की पूर्त्ति केवल राजनैतिक स्वाधीनता से नही होती। वह राष्ट्र के जीवन मे एक नई जागृति के लिए क्षेत्र और अवसर प्रदान करती है। आजाद हिन्दुस्तान विवेकशील व्यक्तियो का एक ऐसा देश बने, जो सच्ची सभ्यता के मूल्यो को, शाति को, व्यवस्था को, मनुष्य के प्रति सद्भावना को, सत्य के प्रति प्रेम को, सौदर्य की खोज को, और बुराई के प्रति घृणा को प्रेम करे। यदि हम अपने साथियो से उस अधिकार के लिए लडते है, जो रुपया कमा सकता है और जीवन को अधिक भद्दा बना सकता है, तो इसका अर्थ यह होता है कि हमने जीवन के सौदर्य और सभ्यता के गौरव को नष्ट कर दिया है।

गाधीजी भारतीय समाज को सच्चे अर्थ में स्वतत्र बनाना चाहते थे, इसी-

लिए अपने रचनात्मक कार्यक्रम के बीच में उन्होंने चरखा, अस्पृश्यता-निवारण और साम्प्रदायिक एकता को हमेशा रखा था। स्वतन्त्रता उस समय तक केवल मजाक है जबतक कि लोग भूखे मरें, नगे रहे और असह्य पीडा से सूखते रहे। चरखा जन-साधारण को गरीबी, अज्ञान, बीमारी और गदगी से मुक्ति दिलाने में सहायता करेगा। लाखो व्यक्ति यदि अपने पर लादे गये आलस्य को दूर नहीं कर सकते तो राजनैतिक स्वाधीनता का उनके लिए कोई मूल्य नही। हिन्दुस्तान की आबादी के ८० प्रतिशत लोग छ महीने तक अनिवार्यत बेकार रहते हैं। ऐसे उद्योगो को, जिन्हें भुलाया जा चुका है, पुनर्जीवित कर, आमदनी का जरिया बनाना होगा। इसी तरह हम उनकी सहायता कर सकते है। गाधीजी कृषि के पूरक काम के रूप में चरखे के इस्तेमाल पर हमेशा जोर देते थे।

चरखा जीवन के बढते हुए यत्रीकरण पर एक रोक का काम भी करता है। यत्रो का ज्यादा-से-ज्यादा व्यवहार करनेवाले समाज में मनुष्यो के मस्तिष्क जीवित अगो की तरह नही, बल्कि कलो की तरह काम करते है। वे बडे पेचीदे सगठनो, उद्योगपतियो के गुट्टो और मजदूर-सगठनो पर निर्भर रहते हैं और उनके निर्णयो पर वे अधिक प्रभाव नही डाल सकते। इसके अलावा पूरा काम न करके केवल उसका एक हिस्सामात्र करने से लाखो लोगो की स्वाभाविक रचनात्मक सूझ दब जाती है। जब हम किसी काम को समाज के एक जिम्मेदार व्यक्ति की तरह नही कर पाते तो उस काम के करने मे हमें सन्तोष नही होता। हम अपने जीवन से ऊब जाते है। हमारी जिन्दगी व्यर्थ हो जाती है और तब उत्तेजना और महत्त्वपूर्ण अनुभव की कमी को पूरा करने के लिए हम पाशविक क्षति-पूर्त्ति के उपायो का सहारा खोजते है। यत्रीकरण-प्रधान-समाज मे धनी और गरीब दोनो दु खी रहते है। धनी स्त्री और पुरुषो को अपनी आध्यात्मिक मृत्यु का स्थूल भान होने लगता है, मानो उनकी आत्मा जड और गतिशून्य हो गई हो। बुड्ढे लोग भूखो मरने लगते है, क्योकि उन्हें तबतक काम करने के लिए विवश होना पडता है जबतक कि वे और अधिक काम न कर सके। स्त्रियो को दमतोड मेहनत के काम करने पडते हैं।

गाधीजी ने ग्रामो की परम्परागत सभ्यता को जीवित रखने के लिए सघर्ष किया, क्योकि यह सभ्यता ऐसे लोगो की जीवित एकता की प्रतीक थी, जो सामजस्य-पूर्वक एक ऐसे धरातल पर पारस्परिक सबध के कार्यो में समान जीवन और विश्व की समान भावना द्वारा जुडे थे।

अधेरा और गदगी, बदबू और सडी हवा, तथा बुखार और बच्चो के रोगो

से भरे वडे घने वसे शहरो की अपेक्षा खुले मैदानो और हरी पत्तियोवाले गावो में मनुष्य की महत्वाकाक्षी आत्मा अपनेको अधिक स्वस्थ और स्वतत्र अनुभव करती है। गाव-समूह मे लोग अपनेको जिम्मेदार व्यक्ति मानते है, क्योकि वे वडे प्रभावपूर्ण ढग से ग्राम-जीवन मे योग देते है। शहर मे जाकर वसने पर ये गाववाले अपने को वेचैन, उत्साह-शून्य और वेकार समझने लगते है। किसानो और वुनकरो की जगह यत्रो और व्यापारियो ने ले ली है, जहाँ जीवन की थकान को दूर करने के लिए उत्तेजनात्मक मनोविनोद रचे जाते है। ऐसी अवस्था मे कोई आश्चर्य नही कि जीवन के इस मरुस्थल मे मनुष्य का सारा उत्साह खत्म हो जाता है। यदि हम समाज का मनुष्यता के आधार पर सगठन और जीवन के सभी कामो और सवधो मे नैतिक प्रतिष्ठा स्थापित करना चाहते है तो हमे विकेन्द्रित ग्राम-अर्थ-व्यवस्था का निर्माण करना होगा, जिसमें मशीन का उपयोग केवल उसी सीमा तक किया जा सके जिस सीमा तक वह समाज के मौलिक ढाचे और मनुष्य की आत्मा की स्वतत्रता मे वहुत वाधक न हो।

गाधीजी मशीनरी का मशीन होने के नाते वहिष्कार नही करते थे। इस विपय मे उन्होने स्वय कहा है, "जव मै यह जानता हूँ कि यह शरीर स्वय यत्रो का एक नाजुक समूह है तव मै मशीन के खिलाफ कैसे हो सकता हूँ? चरखा एक मशीन है। छोटी-सी खरिका (दाँत-कुरेदिनी) भी एक मशीन है। अत मै तो मशीन के लिए पागल वनने की वृत्ति का विरोधी हूँ, स्वय मशीन का नही। यह पागलपन उनके कथनानुसार श्रम-शक्ति के वचाने के लिए है। लोग इस श्रम-शक्ति को वचाने की धुन मे यहाँतक आगे वढ जाते है कि हजारो लोग वेकार होकर खुली सडको पर पडकर भूखो मरने लगते है। "मै समय और श्रम दोनो की वचत करना चाहता हूँ, लेकिन मानव-जाति के किसी एक अग के लिए नही, वरन् सवके लिए। मै चाहता हूँ कि पूजी का सचय कुछ हाथो मे न होकर सव हाथो में हो। मशीन आज केवल कुछ व्यक्तियो को लाखो लोगो की पीठ पर सवार होने मे सहायता पहुँचाती है। इस सवके पीछे मेहनत वचाने की कल्याण-भावना नही, वरन् लालच है। अपनी समस्त शक्ति के साथ वस्तुओ की इस व्यवस्था के विरोध में मै लड रहा हूँ। मशीनो को मनुष्य की हड्डियो को चूसने का काम नही करने देना है। बिजली द्वारा सचालित कारखानो का राष्ट्रीयकरण अथवा राजनियत्रण होना चाहिए। इस कार्य में सवसे अधिक ध्यान मनुष्य का रहना चाहिए।"

"यदि गाव-गाव में, घर-घर में हम विजली दे सकते है तो गाववाले अपने औजारो

को बिजली मे चलाये। इसका विरोध मैं न करूगा। परन्तु ऐसी अवस्था में ग्राम-पचायतें या राज्य उन बिजलीघरो की मालिक होगी, जैसे गाव के चरागाहो का स्वामित्व गाव का होता है। सार्वजनिक उपयोग की ऐसी बडी मशीनो का भी, अपना अनिवार्य स्थान है जिन्हें मनुष्य के श्रम से चालू किया जा सकता है, लेकिन ऐसी सभी मशीनो पर सरकार का नियत्रण रहेगा और वे सब जनता के हित में ही इस्तेमाल की जायगी।" धार्मिक और सामाजिक सुधारक के रूप में गाधीजी ने हमें प्रचलित सामाजिक कुरीतियो के खिलाफ एड लगाकर सावधान कर दिया। उन्होने हमें यह सलाह दी कि हम धर्म को उन व्यर्थ की बातो से छुटकारा दिलायें जिन्होने बहुत दिनो तक उसके चारो ओर इकट्ठे होकर उसे बोझिल बना दिया है। ऐसी बातो मे अस्पृश्यता का प्रमुख स्थान है। अपने सामाजिक उत्तरदायित्व की उपेक्षा करने से हिन्दू धर्म को बहुत बडी कीमत चुकानी पडी है। नये भारत के सविधान का उद्देश्य समतापूर्ण सामाजिक व्यवस्था कायम करना है, जिससे सदाचार और स्वातत्र्य के आदर्श आर्थिक और राजनैतिक, सामाजिक और सास्कृतिक सस्थाओ को स्फूर्ति प्रदान करे।

गाधीजी के नेतृत्व में अखिल भारतीय काग्रेस ने भारत के भिन्न-भिन्न धर्मों और जातियो में मैत्रीपर्ण सबध एव असाम्प्रदायिक लोकशाही स्थापित करने के लिए कार्य किया। उन्होने एक स्वतत्र और सगठित भारत के लिए यत्न किया। उनकी विजय का क्षण उनके लिए बडी दीनता का समय हो गया। देश का विभाजन बडी ही दु खदायी भूल थी और घोर निराशा के चगुल मे फसकर, साम्प्रदायिक खून-खराबी से थककर—जिसने पिछले कुछ महीनो से देश के मुख पर कालिख पोत रखी थी, पीडितो और भगाये हुए लोगो को राहत पहुचाने के ख्याल से—अपने उचित निर्णय और गाधीजी की सलाह के बावजूद हम भारत-विभाजन के सामने झुक गये। कितना भी पश्चाताप अब उस खोये हुए अवसर को वापस नही ला सकता। एक क्षण की भूल को सुधारने के लिए हमें वर्षो तक दु ख सहकर प्रायश्चित्त करना पड सकता है। हम जो कुछ बनाना चाहते थे, वह नही बना सकते। अब तो जो कुछ बना सकते है, वही बन सकेगा। भारत-विभाजन जैसे महत्त्वपूर्ण निर्णयो को लोग उचित मान दे सके इसके लिए इतिहास की शताब्दिया गुजर जायगी। भविष्य को देखने की ताकत हमे नही मिली है तो भी इस समय तो विभाजन की कीमत साम्प्रदायिक शाति स्थापित नही कर सकी, बल्कि एक तरह से इसने साम्प्रदायिक कटुता को और बढा दिया है।

१५ अगस्त को नई दिल्ली मे मनाये गये समारोहो मे गाधीजी ने भाग नही लिया। उन्होने इसके लिए क्षमा मागी। उस समय वे बगाल के गावो के सुनसान रास्तो पर पैदल चलते हुए गरीबो को सान्त्वना दे रहे थे और उनसे हाथ जोडकर विनती कर रहे थे कि वे अपने हृदयो से सदेह, कटुता और घृणा की भावना को बिलकुल निकाल दे। असख्य आदमियो का अपना देश छोडना, हजारो थके-मादे घरो से निकाले हुए बे-घर लोगो का चिन्ता मे डूबे हुए इधर-उधर भटकना, साम्प्रदायिक हिसा का हैवानी दौर और सबसे भयकर चारो ओर फैलने वाला आध्यात्मिक पतन, सदेह, क्रोध, शका, वहम और निराशा को देखकर गाधीजी का हृदय दु ख मे डूब गया। इन सब बातो से दु खी होकर अपने शेष जीवन को इस समस्या के मनोवैज्ञानिक हल खोजने मे लगाने का निश्चय किया। कलकत्ता और दिल्ली मे किये गये उनके उपवासो का बडा गहरा प्रभाव पडा। लेकिन बुराई इतनी गहरी थी कि इतनी आसानी से उसका इलाज होना कठिन था। २ अक्तूबर १९४७ को अपने ७८ वे जन्म-दिवस पर उन्होने कहा था, "मै अपनी हर सास के साथ परमात्मा से यह प्रार्थना करता हू कि या तो मुझे इस आग को शात करने की शक्ति दे या मुझे इस दुनिया से उठा ले। मै, जिसने भारत की आजादी के लिए अपनी जान की बाजी तक लगा दी, वह स्वय इस खून-खराबी का एक जीवित गवाह नही बनना चाहता।"

जब मै अन्तिम बार उनसे दिसम्बर १९४७ के शुरू मे मिला तो मैने उन्हे घोर पीडा मे पाया। उस समय वे सम्प्रदायो के आपसी सबधो को सुधारने का या इस काम को करते हुए अपनी आहुति देने का निश्चय कर चुके थे। १२ जनवरी १९४८ को दिल्ली में अपनी प्रार्थना-सभा मे इस उपवास की सूचना देते हुए गाधीजी ने कहा था, "कोई भी इसान जो पवित्र है अपनी जान से ज्यादा कीमती चीज कुर्बान नही कर सकता। मै आशा रखता हू और मै प्रार्थना करता हू कि मुझमें उपवास करने के लायक पवित्रता हो। जब मुझे यह यकीन हो जायगा कि सब कौमो के दिल मिल गये है और वह बाहर के दबाव के कारण नही, मगर अपना-अपना धर्म समझने के कारण, तब मेरा उपवास टूटेगा। आज हिन्दुस्तान का मान सब जगह कम हो रहा है। एशिया के हृदय पर और उसके द्वारा सारी दुनिया के हृदय पर हिन्दुस्तान का रामराज्य आज तेजी से गायब हो रहा है। अगर इस उपवास के निमित्त हमारी आखें खुल जाय तो यह सब वापस आ जायगा। मै यह विश्वास रखने का साहस करता हू कि अगर हिन्दुस्तान की

अपनी आत्मा खो गई तो तूफानो मे दुखी और भूखी दुनिया की आशा की आस की किरण का लोप हो जायगा। . मेरी सबसे यह प्रार्थना है कि वे उपवास पर तटस्थ वृत्ति से विचार करें और यदि मुझे मरना ही है तो मुझे शाति से मरने दें। मै आशा रखता हू कि शाति तो मुझे मिलने ही वाली है। हिन्दू धर्म का, सिख धर्म का और इस्लाम का बेबस बनकर नाश होते देखना इसकी निस्बत मृत्यु मेरे लिए सुन्दर रिहाई होगी। जरा सोचिये तो सही, आज हमारे प्यारे हिन्दुस्तान मे कितनी गदगी पैदा हो गई है! तब आप खुश होगे कि हिन्दुस्तान का एक नम्र पूत, जिसमे इतनी ताकत है, और शायद इतनी पवित्रता भी है, इस गदगी को हटाने के लिए ऐसा कदम उठा रहा है, और अगर उसमें ताकत और पवित्रता नही है तब वह पृथ्वी पर बोझ रूप है। जितनी जल्दी वह उठ जाय और हिन्दुस्तान को इस बोझ से मुक्त करे, उतना ही उसके लिए और सबके लिए अच्छा है।"[1] उनकी मृत्यु इसी समय हुई जब वह इस महान् कार्य में सलग्न थे। महात्माओ को यह दड भोगना ही पडता है और इसीलिए वे जीवन को दु ख और कष्ट मे ही खतम कर देते है, ताकि उनके बाद आने वाले लोग अधिक शाति और सुरक्षा मे रह सके।[2]

अपने ही पिछले दुष्कर्मो में हम पूरी तरह उलझे हुए है। अपने नीति-शास्त्र के सिद्धान्तो को तोड-मोडकर जो जाल हमने स्वय बुनकर तैयार किया है, हम उसमें स्वय फसते जा रहे है। साम्प्रदायिक मतभेद अभी तक एक घाव

---

१. 'प्रार्थना-प्रवचन', भाग २, पृष्ठ २९०-२९१

२ रावर्ट स्टीमसन ने सवाददाताओं से बातचीत करते हुए ३१ जनवरी को कहा था, ". . . मै उन आठ मुसलमान मजदूरो को याद रखूगा, जिन्होने यमुना के निकट सामान्य हरे मैदान में चिता तैयार करने म सहायता की थी। इन मजदूरो ने चिता पर चन्दन की लकडिया रखते हुए मुझे बताया कि वे महात्माजी से प्रेम करते थे, क्योकि वे मुसलमानो के सच्चे दोस्त थे। वहा एक अछूत भी था, जिसने चिता तैयार होने से पूर्व एक टहनी उठाई और यह विचार करते हुए कि उसे कोई देख नहीं रहा है, वह लुकछुप कर आगे बढा और उसने वह टहनी उस ईंधन के ऊपर रख दी, जो वहा पहले से ही रखा हुआ था और तब एक बहुत ही हल्के स्वर में उसने कहा, "बापू मुझे और मेरी जाति को आशीर्वाद दीजिए।" 'लिसनर', ५ फरवरी १९४८, पृष्ठ २०६

की शक्ल मे है। वह पीव का फोडा नही बना है, लेकिन घाव मे पीव पडने की सभावना रहती है। यदि उस सभावना को रोकना है तो हमे उन आदर्शों का पालन करना होगा, जिनके लिए महात्मा गाधी जिये और मरे। हमे आत्म-सयम पैदा करना होगा। हमे क्रोध, द्वेष, विचार और वाणी की अनुदारता एव हर प्रकार की हिसा से बचना होगा। यदि हम अच्छे पडोसियो की तरह रहते हुए अपनी समस्याओ को शाति और सद्भावना के साथ सुलझा लेते है तो उनके जीवन-कार्य का यह सर्वोत्कृष्ट पुरस्कार होगा। उनकी पुण्यस्मृति मनाने का सब से अच्छा रास्ता यह है कि हम उनके दृष्टिकोण को एव सभी मतभेदो को दूर करने के लिए सहानुभूतिपूर्ण समझौते के रास्ते को अपनाये, उसपर अमल करे।

लोग जब इस सघर्ष को भूल जायगे, उस समय भी गाधीजी दुनिया मे नैतिक और आध्यात्मिक क्रान्तिदूत की तरह हमेशा जीवित रहेगे, जिसके बिना पथ-भ्रष्ट दुनिया को शाति नही मिलेगी। ऐसा कहा जाता है कि अहिसा बुद्धिमानो का स्वप्न है और हिसा मनुष्य का इतिहास। यह सच है कि युद्ध स्पष्ट और नाटकीय होते है और इतिहास की दिशा को बदलने मे उसके नतीजो का बडा साफ और महत्त्वपूर्ण स्थान होता है, किन्तु एक ऐसा सघर्ष है जो हमेशा जनता के दिमाग मे चलता रहता है। उसके नतीजो को मृत और घायलो के आकडो में नही लिखा जाता। यह सघर्ष मानवीय शालीनता के लिए, उन भौतिक युद्धो को टालने के लिए जो मानव-जीवन को अवरुद्ध करते है और युद्धविहीन दुनिया के लिए किया जाता है। इस महान् सघर्ष के योद्धाओ मे गाधीजी अग्रगण्य थे। उनका सदेश बुद्धिवादी लोगो के शास्त्रीय विवाद का विषय नही, यह पीडित मानव की आर्त पुकार का उत्तर है, जो आज ऐसे चौराहे पर खडा है, जहा प्रेम के अथवा जगली कानूनो के द्वार खुलते है। यदि यह सत्य कि प्रेम घृणा की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है, सिद्ध नही हो सका तो हमारे समस्त विश्व-सगठन व्यर्थ सिद्ध होगे। दुनिया केवल इसीसे एक नही हो सकती कि हम उसका चक्कर एक दिन मे पूरा कर लेते है। कितनी ही दूर या कितने ही तेज हम क्यो न चलें, हमारे दिमाग हमारे पडोसियो के नजदीक नही जाते। हमारी आकाक्षाओ और हमारे कार्यों की एकरूपता ही सच्चे अर्थ मे विश्व-एकता है। सगठित विश्व आध्यात्मिक एकता का ही भौतिक प्रतिरूप है। यत्रवत् अस्थायी व्यवस्थाओ एव बाह्य सगठनो द्वारा आध्यात्मिक परिणाम प्राप्त नही किये जा सकते। सामाजिक ढाचो का परिवर्तन जनता के दिमाग को नही बदलता। युद्धो की जड बनावटी

मूल्यांकन, अज्ञान और असहिष्णुता में होती है। गलत नेतृत्व के कारण ही दुनिया इस मुसीबत में पड़ी है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो सारे संसार में सभ्य गुणों पर काला पर्दा पड़ रहा है। बड़े-बड़े राष्ट्र एक-दूसरे के शहरों पर विजय प्राप्त करने के लिए बमबारी करते हैं। अणुबम के प्रयोग का नैतिक प्रभाव बम से भी कहीं अधिक घातक सिद्ध हो सकता है। दोष भाग्य का नहीं, हमारा अपना है। जबतक हम अपनी आत्मा का पालन करना और भ्रातृ-स्नेह बढ़ाना नहीं सीखते तबतक संस्थाओं का कोई लाभ नहीं। जबतक दुनिया के नेता अपने उन ऊंचे पदों में नहीं, बल्कि स्वयं अपनी आत्मा की गहराई में, अन्तःकरण की स्वच्छता में और खुद में सर्वोत्कृष्ट मानवीय महानता को नहीं तलाश करते तबतक दुनिया में स्थायी शान्ति की कोई आशा नहीं। गांधीजी का यह विश्वास था कि दुनिया अपने मूल में और उच्चतम आकांक्षाओं में एक ही है। वे जानते थे कि ऐतिहासिक मनुष्यता का एकमात्र उद्देश्य एक विश्व-सभ्यता, एक विश्व-संस्कृति और एक ही विश्व-समुदाय था। मनुष्यों के हृदयों में बुरी तरह घिरे अंधकार के स्थान पर समझदारी और सहिष्णुता को प्रसारित करके ही हम दुनिया के दुःख से छुटकारा पा सकते हैं। गांधीजी का करुणार्द्र और सन्तप्त हृदय उस विश्व की घोषणा करता है जिसके लिए संयुक्त राष्ट्र संघ भी प्रयत्नशील है। विलीन होने वाले भूत का यह एकाकी प्रतीक नवीन जन्म के लिए संघर्ष करनेवाली दुनिया का भी दूत है और इसी प्रकार वे भावी मानव की अन्तरात्मा का प्रतिनिधित्व भी करते हैं।

गांधीजी के लिए सत्य ही शाश्वत है। वही मानवात्मा में निहित परमात्मा का स्वरूप है। यह तलवार से अधिक शक्तिशाली है। सत्य और अहिंसा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यदि हम पदार्थवाद की अपेक्षा आत्मा की श्रेष्ठता को और नैतिक विधान की प्रधानता को स्वीकार कर लें तो हम नैतिक शक्तियों द्वारा बुराई पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। हिंसा सत्य की भावना से कोसों दूर रहने वाले व्यक्तित्व की अन्तिम अभिव्यक्ति है। जब कोई आदमी हिंसा की आखिर में नहीं, शुरू में ही शरण लेता है तो उसे अपराधी या पागल या दोनों ही कहा जाता है। अहिंसा पार्थिव जीवन तक ही सीमित नहीं, वह मस्तिष्क का भी एक रूप है। औरों का बुरा सोचना और झूठ बोलना दोनों ही हिंसा-कार्य हैं। अहिंसा अथवा सत्याग्रह गांधीजी के लिए नकारात्मक मन स्थिति का सूचक न था। वह एक यथार्थ और गतिशील विचार का प्रतीक है। यह बुराई के सामने झुक

जाना या प्रतिरोव न करना नही ह। यह प्रेम द्वारा उसका प्रतिरोव करता है। आत्मा की, सत्य की और प्रेम की उस शक्ति मे विश्वास करने का नाम ही सत्याग्रह है, जिसमे हम आत्म-त्याग और आत्म-क्लेश द्वारा वुराइयो पर विजय प्राप्त करते है। यह स्वतत्रता और श.ति के लिए किये गये सामारिक प्रयत्नो को एक नया अर्थ देता है। हमे स्वय कष्ट सहना चाहिए। दूसरो पर इसको नही लादना चाहिए। सत्याग्रह आत्म-निर्भर है। अमल मे लाये जाने मे पहले यह विरोधी की स्वीकृति नही चाहता। प्रतिरोव करनेवाले विरोधो के सामने इसकी शक्ति और जोर के साथ प्रकट होती है। अत इसे कोई रोक नही सकता। सत्याग्रही यह नही जानता कि पराजय क्या होती है, क्योकि वह अपनी शक्ति का ह्रास किये विना सत्य के लिए लडता है। इस सघर्ष मे मृत्यु पाना मुक्ति है, और जेल आजादी के लिए खुले द्वार का काम करती है। चूकि सत्याग्रही अपने विरोधी को कभी चोट नही पहुँचाता, वह या तो नम्र तर्को द्वारा उसकी विवेक-बुद्धि से, या आत्म-त्याग द्वारा उसके हृदय से प्रार्थना करता है। इसलिए सत्याग्रह दोनो को मगलकारी होता है। यह करने वाले का भी मगल करता है और जिसके खिलाफ इसका प्रयोग किया जाता है, उसका भी मगल करता है।

"मेरी अहिसा का सावन एक जीवित शक्ति है। इसम कायरता या कमजोरी के लिए कोई भी जगह नही है। एक हिंसक के लिए किसी दिन अहिंसक वन जाना सभव है, लेकिन डरपोक के लिए नही। इसीलिए मैंने इन पृष्ठो मे कई वार कहा है कि यदि हम अपनी स्त्रियो की और अपने पूजा के स्थानो की रक्षा कष्ट-सहन की शक्ति, अर्थात् अहिसा द्वारा नही कर सकते तो हमें, यदि हम मनुष्य है तो, "उनकी रक्षा लडकर ही करनी चाहिए।"[1] "दुनिया केवल तर्क से नही चलती। जीवन मे भी किसी हद तक हिसा है और इस लिए हमे न्यूनतम हिसा का रास्ता अपनाना पडेगा।'[2] जिसे हम सत्य समझते है उसके लिए हम लडेगे। पर कमजोरी, कायरता और आरामतलवी के कारण हिसा मे वचने की कोशिश नही करेगे।

गाधीजी डाक्टरी सहायता के लिए एक भारतीय चिकित्सा-टुकडी तैयार करके स्वय उसे एक सार्जेन्ट की हैसियत से वोअर-युद्ध मे ले गये थे।

---

१. 'यग इडिया' १६ सितम्बर १९२७
२ 'यग इडिया, २८ सितम्बर १९३४

१९०६ में जुलू-क्रान्ति के समय उन्होंने घायलों को ले जाने के लिए एक स्ट्रेचर-टुकड़ी तैयार की थी। उन्होंने यह इसलिए किया था, क्योंकि उनका विश्वास था कि भारतीयों की नागरिकता की मांग के अनुरूप ही उनकी कुछ जिम्मेदारियां भी हैं। पिछले महायुद्ध में उन्होंने फौजो के लिए सिपाही भर्ती कराने में इसीलिए सहायता पहुंचाई, क्योंकि उनमें जो लोग भर्ती नहीं हो रहे थे, वे ऐसा अहिंसा के प्रति विश्वास के कारण नहीं कर रहे थे, बल्कि वे डरपोक थे। वे इस बात पर सदा जोर देते थे कि डर के कारण खतरे से दूर भागने की अपेक्षा साहस से लड़कर मर जाना कहीं ज्यादा अच्छा है। लेकिन उनके लिए 'अहिंसा' धर्म का हृदय थी और उनके अनेक अनुभवों ने इस विश्वास को और भी मजबूत बना दिया था।

१९३८ में गांधीजी ने कहा था, "जान लेने वाले बम के पीछे उसे छोड़ने-वाले मनुष्य का हाथ है और उसके हाथ के पीछे एक इंसानी दिल है, जो हाथ को गति प्रदान करता है। आतंक की नीति के पीछे यह मान्यता रहती है कि यदि आतंक को पर्याप्त मात्रा में इस्तेमाल किया गया तो वह इच्छित फल प्रदान करेगा अर्थात् विरोधी को आतंक की इच्छा के सामने झुका देगा। गत ५० वर्षों के अहिंसा के अखंड व्यवहार के अनुभव के उपरान्त मेरा यह दृढ़ विश्वास हो चला है और वह विश्वास आज पहले से अधिक उज्ज्वल है कि मानव-समाज की रक्षा उस अहिंसा द्वारा ही की जा सकती है, जो इंजील (बाइबिल) की भी प्रधान शिक्षा है, जैसा कि मैंने इंजील को समझा है। शक्ति का चाहे कितने ही न्याययुक्त ढंग से इस्तेमाल किया जाय, हमें अन्त में उसी दलदल की ओर ले जायगी जिसकी ओर हिटलर और मुसोलिनी की शक्ति ले गई। अंतर केवल अंश का है। अहिंसा में विश्वास रखने वाले लोगों को इसे संकट के समय ही व्यवहार में लाना चाहिए। थोड़ी देर के लिए हमें भले ही ऐसा मालूम हो कि हम एक अंधेरी दीवार से अपना सिर टकरा रहे हैं, तो भी तथ्य यह है कि लुटेरों तक के हृदय को छूने में हमें निराश नहीं होना चाहिए।"

'उन्नत' राष्ट्रों को यह विश्वास दिलाना कठिन है कि राजनैतिक सफलता शान्ति के अस्त्रों द्वारा भी प्राप्त की जा सकती है। एप्टन सिंक्लेयर ने कहा था, "मेरे पूर्वजों ने स्वयं राजनैतिक स्वाधीनता हिंसा द्वारा प्राप्त की थी, यानी उन्होंने ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंका और अपनेको एक स्वतंत्र गणतंत्र घोषित किया। और इसी भूमिपर काली जातियों को बंदी बनाये जाने की प्रथा का भी उन्होंने

हिंसा द्वारा ही अंत किया था। यदि शोषित जनता के हिंसा द्वारा स्वाधीन होने की कोई संभावना है तो मैं इसके इस्तैमाल को न्याययुक्त मानूंगा।" बर्नार्ड शॉ का कहना था, "हिंसा इतिहास की एक शास्त्रीय पद्धति रही है। इतिहास के सामने इन तथ्यों को अस्वीकार करना निरर्थक है। शायद यह भी कहा जा सकता है कि शेर कभी भी हिंसा के द्वारा जिन्दा रहने के योग्य नहीं है और सविनय अवज्ञा से वह शायद चावल भी खाने लगे।" लेकिन शक्तिशाली राष्ट्रों के ये प्रगतिशील विचारक इस बात को आज स्वीकार करते हैं कि अणुशस्त्रों द्वारा संचालित आगामी युद्ध मानव-जाति और उन सभी चीजों को, जिनकी वह रक्षा करना चाहती है, नेस्तनाबूद कर देगी। यह ऐसा युद्ध है, जिसमें जिन्दगियां बरबाद होती हैं, दिल टूटते हैं और दिमाग बिगड़ते हैं और जिस दावे का उनके शत्रु ही खंडन करते हैं—"ईश्वर और इंसानियत के अस्तित्व से इन्कार करनेवाले शैतान हैं। यदि परिवर्तन लाने वाले गांधीजी के शांतिपूर्ण प्रयास सफल नहीं होते तो हमें घबराना नहीं चाहिए। क्या बात है, अगर हम अहिंसा के सिद्धान्त को अमल में लाने की कोशिश करते हुए मिट जायं। इस प्रकार हम एक बड़े सिद्धान्त के लिए ही मरेंगे और जियेंगे।"

गांधीजी यह महसूस करते थे कि उनके अनुयायियों ने स्वाधीनता-संघर्ष के लिए उनका नेतृत्व अवश्य स्वीकार किया था, लेकिन वे उनकी तरह हर परिस्थिति में अहिंसा को अपनाने के लिए तैयार न थे। राजनैतिक कार्य में जन-साधारण की प्रकृति की सीमाओं का भी ध्यान रखना पड़ता है। इसीलिए गांधीजी मानते थे कि अखिल भारतीय कांग्रेस को बार-बार ऐसे राजनैतिक निर्णयों के पक्ष में अपनी स्वीकृति देनी पड़ती है जो उनके दृढ़ विश्वासों के सर्वदा अनुरूप नहीं होते थे। यदि हम एक बार समझौता करना शुरू कर दें तो फिर पता नहीं, हम कहां जाकर रुकेंगे? यदि सत्य में हमारा अटूट विश्वास नहीं है तो उपयोगिता के नाम पर किसी भी चीज़ को न्याययुक्त ठहराया जा सकता है। राजनैतिक जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप सत्य को अंगीकार करने के खतरे से गांधीजी परिचित थे और इसीलिए उन्होंने कांग्रेस के निर्णयों के लिए अपने को जिम्मेदार मानने से इन्कार कर दिया था। उन्होंने उसकी सदस्यता से भी इस्तीफा देकर उससे अपना संबंध बिलकुल अलग कर लिया था।

हमें इस भ्रांति में नहीं रहना चाहिए कि हिंसा से तात्पर्य दबाव या दंड से है। राज्य के भीतर शक्ति के प्रयोग में और युद्धरत एक राज्य के दूसरे युद्धरत

राज्य के साथ शक्ति के प्रयोग मे बहुत अन्तर है। शक्ति के प्रयोग की उस समय इजाजत दी जा सकती है जब वह एक तटस्थ सत्ता द्वारा जनहित के लिए न्यायानुकूल ढग से व्यवहार मे लाई जाती है, न कि विवादग्रस्त दलो मे से किसी एक के पक्ष में। एक सुव्यवस्थित राज्य में न्याय का ही शासन होता है। वहा न्यायालय, पुलिस तथा कारावास सब कुछ होते है, किन्तु कोई अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था या अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस नही होती। यह अराजकता और लूटमार का राज्य है। प्रत्येक युद्धरत राज्य अपनेको ठीक समझने का दावा करता है। हम भी सोच सकते है कि हमारा उद्देश्य उचित है। यह मानवीय हृदय की अच्छाई का सबूत है कि वह अच्छाई को स्वीकार करे और बुराई को त्याग दे। हिटलर ने भी जर्मनी मे जर्मनो के हित की दुहाई देते हुए अपील की थी, जो उन्हें उचित मालूम पड़ती थी। इससे स्पष्ट है कि आज भी ससार मे बुरे उद्देश्यो पर सदुद्देश्य का प्रभुत्व है। सभवत हिटलर इसलिए हारा कि उसका मकसद बुरा होने के कारण वह हमसे अच्छा नही था। जहांपर यह अन्तर्राष्ट्रीय सरकार न हो, जहां उचित-अनुचित का फैसला करने के लिए कोई निष्पक्ष न्यायालय न हो, वहांपर किसीको कोई अधिकार नही कि वह अपने पड़ोसी पर अपनी इच्छा को थोपने के लिए बल का प्रयोग करे। 'जिसकी लाठी उसकी भैस' के आदर्शवाले ससार में शक्ति का प्रयोग ही हिंसा है और इसलिए वह गलत है।

युद्धो का मूल कारण विश्व की अराजकता है। हिटलर स्वय उसकी उत्पत्ति का कारण नही। जबतक हमारा विश्वास राज्य से परे किसी महान् उद्देश्य में नही है तबतक राज्य का निर्माण स्वय अनियमित है। नागरिको की सेवा को राज्य का उच्चतम साध्य मान लेने मे पागल के उन्माद को उत्तेजना भले ही मिले, लेकिन आधुनिक मानवीय विकास की स्थिति मे वह कोई स्थायी प्रोत्साहन नही दे सकता। प्रभुत्व-शक्ति कानून से परे नही है। धर्म का सबसे बड़ा अधिनियम वह है, जिसकी राज्य सरकारें सेवक है। जब हमारे पास न्यायालयो और पुलिस से युक्त अन्तर्राष्ट्रीय सरकार होगी, तो गाधीजी भी अन्तर्राष्ट्रीय सरकार की ओर से पुलिस की शक्ति के व्यवहार की अनुमति दे देगे। जिस प्रकार सभ्य राष्ट्रीय सरकार कानून के फैसलो और प्रचलित कार्यो को सन्त उपायो द्वारा लोगो से मनवाती है, उसी तरह विश्व-सरकार आक्रमणात्मक राज्यो को बल के जोर से रोक सकती है। तब भी गाधीजी यह चाहेगे कि अन्तर्राष्ट्रीय सरकार कानून-भग

करने वाले से उसी प्रकार असहयोग करे, जैसे कि प्रतिरोध करने वाली जनता जुल्मी सरकार के विरोध मे करती है ।

गाधीजी ने अपने जीवन और अपनी शिक्षा द्वारा शासक और गुरु, ब्राह्मण और क्षत्रिय, स्वप्नद्रष्टा और सगठक के कार्यो मे जो प्राचीन भेद है, उसकी अभिव्यक्ति की है । गुरु, खलीफा, हिन्दू सन्यासी, बौद्ध भिक्षु और ईसाई पादरी को चाहिए कि सत्य को जैसा स्वय देखते है, उसी रूप मे प्रकट करे । किसी भी दशा मे उन्हे बल के प्रयोग मे बचना चाहिए । उन्हे हत्या इसलिए नही करनी चाहिए, क्योकि शत्रुओ को सन्तोष प्रदान करना तथा घृणा को दूर भगाना उनका कर्तव्य है । बल के भौतिक प्रयोग से भी बचने का सदेश देने वाली अहिसा उनके जीवन का सिद्धान्त है । उनकी जडे साधारण मनुष्यो की अपेक्षा कही अधिक गहरी होती है, क्योकि वे आभ्यन्तरिक सोदर्य, वस्तुओ के उद्देश्य बोध, और उस अदृश्य जीवन से शक्ति प्राप्त करते है जो इस जगती के जीवन से परे है । लेकिन फिर भी वे ही जीवन को उन्नत बनाते हुए उसकी व्याख्या करते है । लेकिन दुष्ट व्यक्ति को शारीरिक शक्ति के बिना केवल नैतिक अच्छाई से नही दबाया जा सकता । शूली पर लटक कर ईसा मसीह अपनी ओर सबको आकृष्ट कर सके, लेकिन नैतिक दृढता का वह अपूर्व कार्य, जिसके साथ शक्ति का सहयोग नही था, उन्हे फासी लगाने से नही बचा सका । इतिहास के अन्य थोडे व्यक्तियो की तरह ही गाधीजी का उदाहरण यह प्रकट करता है कि सबसे बडी बुद्धिमानी इसमे है कि दूसरा गाल भी सामने कर दिया जाय । लेकिन इस बात का कोई निश्चित प्रमाण नही है कि इस गाल को कोई काटेगा नही । जबतक कि सारी दुनिया इनसे मुक्त नही हो जाती तबतक हृदयहीन रहेगा ही और ऐसी अवस्था मे सामाजिक व्यवस्था की सुरक्षा हमपर इस दायित्व को लादती है कि हम न्याय करें और जहाँ भी सभव हो हम उसे आध्यात्मिक समझाव द्वारा अमल में लावे और जहाँ आवश्यक हो वहाँ बल के प्रयोग द्वारा अमल में लाये । मत-परपरा और प्रेम-अनुशासन मे विश्वास करने वाले शिक्षको के उपदेश के बावजूद, जो मानव-स्वभाव की दैवी सभावनाओ को जागृत करते है, हमें न्यायाधीश और ऐसी पुलिस की आवश्यकता रहेगी ही, जो बल का प्रयोग बल के लिए, वैयक्तिक लाभ के लिए, अथवा बदला लेने के लिए न करें । वे बल का प्रयोग उचित सत्ता के अधीन करते है और अहिसा अथवा करुणा की सच्ची भावना से ओत-प्रोत रहते है । इसलिए एक ऐसे गुरु के आचरण का भेद, जो एक ओर हमे प्राचीन

करुणा एवं संयत सहयोग की शिक्षा देते समय बल प्रयोग से बिलकुल दूर रहने की शिक्षा देता है और दूसरी ओर पुलिस और न्यायाधीशों के द्वारा उचित सत्ता के अधीन बल प्रयोग की सलाह देता है, कार्य-भेद के कारण पैदा होता है। दया और न्याय दोनों ही अपूर्ण मानव-समाज में अपना स्थान रखते हैं।[1]

अपने समय से पहले पैदा होने वाले सभी लोगों के दंड का भुगतान गांधीजी ने घृणा, प्रतिक्रिया और दुर्दान्त मृत्यु के रूप में किया है। अन्धकार में प्रकाश चमकता है, लेकिन अन्धकार को इसका बोध नहीं रहता। हमारे युग की इस अति मर्मान्तक दुःखान्त घटना ने ऐहिक समाज के भीतर उपस्थित प्रकाश और अन्धकार के, प्रेम और घृणा के एवं तर्क और अतर्क के बीच चलने वाले संघर्ष को स्पष्ट कर दिया है। हमने सुकरात को जहर का प्याला पिला कर मारा, ईसा को सूली पर लटकाया और मध्ययुगीन शहीदों को जलाने वाले ईंधन के गट्ठों को आग लगा दी। हमने अपने अवतारों पर पत्थर बरसाये और मारा। गांधीजी भी गलत समझे जाने और नफरत के दुर्भाग्य से न बच सके। वे अन्धकार और कर्तव्य की ताकतों का मुकाबला करते हुए मरे और इस तरह उन्होंने प्रकाश, प्रेम और विवेक की शक्ति को बढ़ा दिया। कौन जानता है कि ईसाई मत बिना ईसा मसीह के फांसी पर लटके इतना बढ़ सकता था। वर्षों पहले रोम्यां रोलां ने कहा था कि वे गांधीजी को ऐसा ईसा मानते थे जिनको फांसी नहीं लगाई गई। हमने अब उन्हें फांसी भी दे दी। गांधीजी की मृत्यु उनके जीवन का सर्वोत्तम अंग था। ओठों पर रामनाम और हृदय में प्रेम का वरदान लिये हुए वे मरे।[2] गोलियां

---

१ देखिए, राधाकृष्णन् द्वारा लिखित 'भगवद्गीता' (१९४८, पृष्ठ ६८-६९)

२ गांधीजी के पहले वक्तव्य

"उन एक लाख व्यक्तियों के आत्मत्याग से, जो औरों की हत्या करते हुए मरते हैं, एक निर्दोष व्यक्ति का आत्मत्याग लाख गुना प्रभावयुक्त है।" "मैं आशा करता हूँ कि हिन्दुस्तान में ऐसे अनेकों अहिंसक असहयोगी होंगे, जिनके बारे में यह लिखा जाता है कि उन्होंने बिना क्रोध के अपने बेसमझ हत्यारे के लिए प्रार्थना करते हुए गोलियां सहीं।" हरिजन २२ फरवरी १९४८। २० जनवरी १९४८ को जब एक पथभ्रष्ट युवक ने बम फेंका तो गांधीजी ने पुलिस इन्सपैक्टर जनरल को

लगने पर उन्होंने अपने हत्यारे को अभिवादन करते हुए उसके लिए शुभ कामना की। जो कुछ उन्होंने कहा, उसके लिए अपना जीवन दिया। वे उस आदर्श के लिए मरे जिसकी उन्होंने शिक्षा दी थी।

मानव-स्वभाव जिन श्रेष्ठतम आदर्शों को ग्रहण करने के योग्य है, उन आदर्शों से पूरित और प्रेरित होकर, जिस सत्य की उन्हे अनुभूति हुई उसका निर्भय होकर पालन और प्रचार करते हुए, लोभ और भूलो के अजेय दुर्गों के विरुद्ध त्याज्य आशा की अलख दुनिया मे अकेले जगाते हुए, और इसपर भी शात-दृढता के साथ दुनिया की कठोरताओ का मुकावला करते हुए—ऐसी दृढता जो भय और सकट के आने पर ही अपना कुछ भी नही खोती—गाधीजी ने इस विश्वास-शून्य ससार के सामने एक मनुष्य में जो कुछ अच्छा और महान् होता है, उसे प्रदर्शित किया। मनुष्य के प्रयास की अनन्त प्रतिष्ठा मे विश्वास स्थापित करके उन्होंने मानवीय गौरव को जाज्वल्यमान किया। वे ऐसे व्यक्तियो मे से है जो मानव-जाति की सदा रक्षा करते है।

गाधीजी आत्मा के आन्तरिक जीवन की उस शक्ति मे विश्वास रखते थे जो सदा से भारत की अपनी विरासत रही है और इसीलिए द्रोह और घृणा से अपने को मुक्त करने मे, समस्त अपवित्रताओ को जला कर राख कर देने वाली प्रेम की इस शिखा को आगे बढाने मे, मृत्यु की छाया मे भी निर्भीक होकर चलने मे, और आशा की अमर पुकार को हमारे सामने रखने मे वे पूरी तरह सफल हुए। जब नैतिक और आध्यात्मिक समस्याए उन्हे घेर लेती थी, परस्पर-विरोधी आवेग जब उन्हे हिला देते थे और मुसीबत सताने लगती थी तो वे शक्ति और विश्राम प्राप्ति के लिए अपनी इच्छानुसार अपनी आत्मा के एकान्त मे 'स्व' के रहस्यमय क्षेत्र मे चले जाते थे। धर्म के अर्थ और मूल्य के विषय मे उनके जीवन ने हमारी भावना को एक नई चेतना और एक नई ताजगी प्रदान की है। ऐसे व्यक्ति, जो आध्यात्मिक भावना से भरे होने पर भी अपने ऊपर दु खी मानवता का भार ओढ लेते है, दुनिया मे बहुत दिनो के बाद पैदा होते है।

हमने उनके शरीर का अन्त कर दिया, किन्तु उनकी आत्मा, जो स्वय एक

उसे तग न करने के लिए कहा। उन्होंने कहा था कि पुलिस को चाहिए कि वे उसे ठीक विचार और काम की ओर प्रवृत्त करें। गाधीजी ने श्रोताओ को अपराधी के प्रति रोष न करने की चेतावनी दी थी। 'हरिजन,' २ फरवरी १९४८, पृष्ठ ११

दैवी प्रकाश है बहुत दिनो और बहुत दूर तक प्रवेश कर, असम्य पीढ़ियो को श्रेष्ठता से जीवनयापन के लिए प्रोत्साहित करती रहेगी ।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्व श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्व मम तेजोऽसम्भवम् ।

(गीता, १० अध्याय, ४१ श्लोक)

अर्थात्—जगत मे जो कुछ भी शक्ति, विभूति और गौरव मे पूर्ण है उनको मेरे तेज के अश मे ही उत्पन्न समझो ।

: २ :

शहीद गांधी

वेरा ब्रिटेन

३० जनवरी, १९४८ की शाम के ठीक पाच बजे के बाद, महात्मा गाधी अपनी प्रार्थना-सभा की ओर बढे । यह प्रार्थना बिडला-भवन मे लगभग ५० गज की दूरी पर एक खुले लॉन मे होती थी ।

वे, अपने अन्तिम और सबसे अधिक सफल उपवास मे, जिसने कुछ समय के लिए साम्प्रदायिक रक्तपात को बन्द कर दिया था, अभी पूरी तरह स्वस्थ भी नही हो पाये थे । अपनी दो नातिना के कधो का सहारा लिये हुए वे उस लाल पत्थर की वेदी की ओर चले, जहा रोज शाम को लोगो के सामने वे कुछ प्रवचन करते थे । पाच सौ के करीब लोग, जो उन्हे बडे ध्यान से देख रहे थे, प्रसन्न और हँसमुख गाधीजी को अपने बीच मे रास्ता देने के लिए दो कतारो में खडे हो गये थे ।

जैसे ही वे चबूतरे की तीन सीढियो के ऊपर पहुचे एक आदमी भीड को चीरकर सामने आया । दोनो हाथ जोडते-जोडते महात्माजी के मुख से ये आखिरी शब्द निकले, "मुझे आज देर हो गई ।" इसी समय उस अजनबी आदमी ने अपनी खाकी बुश-शर्ट के भीतर से एक रिवाल्वर निकाला और महात्माजी पर तीन बार गोली चलाई । वे वही जमीन पर गिर पडे । गिरते ही कधो पर से हटे हुए अपने दोनो हाथो को ऊपर उठाते हुए उन्होने भय-विह्वल भीड की ओर इस तरह जोडा, मानो वे प्रार्थना कर रहे हो ।

इस प्रकार अहिंसा का सरक्षक सत, भारत की महान् आत्मा हिंसा के हाथो

हमेशा के लिए नष्ट कर दी गई। वे उन थोडे लोगो मे से एक थे जिन्होने जिन्दगी के एक विशेष तरीके का अपने ऊपर सफलतापूर्वक प्रयोग किया था। यह ऐसा तरीका था, जिसके अधिक स्त्री-पुरुषो द्वारा अनुसरणमात्र से कुटिल मानव-जाति आनन्द की एक निश्चित दुनिया की ओर बढ सकती है।

सभी सत स्वय ईश्वर नही होते, इसलिए उन सबमे कुछ-न-कुछ दोष रहते है। अभी पिछले दिनो मेरी एक प्रसिद्ध महिला से भेट हुई, जो महात्मा गाधी मे किसी भी सत-गुण को मानने से नाराजगी के साथ इन्कार कर रही थी, क्योकि महात्माजी ने सतति-निरोध के पक्ष को आगे नही बढाया था। उपर्युक्त महिला का विचार था कि गाधीजी द्वारा इसके समर्थन से भारतीय नारी की पीडा बहुत अश तक कम हो सकती थी, और साथ ही आबादी की अति-वृद्धि मे जो खाद्य-समस्या उपस्थित हो गई है, वह भी हल हो जाती।

परन्तु, शायद ही कभी अपने इन दोषो के कारण सतो की हत्या होती है। बुराई एक ऐसा तत्त्व है, जो सबमे पाया जाता है। अधिकाश लोग ऐसे है जो अपने इस दुर्गुण का प्रदर्शन जीवन के अधिक क्षेत्रो मे करते है। प्राय उनका सारा मस्तिष्क अधेरे मे भरा रहता है, परन्तु सतो की मृत्यु उनके गुणो के कारण होती है। उनकी हत्या उनके इस प्रकाश के कारण की जाती है, जिसे अन्धकार सहन नही कर सकता।

अपनी 'दी वेराइटीज ऑव रिलीजियस एक्सपीरियेस' (धार्मिक अनुभवो की अनेकताए) नामक पुस्तक मे विलियम जेम्स ने कही भी पाई जाने वाली सतो की कुछ विशेषताओ की परिभाषा करने की कोशिश की है। उनका कहना है कि सत अपनेको हमेशा सकीर्ण स्वार्थो का भागीदार न मानकर व्यापक जीवन का अग मानता है। अपने भीतर वह एक आदर्श शक्ति की उपस्थिति का विश्वास लेकर चलता है, जो कि ईसाइयो के लिए ईसा या ईश्वर का रूप होता है। अपनी तमाम जिन्दगी मे वह इस आदर्श शक्ति के कोमल और अनवरत प्रभाव को महसूस करता रहता है, और स्वेच्छापूर्वक वह अपनेको इसके नियत्रण मे छोड देता है। ऐसी अवस्था मे उसके अधिकाश अस्तित्व मे 'अह' का भाव ओझल हो जाता है, इसलिए इसका अन्तर स्वतत्रता और उल्लास मे भर जाता है। दूसरो के प्रति सेवा-भाव के विचार मे उसका भावात्मक केद्र बिंदु प्रेम और सामजस्य की ओर बढता है। लौकिक मूल्यो के निषेधात्मक पक्ष मे हटकर वह स्थिर ईश्वरप्रेमी की स्वीकारोक्ति की ओर बढता है।

जब यह आध्यात्मिक अवस्था स्थिर हो जाती है तो सत वैराग्य और पवित्रता की ओर बढता है। वह अपनी आत्मा को पशुता एव वासना के तत्त्वो से मुक्त करता है। उसके लिए लोकप्रियता और महत्वाकाक्षा की अहमियत खत्म हो जाती है। उसके अतर की प्रेरणा नकलीपन और बनावट से उसकी रक्षा करने लगती है। जनता के दिमाग मे उत्पन्न आतक और भनभनाहट का उसपर कोई प्रभाव नही पडता। उसकी आत्मशक्ति उसे सहनशीलता और धीरज की उस ऊचाई तक ले जाती है, जहा पहुँचकर वह खतरे और कष्ट से उदासीन हो जाता है। "शहादत की कहानिया धार्मिक शाति की विजय के सकेत-चिह्न है।" करुणा और कोमलता विकास की अन्तिम सीमा तक पहुचकर अपने साथी इन्सानो के प्रति उसके सबध को प्रभावित करती है। "सत अपने शत्रु को भी प्यार करता है, और वह घिनौने भिखारियो तक के साथ अपने भाई जैसा व्यवहार करने लगता है।" ऐसा प्रतीत होता है, मानो व्यापक रूप से सतो के जीवन पर लागू होने वाले इस आरभिक मनोविश्लेषण मे विलियम जेम्स सीधे गाधीजी की जीवनी का ही उल्लेख कर रहे हो—यह बात और है कि १९१० मे मृत्यु हो जाने के कारण उन (महात्माजी) के अस्तित्व तक से वे भली-भाति परिचित नही रहे होगे।

यद्यपि सतो की विशेषताओ मे सार्वभौमिक गुण होते है, तथापि उनके जीवन के प्रति कृतज्ञता की मात्रा इन गुणो के अनुपात मे नही रहती। एक अमेरिकन पत्रकार विलियम ई बोन ने केलीफोर्निया के एक दैनिक 'दी न्यू लीडर' का उद्धरण देते हुए, महात्माजी की हत्या के थोडे ही दिनो बाद ही लिखा था, "अनुकरण करने की अपेक्षा अच्छे व्यक्तियो को मारना सदा आसान होता है।" आगे मि बोन कहते है, "यह वाक्य मानव के सामने सतो द्वारा रखे गये दो विकल्पो की ओर सकेत करता है। एक बात निश्चित है कि सत की उपेक्षा नही की जा सकती है—या तो लोग उसे मानकर उसका अनुसरण करेगे या उसे रास्ते से हटा दिया जायगा। इस कारण गाधीजी की हत्या एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी। क्योकि आज की विकास-अवस्था मे मानवता, हिन्दुस्तान या कही भी, महात्माजी की मान्यताओ और उसूलो को अपने जीवन का नियम नही बना सकती।"

इस वक्तव्य के पीछे छिपे हुए सामान्य सत्य को कभी-कभी सशोधित रूप मे अमल मे लाया जाता है। समय-समय पर सत अग्रदूतो का दीर्घकालीन कार्य प्रौढ लोगो की एक बडी अल्प-सख्या द्वारा अथवा बहुसख्यक व्यक्तियो की एक छोटी सख्या द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है और इस प्रकार सपूर्ण समाज सिद्धि को

प्राप्त कर लेता है। दास-प्रथा की समाप्ति और भारतीय स्वाधीनता की स्वीकृति, इस पद्धति के दो उदाहरण है। ये इस बात का भी उदाहरण है कि आमतौर पर सामाजिक और राजनैतिक सुधारो के आन्दोलनो मे हमेशा पीछे रहने वाले विधि-निर्माताओ का एक बहुमत भी धीरे-धीरे पीडित और दलित लोगो के प्रति देव-पुरुपो की भाति उत्सुक हो जाता है।

जेम्स ने एक स्थान पर लिखा है, "अपनी असीम मानवीय कोमलता के कारण, सत इस विश्वास के महान् ज्योतिवाहक और अधकार को दूर करने वाले नेता होते है। वे दूसरो को रास्ता दिखाने वाले अगुआ है और क्योकि आजतक दुनिया उनके कामो के साथ नही है, इसलिए प्राय दुनिया के विपयो या मामलो के बीच वे असगत से प्रतीत होते है। फिर भी वे नवीन दुनिया को अपने भीतर धारण करने वाले और अच्छाई की सभावनाओ को, जो कि उनके बिना सदा छिपी पडी रहती, प्राण और जीवन देने वाले है। जब वे हमारे सामने से हमेशा के लिए चले गये तो फिर इतना नीच रह सकना हमारे लिए सभव नही है, जितना कि स्वभावत हम होते है। आग की एक चिनगारी दूसरी को प्रज्वलित करती है और इसलिए मानवीय शक्ति मे अपने उस अपार विश्वास के बिना, जिसे कि वे अमली तौर पर हमेशा दिखाते रहते है, शेप हम सब एक प्रकार की आत्मिक जडता मे पडे रहते है।"

अपने इस असबद्धता के गुण के कारण सत दुनिया के इमान के लिए, हठी राजनीतिज्ञ, व्यस्त सपादक और यथार्थवादी धार्मिक नेता के लिए असह्य हो जाते है, और इसी गुण के कारण उन्हे सभावित शहादत प्राप्त होती है। मानव-पुत्र (ईसा) के समान वह अपनी ही आत्मा के पास आता है, और उसके ही लोग उसका स्वागत नही करते। कभी-कभी यह अ-स्वागत केवल नकारात्मक होता है, उसे अकेला छोड दिया जाता है, बहिष्कृत कर दिया जाता है, त्याग दिया जाता है। परन्तु दूसरे समय उसे केवल टाला नही जाता है वरन् हिंसापूर्वक धावा बोलकर उसका विरोध किया जाता है, उसके साथियो और उसके बीच की खाई बहुत चौडी होती है, और इसलिए उसके द्वारा निर्धारित जीवन-स्तर पर चलना कठिन होता है। और तभी सत का यश रूपातरित होकर शहीद के ताज मे बदल जाता है।

उसके जीवनभर यह मृत्यु ऐसे पुरुप या स्त्री की प्रतीक्षा करती है जिसके काबिल यह ससार नही है और बलिदान की छाया के समान इसकी छाया हमेशा उसके आत्मिक उत्कर्ष पर पडती है, और शायद यही कारण है कि गाधीजी की

शहादत के समय वहुत-सी कलमो ने यही टीका की थी कि इम प्रकार का अत ही उनके लिए सवमे अविक गोरवपूर्ण था । मत अपने भाग्य मे कभी नही डरता, क्योकि उमे पहले से ही यह पता है कि उमने मृत्यु को जीत लिया है ।

जेम्स आगे फिर कहते है, "पैदायगी सत मे, यह मान लेना चाहिए, एक ऐसी वात होती है जो कि मसारी मनुष्य की वामना को ऊपर उठा देती है ।" जिम मसारी मनप्य ने महात्माजी को मारा, वह निस्सदेह यह स्वीकार कर लेगा कि सत लोग जिन दैवी मूल्यो की अपील करते है, वे मूल्य 'दुनियावी इन्सान' के मूल्यो से विल्कुल भिन्न होते है । सत हठी और वलवान् नही होता, वल्कि वह लोगो को विनम्रता मे वदल जाने वाली अपनी ताकत से जीतता है । वह योग्यता मे अथवा हेयभाव मे वसने वाली स्थूल प्रगमा को नही वल्कि 'सद्स्वभाव' मे निहित मनुष्य के उम कोमल रवभाव और विवेक को चुनौती देता है, जिस 'सद्स्वभाव' को इन्सान अक्सर दवा देता हे ।

इस प्रकार ममारी और सावु के आदर्ग मे एक वुनियादी अन्तर होता है जिसे ससारी आदर्ग के समर्थक सहन नही कर सकते, और ऐसी अवस्था मे उद्देग्य की मजिल तक पहुचने मे जव दो-चार कदम गेप रह जाते है तभी समारी गक्तिया सत को दुनिया से हटा देती है । इम मानसिक अवस्था को स्पप्ट करने के विचार से विलियम जेम्स नीत्शे का एक उद्धरण पेश करते है, जोकि सतो को ऐसे "सामान्य औसत मूल्यो" का घोर गत्रु मानता था, जिन्हे कि वह सामान्य मानवी प्रकार का समरूप समझता था ।

"और इस अवस्था मे सफलता पाने वाले महापुरुपो के विरुद्ध एक अतिक्षुद्र पड्यत्र का अनवरत जाल रचा जाता है । यहा सफलता पाने वाले की एक-एक वात से घृणा की जाती है, मानो स्वास्थ्य, सफलता, गक्ति, अभिमान, चेतना आदि सव वुरी वाते हो ।"

नीत्गे के समान मनुष्यो को आतम-त्याग मे एक रोग, लगन और प्रेम मे एक प्रकार की दिमागी कमजोरी दिखलाई पडती है । पिछले चन्द वर्षो मे ऐसे विगडे दिमागो के उदाहरण वहुत मिलते है—ये उदाहरण केवल मनोवैज्ञानिक पडितो के क्षेत्र मे ही नही, जिनके प्रतिनिधि नीत्गे है, वल्कि प्रभावगाली पत्रकारो और जिम्मेदार राजनीतिज्ञो, मवमे,ये तत्त्व पाये जाते है, जो वम के द्वारा सार्वजनिक सहार एव विना शर्त समर्पण आदि के घृणित कामो तक के औचित्य को सावित करने की कोशिश करते है । धार्मिक नेताओ तक का वहुमत इस सामूहिक अवस्था

के ज़ोर को रोकने मे असमर्थ रहा है । आर्क विगप ऑव केटरवरी और यार्क द्वारा सन् १९४६ मे नियुक्त एक कमीशन की रिपोर्ट मे, जिसका नाम 'चर्च और अणु-वम' था इन लोगो ने मुह फाड-फाड कर पहले अनिश्चित युद्ध के और विना भेदभाव किये होने वाली वम-वारी के विरुद्ध वडे-वडे वक्तव्य दिये थे ।

सतो के प्रभावपूर्ण गुणो से डरकर, जिनके कारण उनके नकली मूल्यो की कोई कीमत नही रहती, विकृत मानव और उनके प्रभाव के दूसरे लोग अहिंसा के प्रभाव को वढने का मौका देने की अपेक्षा उसका कत्ल करना अधिक पसन्द करते है । सतो के दृष्टिकोण को ठीक-ठीक न समझ सकने मे ही उनकी सफलता छिपी है ओर यहीपर वे गलती करते है, क्योकि वे स्त्री-पुरुप जो कि ईश्वरी शक्ति द्वारा नर्वारित नियमो का पालन करते है—जिस शक्ति के अस्तित्व मे वे स्वय जीवित है—उनके विचार मे जीवन सीमारहित ओर अनन्त है और मृत्यु जिन्दगी का अन्त नही है ।

शहीद होने वाला सत केवल शरीर-शास्त्र की दृष्टि मे असफल होता है, क्योकि वह अपने शरीर की रक्षा की चिन्ता नही करता । लेकिन धर्माचार्य पॉल के सवध मे विलियम जेम्स ने एक स्थान पर लिखा है, "वे वडे शानदार तरीके मे इतिहास के एक अधिक व्यापक वातावरण मे समा जाते है ।" इस विशिष्ट दृष्टिकोण मे देखने पर गाधीजी भी विजयी सावित होगे—'साधुता का एक खमीर' जो कि इन्सानियत को आत्मिक अनुभवो के एक नये स्तर तक उठा देता है ।

: ३ :

महात्मा गांधी का विश्व-संदेश

जार्ज केटलिन

आज दुनिया का सवसे महत्त्वपूर्ण कार्य विश्व-शाति की स्थापना है । राज-नीति-शास्त्रियो का इस वात मे आश्चर्यजनक मतैक्य है कि आज विश्व-सरकार ही शाति कायम करने का सवसे वडा सावन है और यही शाति सभ्यता की प्रथम नियोजक है । एक प्रकार मे यह स्वतन्त्रता और सामाजिक न्याय मे भी अधिक

जरूरी है। क्योंकि बिना इसके ये दोनो भी खोखले है। सत्य के प्रति आदर हमें इसी नतीजे पर पहुँचाता है।

फिर भी राजनीति-विज्ञान साधन के विवाद से ऊपर नही उठता, और ऐसी दशा मे विश्व-सरकार राजनैतिक मशीन का एक प्रकार मात्र रह जाती है। जीवन-मूल्यो की योजनाओ मे लोगो ने जिन साध्यो को प्रथम चुन लिया है उन्ही साध्यो पर इसके (विश्व-सरकार) पसन्द किये जाने अथवा न किये जाने का प्रश्न निर्भर करेगा, और इस विश्व-सरकार की सफलता उसको कार्यान्वित करने वाले व्यक्तियो की भावना और निश्चय पर निर्भर रहेगी। बर्ट्रेन्ड रसेल ने अपने 'फ्यूचर आव मैनकाइन्ड' (मानव-जाति का भविष्य) नामक लेख में जो बात कही है, वह हमें याद रखनी है और उसका सामना करना है—"मेरे विचार मे हमें यह मान लेना चाहिए कि विश्व-सरकार की प्रतिष्ठा बलपूर्वक ही की जा सकेगी। मुझे आशा है कि ज़ोर या शक्ति की धमकी मात्र ही काफी होगी, लेकिन, यदि उससे काम नही चलता तो हमे सचमुच शक्ति का सहारा लेना होगा।" कुछ लोग, इतिहास के सबको को ध्यान मे रखते हुए 'शक्ति का सहारा लेना होगा' के स्थान पर 'शक्ति का सहारा लिया जा सकता है'—वाक्य का प्रयोग कर सकते है। हमारी सामयिक कूटनीति की यह परख है कि यह 'सकता है' 'होगा' मे बदलता है या नही। यह अनधिकृत नैराश्य और अनधिकृत अनुमान जो या तो हमारी स्वय की कमजोरियो और कायरतापूर्ण दलबन्दियो के कारण उत्पन्न हुआ है या युद्ध अनिवार्य है, ऐसा मान कर चलने वाले रूप में 'यथार्थवाद' की कमी के कारण है। ऐसी परिस्थिति मे भी हमारा यह कर्तव्य है कि एक दिन के लिए भी, हम सभी देशो के सद्भावना-पूर्ण लोगो की बातचीत को आगे बढाने और साधारण व्यक्तियो को युद्धप्रिय देश-भक्ति और आक्रामक प्रोत्साहन न देने वाले कर्तव्य से सचेत करने वाले समझौते के काम को ढीला न पडने दे।

फिर भी विश्व-सरकार की स्थापना किसी तरह से हो, उसका व्यवहार बहुत ही भिन्न तरीको से किया जा सकता है। इसे दया और पवित्रता की उच्च भावना से काम में लाया जा सकता है, जिसमें हिंसा और शक्ति के लिए कम-से-कम स्थान हो, अथवा सबकुछ उजाड कर उसे शाति का नाम दे सकने वाली अपनी उस न्याय-पद्धति और तर्क के बल पर एक सर्वसत्तावादी सरकार का रूप दिया जा सकता है। यह भेद सत अगस्टायन या उनसे भी पुराना है।

तब, हममे से जो लोग विश्व-शाति और विश्व-सरकार के लिए काम करने

है, आज यह मानते है कि यदि यह सरकार और अधिक शोषण को आश्रय नही देती है तो निश्चय ही इसे सत्य के प्रति आदर और सद्भावना से प्रेरणा या उत्साह मिलना चाहिए। निस्सदेह हमारी सीमा के भीतर शांति और अमन की स्थापना पुलिस द्वारा हो, परन्तु जनता का विशाल बहुमत यदि अपने दिमाग और आदतो से स्वय कानून का पालन करने वाला नही बन जाता तो यह पुलिस शक्तिशून्य ही रहेगी। चिरस्थायी शांति अहिसक स्वभाव के भीतर भावना की उचित शिक्षा से ही उत्पन्न होती है।

कुछ ऐसे व्यक्ति होगे, जिन्हे न्यायाधीश का काम करना होगा, कुछ ऐसे होगे जो पुलिस का काम करेगे, कुछ क्लर्क और शिक्षक बनेगे। यही उनका धर्म है। अहिसा की शिक्षा देना और दुनिया का ध्यान अहिसा के सौन्दर्य-शिक्षा की आवश्यकता की ओर आकर्षित करना गाधीजी का अपना मिशन था, विशेष कर ऐसी दशा मे जबकि अन्तर्राष्ट्रीय विप्लव के युद्ध और अधिक घृणित तथा सभ्यता की आत्मा के ही विनाशक बन गये हो। एक राजनीतिज्ञ की हैसियत से विश्व-सरकार की योजनाओ की व्याख्या का काम वे दूसरो पर छोड गये थे। किसी समस्या की जड मे पहुचकर वे यदि एक नई मानसिक ओषधि, एक नई मानसिक चिकित्सा, आत्मा की एक नई दवा की ओर सकेत कर सके तो समझो कि उनका काम तो उसी समय पूरा हो गया। उन्होने जो उपदेश दिये, वे सब पुराने थे, क्योकि वे लोगो को टाल्स्टाय से भी बहुत आगे 'गिरि-प्रवचन', बुद्ध और गीता तक ले गये। सभी सच्चे धर्मो की तात्विक भावना का नशा उनपर छाया था। परन्तु जो कुछ उन्हे कहना था, वह भी एक प्रकार से नया था, क्योकि इसी बात की परीक्षा बाल-शिक्षा के क्षेत्र मे अति आधुनिक मनो-वैज्ञानिक भी कर चुके है और हममें से कुछ की ऐसी राय है कि इसी तरह की आधुनिक मनोशिक्षा राजनैतिक सबधो के विषय मे भी लागू होनी चाहिए।

गाधीजी की दोहरी जिन्दगी थी—एक काग्रेसी की जिन्दगी, जो भारत की मुक्ति के उद्देश्य मे राजनीति मे, और राष्ट्रीयता के उत्थान मे लगी थी—हालाकि उनके लिए मेजिनी के समान राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता से अलग नही थी। उनकी एक भीतरी जिन्दगी भी थी, आश्रम की जिन्दगी, जो कि फीनिक्स के दिनो से एक प्रकार से आश्रम या लौकिक सघ की ही जिन्दगी रही थी। उन्होने वही बाते कहनी शुरू की थी जिनकी कि आधुनिक नास्तिक जगत् को, जो कि आज १९वी सदी के लौकिक भौतिकवाद मे शनै शनै उबर रहा था, जरूरत थी। और यह कि

राजनीति से धर्म का न तो विच्छेद हो सकता है और न होना चाहिए। दुनिया को धार्मिक व्यक्तियो की, साधुओ और सन्यासियो की उतनी ही आवश्यकता है। यह वात साधारणतया हमारे पेशेवर राजनीतिज्ञो के गले से नीचे नही उतरती। सर स्टेफर्ड क्रिप्स और लार्ड हेलीफेक्स के समान कुछ अग्रेजो ने इसे समझा। प्लेटो के समान गाधीजी का यह विश्वास था कि प्रेम की पवित्रता कर्तव्य भी है और अधिकार भी और यह कि वह लौकिक व्यक्तियो को उपदेश दे। वे भीतर और वाहर पूरी तरह धार्मिक थे। उनके कुछ विरोधी उनमे एक प्रकार की वुजुरगाना ऊचाई या वडप्पन देखते थे और इसीलिए उनसे डरते थे।

इधर कुछ ऐसे भी लोग है, जो उन्हे देवता या अवतार का रूप देने मे व्यस्त है, ठीक इसी प्रकार जिस प्रकार कि स्वामी रामकृष्ण परमहस धीरे-धीरे देवता वनाये जा रहे है। मेरा विचार है कि गाधीजी की कभी भी यह इच्छा नही रही होगी। लेकिन दूसरो के लिए नियम वनाना मेरा काम नही है। ईसाई-समाज की तरह एक व्यक्ति के विषय मे वोलते हुए, जो जेक्विस मेरीटन—कैथोलिक दार्श-निक—के समान इस वात मे विश्वास करते थे कि एक रहस्यवादी सत्य-निरीक्षण की वुद्धि ईश्वर ने कृपापूर्वक अपने उन सभी भक्तो को दी है, जो ईमानदारी और सच्चाई के साथ उन्हे खोजते है, इस विषय मे मै इतना ही कह सकता हूँ—राज-कुमारी अमृतकौर के ही शब्द मानो मेरे शब्दो मे भी प्रतिध्वनित होते है— "ईश्वर के द्वारा प्रशसित ऐसे वहुत कम लोग होगे, जैसे गाधीजी।" सतो के समान वे एक अति विनम्र व्यक्ति थे और मेरे लिए यह वहुत खुशी की वात है कि उनकी आत्मा की शाति के लिए मेरी जानकारी मे लदन और पेरिस के गिरजाघरो मे प्रार्थना की गई। यह पर्याप्त है कि युग-युग तक एक सत के सदृश्य और निश्चय ही एक ईश्वर द्वारा निर्वाचित दूत के सदेश के समान उनका सदेश लोगो के कानो मे गूजता रहेगा। 'औसरवेटर रोमेनो' नामक अखवार के शब्दो मे—"उन्होने अपने तरीके से ईसा का अनुकरण किया था। ईसा ने कहा था, 'वे धन्य है जो शाति को प्राप्त हो चुके है' और गाधीजी को यह गौरव प्राप्त हुआ, हालाकि उन्हे इसके लिए अपना जीवन देना पडा।"

उनका सदेश है क्या? वही पुराना सदेश कि जिन्हे आदेश दिया जाता है, उन्हे अनुशासन के चारो अगो, ब्रह्मचर्य, गरीवी, आध्यात्मिक साहस और सत्य के प्रति अडिग प्रेम का पालन करना ही चाहिए। उन्हे जीवमात्र के प्रति दया का व्यवहार करना चाहिए जैसाकि सत फ्रासिस ने भी कहा था, अहिसा का मन और

कर्म से पालन करना चाहिए। और यह कि मृत्यु के वाद जीवन के आदि-भौतिक अनुमानो और ईश्वर की अप्रश्नात्मक इच्छा की परीक्षा करते रहने के वजाय अपने हृदय के इरादो पर अधिक विचार करना चाहिए, और यह कि उन्हे कष्ट पहुँचाने के वजाय सदा स्वय कष्टो का स्वागत करना चाहिए, क्योकि इससे व्यक्ति को मानवमात्र के प्रति कल्पना और समवेदना की प्रेरणा मिलती है, और यह कि वे सहनशील, नम्र, दयालु लम्बे समय तक कष्टसहिष्णु वने, क्योकि इन वातो के विरुद्ध कोई नियम नही है।

मार्क्सवादियो के इस कथन के विरुद्ध कि सर्वप्रथम पृथ्वी पर 'पदार्थ' था गाधीजी ने 'आत्मा' का उपदेश दिया था। मार्क्सवादी सिद्धान्त के अनुसार सत्य सापेक्ष है और वह सामाजिक सुविधाओ पर निर्भर करता है। गाधीजी का कहना था कि सत्य का मूल्य सदा निरपेक्ष है और यही ईश्वर का रूप है। वस्तुओ के द्वन्द्वात्मक तत्वज्ञान-सवधी निरर्थक शास्त्र के विरुद्ध उन्होने सीधे-सादे नैतिक सत्यो और आवश्यक एव स्वत-प्रमाणित मानव-आचरण के मूल्यो को हमारे सामने उपस्थित किया। प्रत्येक कार्य की जड मे मूलत आर्थिक कारण है—इस व्याख्या के विपरीत उन्होने मनुष्यो को युद्ध के मनोवैज्ञानिक प्रारंभिक कारणो को अपने भीतर, अपने विचारो मे एव आत्म-नियत्रण-शून्य लोगो की ऐसी चर्चाओ मे, जो हिसा के नाटकीय प्रदर्शन को हमेशा प्रेम करते है, खोजने की शिक्षा दी। हिसा की जडे किसी एक जाति की विशेषता नही, वरन् वे जडे प्रत्येक व्यक्ति के भीतर छिपी है। इसलिए कोई भी व्यक्ति इस पाप से मुक्त नही है। वर्ग-सघर्ष और वर्ग-द्वेष फैलाने वाले मार्क्सवादी एव उन सभी लोगो के विरुद्ध जो अन्य दूसरे प्रकार की साप्रदायिक, धार्मिक, जातीय, वर्गीय या रगभेद-सवधी घृणा का प्रचार करते है उन्होने एक ऐसा रास्ता दिखाया जिस पर चलकर मानव-जाति अपनी शक्ति के विकास की दिशा म आगे वढेगी। इस भारी मार्क्सवादी सदेह की जगह उन्होने भरोसे और निष्कपट सदिच्छा से प्राप्त होने वाले पुरस्कार की शिक्षा दी। वे मार्क्सवाद के विरोधी नही थे। वे वहुत रचनात्मक थे और इसीलिए मार्क्सवादी होने मे वे कोसो दूर थे।

यही कारण है कि उनका दर्शन एक प्रकार से नया न होते हुए भी दूसरी तरह से विल्कुल नया, विल्कुल सामयिक है, और भूल से आज लोग जिसे समाज का वैज्ञानिक दर्शन कहते है, उसके और दभ की वारीकियो के विरुद्ध वह एक प्रचड आग है। वे एक ऐसे स्वप्नदर्शी थे, जिसने अपने वहुत-से स्वप्नो को साकार

कर दिखाया। जहाँ कि एक ओर हिटलर, स्टेलिन जैसी विश्व की सफल हस्तियो ने लोगो की सभावना मे अधिक शीघ्र दुनिया मे अपने शत्रुओ का ही निर्माण किया, वहीपर इस 'असफल' व्यक्ति ने, जो कभी जेल मे बन्द किया गया, कभी लोगो ने दुतकारा और अन्त मे जो कत्ल किया गया, और जो हमारे युग का एक बडा व्यवहारवादी राजनीतिज्ञ था, हमे केवल हिन्दुस्तान की आजादी ही नही दिलाई वरन् दुनिया को आशा का एक सदेश दिया—ऐसी दुनिया को जो आशा की माग कर रही है।

यह एक ऐसा दर्शन है जो यह दावा करता है कि इस दृश्य और चेतन जगत् से परे, जहा एक वस्तु दूसरी के बुरी तरह से पूरे क्रोध और जोर के साथ पीछे पडी है, एक ऐसा महत्त्वपूर्ण ससार है—मानव-मूल्यो का एक ठोस जगत् है—जहा न तो भिन्नताए हैं और न परिवर्तन की छाया, और जहा सच्चाई और नम्रता के साथ अपने भीतर खोज करने वाला व्यक्ति शाति-रत्न को प्राप्त कर सकता है। उनका शातिवाद एक वैरागी के शातिवाद से भिन्न था। फकीर वे अवश्य थे, परन्तु वे यथार्थ या तथ्य से भागते नही थे, उसमे प्रवेश करते थे। परन्तु वस्तुओ मे छिपे आसुओ को भली प्रकार जानते हुए, और दु ख के क्षेत्र मे नौसिखिया न होते हुए भी, वे एक ऐसे व्यवहारवादी थे, जिन्होने मेहतर के काम तक से कभी नफरत नही की। अपने पीछे चलने वालो को वे हमेशा समाज-सुधार की दुनिया मे जाकर, राजनीति के नीरस रास्तो पर चलकर एक अच्छे मेहतर के समान, एक अच्छे हरिजन के समान दुनिया को स्वच्छ करते रहने का आग्रहपूर्ण उपदेश देते रहे।

वे अपने को हिन्दू कहते थे और सच्चे अर्थ मे वे टाल्स्टायवादी थे। परन्तु वे ऐसे हिन्दुओ मे से एक हिन्दू थे जो अपनी जाति के ऐतिहासिक बोझ से डरते नही थे। इसपर भी डरबन मे अपनी मेज के ऊपर दीवार पर उन्होने ईसा का का एक चित्र लगा रखा था, जो बडा अनोखा और सुन्दर था। इसे उन्होने इस ढग से लगा रखा था कि ऊपर निगाह करते ही वे उसे देखकर याद कर सके। श्रीमती पोलक के शब्दो मे, "उनकी आखो मे सबसे अधिक दया थी।" भारत को उन्होने जो भी सदेश दिया, उतने ही अश तक उन्होने दुनिया को 'विश्व-ईसाईयत' की प्रेरणा का सदेश दिया था—और किसी भी दशा मे कम उस पश्चिम को नही, जो दर्पपूर्वक पूर्व के ईसा को 'अपना' मानने का दावा करता था। पीटर के समान उन्होने पश्चिम को कितनी गहराई तक यह सोचने के लिए विवश किया,

कि इसने इन दिनो अपने उस शहीद देवता को अपने आचरण से कितना अधिक धोखा दिया है। इस शक्ति-पूजक शताब्दी और हमारी वर्तमान सभ्यता के खिलाफ अत्याचारियो के इस नये युग मे जबकि इन्सान एक बार पुन अधर्म के घर मे भौतिक शक्ति का पुजारी बन गया है, गाधीजी मानवता के एक साक्षी है।

गाधीजी के साथ आज वे सब पुकार रहे है जो युद्ध के अस्त्रो द्वारा कत्ल किये गये है, या जिन्हे दम घोट कर मारा गया है, या जो जीवित ही अत्याचारियो द्वारा दफना दिये गये है और जिन अत्याचारियो को हम बिना किसी हिंसक प्रतिरोध के क्षमा कर देते है। डचाउ से लेकर आर्कटिक तक के बन्दी और श्रम कैम्पो मे, जेलो एव धुधुकाते स्पेन के गिर्जाघरो मे जो लोग हिंसा द्वारा विजय पाने वाले दर्शन के, पवित्र भूमि और पवित्र मूर्ति के आसपास तक, शिकार हुए है, उन सब की कामना आज गाधीजी के साथ है। ये सब उन हिंसक और महत्त्वाकाक्षी लोगो के विरुद्ध सच्चे प्रेम-विज्ञान और मनोवैज्ञानिक बुद्धि के गवाह है जो पुकार-पुकार कर कहते है—'घृणा क्यो न करें', जो राष्ट्रीय तर्क के आगे सब बातो को तुच्छ समझते है, और जो सत्य को केवल एक ऐमी नीति मानते है जिसके अन्तर्गत शाति तक एक प्रकार का युद्ध है। 'कवेस्ट्री ड्रेस्डन' और जापान के देवदूत 'कागवा' के देशवासियो की पुकार भी गाधीजी के साथ है, क्योकि जहा न्यायालय होता है और सही न्याय, वहा हमारा राष्ट्रीय अभिमान ऊचा रहता है, लेकिन कुछ ऐसे भी लोग है, जो अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता को भी महत्त्व देते है और मानते है कि हमारे दिलो की कठोरता और हमारी आत्माओ की महत्वाकाक्षा के कारण बाइबल-वर्णित घुडसवार हमारे बच्चो के शरीरो को रोदते हुए चलते रहने चाहिए। गाधीजी ने हमे बिना किसी भय के अपने दिमागो को शात रखने की, भय से शून्य उदारता की शिक्षा दी है जो कि अभिमान के साथ मिलकर सब बुराइयो की जड बन जाती है। साथ-ही-साथ सत्य के प्रति उस निष्ठा का उपदेश दिया है जिसमे कट्टरपन और घृणा के लिए कोई स्थान न हो।

हममे से कुछ लोगो ने अपनी आखो से इस युग के सीज़रो—मुसोलिनी, हिटलर और स्टेलिन—को अपने वैभव के उत्कर्ष के दिनो मे देखा है और फ्रेंकलिन, रूज़वेल्ट, एव गरीब मैसारिक जैसे महान् लोकतत्रवादियो को भी देखा है। शीघ्र ही इन सबको निर्णय का सामना करना होगा। परन्तु इनसब से महत्त्वपूर्ण उस सत की वह शाति-आवाज है जो दबाये जाने के बाद भी आज सुनाई देती है, और जिसके समस्त रास्ते आनद के रास्ते थे, जिसकी सब पगडडिया शाति की पगडडिया थी।

: ४ :

मेरी श्रद्धांजलि

जी० डी० एच० कोल

प्रगसा करने योग्य गुण के विचार से महानता दो प्रकार की होती है। पहली वह जो विशुद्ध बौद्धिक या कलात्मक होती है, जिसके अधिकारी पात्र को चाहे जितनी ख्याति प्राप्त हो जाय, लेकिन यह महानता उसे दुनिया से बिल्कुल अलग कर देती है, जबकि दूसरे प्रकार की महानता अपने पात्र को, एक ऐसे प्रतिनिधित्व का गौरव देकर उसे दुनिया मे मिला देती है जिसमे देश के बहुत-से नर-नारी अपनी आकाक्षाओ और भावनाओ की अभिव्यक्ति केवल शब्दो मे नही अपितु जीवन की कला मे देखते है। मै इस बात को अस्वीकार नही कर सकता कि यह दूसरे प्रकार की महानता कभी-कभी कलाकारो या लेखको म और प्राय कर्मशील व्यक्तियो मे पाई जाती है, परन्तु प्राय से अधिक यह दार्शनिक की अपेक्षा कर्मठ व्यक्ति या सुन्दर वस्तुओ के निर्माता मे पाई जाती है।

गाधीजी प्रधानतया इस दूसरी श्रेणी के महान् व्यक्ति थे। उनकी महानता और अपने लोगो के एव दुनिया के हृदय पर उनके असीम प्रभाव का कारण यह था कि वे अपने देश के साधारण नर-नारी के साथ एक हो जाते थे और उन लोगो को इस तादात्म्य की अनुभूति करा देने की असीम शक्ति रखते थे। जब मै कहता हूँ "उनकी जाति" तब मेरा मतलब केवल हिन्दुओ से नही है, हालाकि उनपर उनकी अपील का प्रभाव पूरी तरह से पडता था; बल्कि मेरा मतलब उन सभी हिन्दुस्तानियो से है—हिन्दू, मुसलमान एव वे सभी जातिया, जो अपने रोजाना के सघर्ष और देश-विभाजन के बावजूद भी मिलकर एक विशाल राष्ट्र का निर्माण करती है और जिनके समान हित और भविष्य की समान सम्भावनाए है। गाधीजी भारतीय एकता की एक महान् प्रतिनिधि हस्ती थे और इसी एकता एव उस एकता मे अपने अडिग विश्वास के कारण उनकी मृत्यु हुई।

हिन्दुस्तान के एक ऐसे प्रतिनिधि को, पश्चिम के लिए, और पश्चिम के भीतर और बाहर रहने वाले उन लोगो के लिए जो उनकी बहुत प्रशसा करते थे, समझ सकना आसान नही है। जिस तरह गाधीजी ने सोचा या महसूस किया, उस

तरह पश्चिम के बहुत कम लोग सोच सकते है या महसूस कर सकते है। और अगर तह मे मानव-स्वभाव के समान स्रोत से प्रवाहित होने वाले विचार और भावनाए वही है तो भी उनकी अभिव्यक्ति करने वाले शब्द और प्रतीक इतने भिन्न है कि वे समझने के रास्ते मे बडी बाधाए उपस्थित करते है। पश्चिम का जीवन और उसपर आधारित बातचीत की भाषा दोनो ही मुख्यत बहिर्मुखी है। मध्य युग के अन्तिम दिनो से, पश्चिमी ईसाईयत, पूर्व मे अपने जन्म के बावजूद, इसी प्रकार की दिमागी आदतो मे पली-पोसी है जोकि यूरोप अथवा यो कहिए कि पश्चिमी यूरोप की अपनी विशेषता रही है। प्राय हम अपने अन्तर्मुखी विचारो और भावनाओ को प्रकट करते समय उन्हे बाह्य जीवन के ढाचे मे ढाल देते है, परन्तु गाधीजी के साथ इससे उल्टी बात थी। वे अपने सामाजिक चितन एव अपने साथियो के प्रति भावनाओ तक को व्यक्तिगत पूर्णता की उस खोज के ढाचे मे ढाल देते थे, जिसे कि उन्होने अपनी 'आत्मकथा' मे "मेरे सत्य के प्रयोग" की सज्ञा दी है। सत्य उनके लिए वातावरण से प्राप्त करने और फिर उसे पचा लेने जैसी कोई बाहरी वस्तु नही थी। यह उनके अतर की चीज़ थी, जो निजी भी थी और वस्तु-सापेक्ष भी। इसे केवल निजी जीवन मे उतारा जा सकता है और इस तरह सत्य का जीवन बिताने के सिवाय उसे प्राप्त करने का और कोई रास्ता नही है। यह बात उनकी 'आत्मकथा' से जिसे कि यह लेख लिखने से पहले मैने एक बार पुन पढा था एव दक्षिण अफ्रीका के उनके सत्याग्रह की कहानी से और उनके अन्य सामयिक लेखो से बराबर प्रकट होती है। सत्य की खोज और प्राप्ति के लिए उन्हे सत्य का जीवन बिताना पडा था और यह साधना उनके अति महत्त्व-पूर्ण आन्दोलनो मे, व्यवहार मे सत्य के द्वारा व्यक्तिगत पूर्णता की अनवरत साधना में और अति महत्त्वपूर्ण वस्तुओ के समान छोटी-से-छोटी बात में बराबर शामिल रही है।

पश्चिमी विद्यार्थी गाधीजी की इस धारणा को बडी आसानी से उनकी आत्मश्लाघा कह सकते है। वे अपनी आत्मा के लिए इतने परेशान से जान पडते है कि मानो यह बात उन सार्वजनिक कार्यों की सफलता से, जिन्हे वे कर रहे थे, कही अधिक महत्त्वपूर्ण हो। फिर भी सच्ची बात यह है कि उनसे कम आत्म-श्लाघी लोग बहुत कम मिलेंगे। गाधीजी अपनी आत्मा के विषय में इसलिए अधिक चिन्तित रहते थे, क्योंकि इसकी पवित्रता और सत्यता को वे अपने उन उद्देश्यो से अभिन्न मानते थे, जिनके लिए वे सघर्ष कर रहे थे। सभवत किसी हिन्दुस्तानी

को इस बात को याद दिलाने की जरूरत नहीं है और न वह गांधीजी के इस तरह के सोचने के गलत अर्थ लगा सकता है। मैं यह स्वीकार करता हूं कि एक बार नहीं, बार-बार मैं इस बात को अन्यथा समझा हूं, जबतक कि मैंने अपने को स्वयं गांधीजी के दिमाग में रखने की कोशिश नहीं की। जिन कार्यों में मेरा विश्वास है उन्हें मैं अपने से हमेशा बाहर मानता हूं। यह मानता हूं कि उनका संबंध केवल बाह्य जगत के अनुभवों से ही है, जबकि गांधीजी उन्हें सदा अपने भीतर देखते थे और यह मानते थे कि आन्तरिक पवित्रता की भावना एवं सार्वजनिक कार्यों द्वारा ही उनमें सफलता प्राप्त की जा सकती है।

उनके बहुत-से सार्वजनिक कार्यों में, अभ्यंतर और बाह्य दोनों ही एक ही वस्तु के समान मिले-जुले रहते थे। उनका उपवास अपने लोगों के लिए केवल प्रायश्चित्त मात्र नहीं था, इससे परे यह उद्देश्य की पवित्रता का एक यज्ञ था। परन्तु इच्छाओं पर पूर्ण विजय प्राप्त किये बिना पवित्रता का यह यज्ञ पूरा नहीं होता—उनका ऐसा विश्वास और अन्तर का दृढ़ वैराग्य, उनके उपवास का दूसरा पक्ष था। निःसंदेह पश्चिम में पहले भी और आज भी साधु हैं, परन्तु वैरागी या फकीर का जो आदर्श गांधीजी के सामने था, उसकी कुछ अपनी विशेषताएं थीं जिनका, मेरे विचार में, पश्चिमी परम्पराओं में पले स्त्री-पुरुषों के लिए समझ सकना बहुत कठिन था। उनकी 'आत्मकथा' में, पश्चिमी पाठक के लिए सबसे कठिन अंश वे हैं जहां वे पत्नी और पुत्रों के प्रति अपने संबंध की व्याख्या करते हैं—मेरा तात्पर्य मुख्यतः बाल-विवाह-पद्धति से संबंध रखनेवाले विचारों से नहीं वरन् पुस्तक के उन अंशों से है जिनमें वे पत्नी के प्रति अपने यौन-संबंधी विचारों एवं संतति की प्रारंभिक शिक्षा पर प्रकाश डालते हैं। पति-पत्नी के संबंध में वासना का कोई स्थान न रहे, क्या सचमुच यह आदर्श हो सकता है? इस विषय में स्त्री के दृष्टिकोण का क्या वजन है, और पुरुष के भी? और बच्चों के विषय में जो कुछ गांधीजी के विचार हैं उनमें क्या एक व्यक्ति की हैसियत से उनकी आवश्यकताओं को पूरा ध्यान में रखा गया है? इस विषय में मेरे अपने जो विचार हैं वे शायद उसे ठीक-ठीक न समझ सकने की असफलता के कारण हों, परन्तु गांधीजी के आदर्श में साधारण मानवता के प्रति उत्साह की भावना की कुछ कमी मेरी निगाह में आये बिना नहीं रह सकती, और जबतक यह आदर्श अमल में आता है तबतक सन्तोष-जनक मानव समाज की उत्पत्ति के अनुरूप इसे कभी नहीं बनाया जा सकता। अगर इसका उत्तर हो कि अपनी पूर्णता में सन्यास का आदर्श एक साधारण

व्यक्ति के लिए नही वरन् अपवादस्वरूप सत के लिए ही निश्चित है, तो मैं यह उत्तर दिये विना नही रह सकता कि सत या वैराग्य का मेरा अपना आदर्श यह है कि साधारण मनुष्य के जिन्दगी के तरीके को ही एक इच ऊचे स्तर तक उठाया जाय, जो न तो इससे तत्व रूप मे सर्वथा भिन्न ही हो और न प्रतिकूल ही।

पाठक चाहे तो मेरे इस विचार को यह समझकर छोड सकते है कि मेरे न समझ सकने का ही यह नतीजा है। यह हो सकता है, लेकिन यह वात मुझे कभी यह सोचने के लिए मजवूर नही करती कि गाधीजी किसी भी दशा मे कम मानव-प्रतिनिधि थे। आत्म-तादात्म्य द्वारा इस प्रतिनिधित्व के गुण के विना उन्होने जो कुछ किया, वह कभी नही कर सकते थे ओर न उनके इतने अनुयायी हो सकते थे। भारतीयो की ओर से चलाया गया दक्षिण-अफ्रीका का उनका सत्याग्रह इस वात का जीता-जागता उदाहरण है। यह सर्वाश मे एक व्यक्तिगत सफलता थी जिस की विशेपता का पहला कारण गाधीजी की वह आश्चर्यजनक शक्ति थी जिससे वे अपने को उन सभी लोगो के साथ मिला देते थे, जिनके लिए वे सघर्प करते थे। इस प्रकार सपूर्ण उद्देश्य को वे अपनी सच्चाई और सत्य के प्रति आदरभाव से भर देते थे।

उनके यही गुण उनके साप हिन्दुस्तान मे आये और वे काग्रेस एव अन्य राष्ट्रीय नेताओ से उनके सवध मे आदि से अन्त तक प्रकट होते है। गोखले मे, जिनकी प्राय गाधीजी वडी उदारता से प्रशसा किया करते थे, उनके वहुत-से गुण पाये जाते थे। भारतीय सघर्प की साधना के समय दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह की अपेक्षा उन्हे अधिक जटिल और व्यापक मसलो का सामना करना पडा था। भारत मे अग्रेजी राज्य की समाप्ति एव स्वराज्य की प्रतिष्ठा के प्रश्न से सर्वदा भिन्न एक ऐसा मसला था, जिसका कि उन्हे सामना करना था, और वह था भारत के निवासियो के लिए एक ऐसी 'जीवन-पद्धति' या जिन्दगी का नमूना मालूम करना, जिसका कि अमल यहा के लिए सवसे अधिक उपयोगी हो। इस विपय मे भारत के राष्ट्रीय नेता स्वय अनेक मत रखते थे और यदि गाधीजी को मैं ठीक समझता हूँ, तो जो रास्ता इस दिशा में उन्होने अपनाया वह दूसरो से विल्कुल भिन्न था। एक ओर, सभी धर्मो मे मतभेद से परे उन समान तत्वो के वे कायल थे और इसलिए हिन्दू धर्म से उन निपेधात्मक दोपो को दूर करना चाहते थे, जिनके कारण समान मानव वधुत्व के विकास की इसमें गुजायश नही रही थी। यही कारण है कि अपने स्वधर्मियो में रूढिवादी और प्रतिक्रियावादी दलो का वे हमेशा विरोध करते

रहे। यह विरोध राजनैतिक और दार्शनिक दोनो दृष्टियो से था। वे एक ऐसे भारत के लिए प्रयत्नशील थे जिसमे भिन्न-भिन्न धर्मो के लोग केवल सहिष्णुता के साथ नही, वरन् भाई-भाई के समान साथ-साथ रह सके। इसके लिए आवश्यक था कि हिन्दू मुसलमानो के प्रति और मुसलमान हिन्दुओ के प्रति अपने दृष्टिकोण को बदल दे, साथ-ही-साथ जाति को मनुष्य-मनुष्य के बीच एक अजेय बाधा के रूप मे अस्वीकार कर दे। दूसरी ओर, वे ऐसे लोगो से सहमत नही थे जो यह चाहते थे कि पश्चिमी सभ्यता के सबक सीखते समय हिन्दुस्तान का जो कुछ अपना है, उसे भुला कर वह एकदम अपने को पश्चिमी जिन्दगी के तौर-तरीके के आधार पर ढाल ले। उनके आदर्श भारत की सीमा मे न तो दौलत को कोई स्थान था, फिर उसे चाहे जिस तरह से क्यो न बाटा गया हो, और न सैनिक शक्ति को। जीवन की सादगी और पार्थिव बल के विरुद्ध नैतिक शक्ति मे भरोसा उनके आदर्श का तकाजा था। इस आदर्श का एक पक्ष उन्हे खद्दर और सादे सघ-जीवन की बुनियाद पचायत की ओर ले गया, एव दूसरे पक्ष के भीतर मे अहिंसक असहयोग की नीति का अथवा व्यवहार मे अपने को असहयोग के रूप मे अभिव्यक्त करने वाली अहिंसा का जन्म हुआ। परिणामस्वरूप इस दृष्टि मे वे पूरे पश्चिमवादी लोगो के मौलिक विरोध मे थे—एक ओर उन मिल-मालिको और इस्पात-उद्योगपतियो के गाधीजी खिलाफ थे जो हिन्दुस्तान मे पूजीवादी औद्योगीकरण का स्वप्न देखते थे, और दूसरी ओर उन मार्क्सवादियो के जो सामाजिक क्राति द्वारा सर्वहारावर्ग के नियत्रण मे एक उसी प्रकार के औद्योगीकरण का सपना देखते थे। परन्तु ऐसा कभी नही हुआ कि अपने इस तीव्र मतभेद के कारण उनका कभी मिल-मालिको से या मार्क्सवादियो से सीधा झगडा हुआ हो, अथवा इन दोनो पर उनका कोई प्रभाव न हो। वे झगडा करना पसन्द कर नही सकते थे, क्योकि वे हिन्दुस्तान को आजाद और सगठित देखना चाहते थे। वे यह कभी नही चाहते थे कि आजादी की लडाई के दौरान मे या इसे प्राप्त करने के बाद देश आन्तरिक कलह मे छिन्न-भिन्न हो जाय। फिर भी इन दोनो दलो का विरोध वे स्वय अपने जीवन के उदाहरण और अपने सिद्धान्त के उपदेश द्वारा किया करते थे। इस विषय मे उनका यह कहना था कि भारतवर्ष पश्चिम से जो कुछ सीख रहा है उसमे से उन पश्चिमी विचारो और व्यवहार को लेकर अपने मे पचा लेना चाहिए जो उसकी अपनी बिल्कुल भिन्न जीवन-प्रणाली को विकसित करने मे सहायक हो, न कि अपनी परपराओ और स्वभाव के विपरीत वह अपने को बिल्कुल पश्चिम

मे हजम हो जाने दे ।

इस सैद्धान्तिक सघर्ष के निश्चय करने मे, स्वतन्त्र भारत को गाधीजी की जीवित सहायता के बिना अपना रास्ता आप खोजना होगा । समस्या के इस हल के प्रति गाधीजी के इस दृष्टिकोण को नगरो की अपेक्षा गावो मे अथवा शहरो मे रहने वाले शहरी दिमाग वाले लोगो की अपेक्षा देहाती ढाचे मे ढले शहरियो से अधिक समर्थन प्राप्त हुआ था । काग्रेस के भीतर किसानो को एक क्रियात्मक शक्ति के रूप मे लाने, एव राष्ट्रीय निर्माण के कार्यो मे उन्हे अयोग्य और असमर्थ मानने वाली विचारधारा का मुकावला करने मे उनका प्रभाव सर्वोपरि था । अभी पिछले दिनो मुझे काग्रेस की वित्त-नीति एव उद्योग-नीति-सवधी रिपोर्ट पढने का मौका मिला था । इस रिपोर्ट मे नीति-सवधी अस्पष्ट एव धुवले उल्लेखो को पढकर मै दग रह गया । यह सव इसलिए हुआ कि नीति निश्चित करते समय रिपोर्ट वनाने वाले ग्राम-उद्योग के विकास और पश्चिमी ढग पर सगठित व्यापक उद्योगीकरण के वीच ठीक चुनाव नही कर सके अथवा राष्ट्रीय सयुक्त योजना मे दोनो प्रणालियो को एक सतुलित स्थान दे सकने मे वे असमर्थ रहे । मै ऐसा मानता हूँ कि दोनो मार्गो मे समन्वय या मेल करने का रास्ता खोजा जा सकता था और यह भी विश्वास है कि कम खर्च एव अधिक श्रम पर आधारित ग्राम-विकास ही वुनियादी गरीवी के खिलाफ उठाये गये आन्दोलन मे एक महत्त्वपूर्ण भाग अदा करेगा । यह धारणा विल्कुल अव्यावहारिक है कि भारतवर्ष को केवल वडी पूजी की ल गत से ही दुनिया के अति वडे व्यवसायी देशो के समकक्ष तेजी से उठाया जा सकता है । इस उद्देश्य की प्राप्ति या तो वडी तेजी से वढने वाली आवादी के कठिन आत्मत्याग द्वारा हो सकती है, जो अनिच्छा से पहले से ही काफी सयमी है अथवा सिद्धान्तरूप मे विदेशो से विशेषकर सयुक्त राष्ट्र अमरीका से असख्य पूजी उधार लेकर हो सकती है । यह सोचना पागलपन होगा कि प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यकतानुसार कर्ज मिल सकता है और यदि ऐसा हो भी सका तो उसका प्रभाव यह होगा कि हमे देश की आजादी से फिर हाथ धोना पडेगा । मेरा यह सुझाव नही है कि हिन्दुस्तान को लागत-पूजी या मूलधन को वढाने की आवश्यकता नही है । स्पष्टत पूजी की आवश्यकता है, विशेषकर सिचाई एव जल-विद्युत योजनाओ के लिए, अधिक उन्नत आवागमन के साधनो के लिए, और एक सीमा तक, इजिनियरिग और उन्नत उद्योगो के विस्तार के लिए । परन्तु इस प्रकार किया गया प्रत्येक प्रयत्न वहुत दिनो तक जनता की गरीवी पर एक दवाव डालता रहेगा और

इस प्रकार उनके रहन-सहन के तरीको पर एक आक्रमण-सा होगा, परन्तु यदि इस योजना को ग्राम-उद्योगो के विकास और ग्राम-निर्माण के ऐसे कार्यो मे मिला दिया जाय, जो असीम श्रम-साधनो मे अधिक उपयोगी काम लेने के लिए निश्चित किये गए हो, न कि ऐसे साधनो का सहारा लिया जाय, जिनमे स्त्री-पुरुष का काम करने के लिए अधिक खर्चीली मशीनो की आवश्यकता हो, तो उनके रहन-सहन के तरीको और उनके जीवन-स्तर मे अवश्य सुधार होगा और वह भी बिना किसी अनुचित दबाव के।

मुझे पूरा भरोसा है कि इस सबध मे गाधीजी का सिद्धान्त पूर्णतया कल्याण-कारी था। यह एक अच्छे अर्थशास्त्र के साथ-साथ एक अच्छा समाज-शास्त्र भी था। इसका सकेत उस मार्ग की ओर था जो देश की बुनियादी गरीबी के खिलाफ हमे एक सफल सघर्ष की ओर ले जाता और जिसमे भारतीय जीवन-प्रणाली के तत्त्वो को पूर्ण सरक्षण भी प्राप्त होता।

यह अर्थ-नीति, अन्य बातो के समान, गाधीजी के लिए धर्म के प्रति उनके दृष्टिकोण मे ही उद्भूत हुई थी। उनकी दृष्टि मे ईश्वर एक था, जिसकी विभिन्न तरीको, नामो और रूपो मे लोग उपासना करते है। व्यक्तित्व की किसी साधारण धारणा के अनुसार यह ईश्वर किसी भी दशा मे व्यक्तिगत हस्ती नही रखता है। गाधीजी का ईश्वर एक प्रकार मे एकता का, अर्थ का एव मूल्य का सिद्धान्त था, और इस ईश्वर की उपासना के स्वरूप स्वय सत्य के पहलुओ मे समाविष्ट थे, जो प्रत्येक धर्म मे बहुत-कुछ नकलीपन और कट्टरपन मे शामिल हो गए थे और इन्ही दोषो से वे धर्म की शुद्धि करना चाहते थे। उनका यह उद्देश्य कदापि नही था कि सभी लोग या सभी हिन्दुस्तानी इस ईश्वर की उपासना एक ही रूप या पद्धति मे करें, बल्कि वे सब अपने सभी ईश्वरो और पूजा-विधियो को एक मौलिक सत्य के विभिन्न पहलुओ एव तरीको के रूप मे पहचानने के लिए सगठित हो।

पश्चिमी सभ्यता के विषय मे उनका लगभग वही दृष्टिकोण था, परन्तु कुछ बातो मे भिन्न था। पश्चिमी जीवन-प्रणाली मे, कुछ स्पष्ट मूल्यो के साथ जो उन्हें अपने लोगो मे भी दिखलाई देते थे, वे उसी आशिक सत्य के मिश्रण को स्वीकार करते थे, परन्तु एक हिन्दुस्तानी के नाते और भारतीय परपराओ एव लोगो के साथ अपनी एकरूपता की गहरी चेतना से पूर्ण होने के कारण वे पश्चिमी जीवन के मूल्यो से उसी सीमा तक अपना तादात्म्य स्थापित नही कर सके, जिस सीमा तक हिन्दुस्तान की प्रत्येक जाति के प्रति उन्होने किया। पश्चिमी जीवन के

मूल्यो को उन्होने देखा और कुछ हद तक उसके कायल भी रहे, पर उसमें हिस्सा नही ले सके। पश्चिमी मूल्य उनके लिए सदा वाह्य रहे और अविकाश मे उनके निजी मूल्यो से उनका मेल नही वैठता था। और इसलिए जव एक ऐसे व्यक्ति के द्वारा जिसका जीवन पूर्णतया पश्चिमी रहा, गाधीजी की महानता के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करने का कर्त्तव्य सामने आया, तो उस समय मुझमें एक वाहरी-पन के भाव का मोजूद रहना अनिवार्य था, क्योकि मै उनका आदर कर सकता हू, पर एकरूपता का अभाव तो रहता ही है। और मै ऐसा चाहता भी नही कि उसे होना चाहिए था।

: ५ :

गांधीजी की सफलता का रहस्य

स्टैफर्ड क्रिप्स

गाधीजी की जिन्दगी ठीक उसी तरह शुरू हुई थी जिस तरह हममे से कोई भी शुरू करता है। उन्होने वकील वनने के लिए पढाई शुरु की और इस सिलसिले मे लदन की 'मिडिल-टेम्पिल' नामक सस्था के वे विद्यार्थी हुए, जहाँ वाद मे उन्होने वैरिस्टर की उपाधि प्राप्त की। आगे चलकर अपने इन दिनो के लिए उन्हे पश्चाताप नही हुआ वल्कि मुझसे अक्सर वे जिन्दगी के उन दिनो की वाते किया करते थे। अपनी कानूनी योग्यताओ पर उन्हे अभिमान था और दक्षिण अफ्रीका मे वकालत करते समय पायी गई अपनी कानूनी सफलताओ को वे वडा महत्त्व देते थे।

यहा आकर पहली वार वे अपने लोगो की मुसीवतो के निकट सपर्क में आये। यही वे हिन्दुस्तानियो और गरीवो के वकील वने और यहीपर उन्होने अपने लोगो को गुलामी से आजादी की ओर ले जाने वाले मानसिक निश्चय और उद्देश्य को मजवूत वनाया।

इस समय तक अहिंसा-सवधी उनका धार्मिक विश्वास एक रूप ले चुका था और इस विश्वास का आधार था भारत मे हिन्दुत्व के गौरवपूर्ण दिनो मे अपनाई गई नीति।

अहिंसा उनके लिए एक निषेधात्मक नीति नही थी। इसका उससे कही अधिक मूल्य था। प्रेम की शक्ति से विजय प्राप्त करने का यह दृढ निश्चय था।

यह निश्चय उस शक्ति के प्रति गहरे और अडिग विश्वास पर अवलम्बित था। प्रेम की इसी शक्ति की बदौलत वे अपने देश को बन्धन से मुक्त करने का आग्रह रखते थे और इसी उद्देश्य के लिए वे हिन्दुस्तान मे लौटकर आये। अहिंसा और प्रेम के द्वारा आज़ादी के इस सदेश को देश के कोने-कोने मे फैलाने के लिए उन्होने वर्षो इस छोर से उस छोर तक पैदल भ्रमण मे लगा दिये।

अपने दैनिक जीवन से धर्म को अलग रखने का खयाल तक उनके मन मे कभी नही आया। धर्म ही उनकी जिन्दगी थी और उनकी जिन्दगी ही धर्म था। जब वे कोई अन्याय होते देखते अथवा जब कोई उन्हे ऐसा लगता कि उनके लोगो के लिए आज़ादी की दिशा मे आगे बढने का यही ठीक समय है तो ऐसी अवस्था मे अपने विश्वास को वे सदा कार्य मे लाते थे। हिन्दुस्तान मे रहने वाले सभी धर्मो और जातियो के लोगो के चरित्र और भावना को उनसे अधिक समझने वाला और कोई व्यक्ति नही था। वे यह भी जानते थे कि आत्मत्याग की बात का उनपर कितना असर होता है और इसीलिए अपने आत्मत्याग को ही उन्होने अपने सभी कामो का केन्द्रीय लक्ष्य बनाया था। बढते हुए भक्त-अनुयायियो से सदा घिरा रहने वाला उनका जीवन सबसे सादा था। उनका भोजन, उनके कपडे, उनका घर, सभी कुछ बिल्कुल सीधा-सादा था।

उन्होने अपनेको आरामतलबी से सदा दूर रखा और ऐसी बहुत-सी चीजो के बिना रहे, जिन्हे हममे से अधिकाश लोग आवश्यकता मान सकते है।

उनका 'उपवास' अपने लोगो के बीच उनका सबसे शक्तिशाली हथियार था और इसके लिए वे हमेशा इच्छुक रहते थे। दूसरे के पापो को अपने ऊपर लेते हुए वे सदा उनके लिए प्रायश्चित्त करते थे।

वे जिद्दी नही थे, परन्तु उन्हे यदि एक बार अपने काम की अच्छाई पर विश्वास हो जाय तो उनके निश्चय की उस दृढता को जीत सकना असभव था।

वे एक साधारण साधु नही थे। कानूनी तौर पर दीक्षित उनका वकीली दिमाग उनके धार्मिक दृष्टिकोण के मेल से तर्क एव निर्णय मे बडा कुशल बन गया था। तर्क के वे बडे अजेय विरोधी थे और प्राय उनका ऐसा रुख रहता था कि जिस नीति और विचार का वे समर्थन कर रहे है, वह ध्यानावस्था मे ईश्वर से आया है और तब दुनिया की कोई ताकत, कोई तर्क, उन्हे उससे हटा नही सकता था। वे जानते थे कि वे ठीक है, बल्कि प्राय प्रार्थना और ध्यान के द्वारा उनका मस्तिष्क किसी निर्णय पर पहुँचता था, अपने साथियो के साथ तर्क करके नही।

एक निष्ठावान व्यक्ति की तरह अपनी मान्यताओ को वे निर्भीकता के साथ सदा अमल मे लाये और पूरी तरह से उनपर भरोसा किया। इस दृष्टि से अपने तमाम समकालीन व्यक्तियो से वे बहुत ऊचे थे। अपने युग मे या पिछले इतिहास मे मुझे ऐसा कोई व्यक्ति दिखलाई नही पडता जिसने भौतिक वस्तुओ के ऊपर आत्म-शक्ति का इस विश्वास और पूर्णता के साथ प्रयोग किया हो।

अपने धर्म के क्षेत्र मे उनका दृष्टिकोण बहुत उदार था। एक सच्चे हिन्दू के नाते उन्होने दूसरे को अपने धर्म मे कभी शुद्ध नही किया, क्योकि मानव-जीवन पर पडने वाले सभी धर्मो के प्रभाव के मूल्य को वे स्वीकार करते थे। वे हमेशा दूसरो से यह आशा रखते थे कि उनके समान ही वे लोग भी अपनी मान्यताओ और धार्मिक विश्वासो के अनुरूप जीवन विताएँ।

उनका मुसलमानो, ईसाइयो या दूसरो के साथ कभी कोई धार्मिक या साम्प्रदायिक विरोध नही रहा। जैसाकि वे कहा करते थे, उन्होने दूसरे धर्मो की सभी अच्छाइयो को अपने मे मिला लेने की हमेशा कोशिश की थी और वे दूसरे धर्म वालो से भी हिन्दू धर्म की परीक्षा कर उसमे से उपयोगी तत्त्वो को अपने मे ले लेने की वात कहा करते थे।

भारतीय स्वतत्रता किस प्रकार प्राप्त होगी, इस सबधी अपने विचारो पर वे मजबूती के साथ जमे रहे, परन्तु साप्रदायिक भावना ओर प्रतिद्वद्विता को टालने की उन्होने भरसक कोशिश की।

अपनी मृत्यु के समय जिस प्रयत्न मे वे जुटे थे, हिन्दू, मुसलमान ओर सिक्खो के आपसी मतभेदो को दूर करनेवाला वह प्रयत्न सचमुच बडा महान् था। उतना महान् कार्य अपने हाथो मे उन्होने अभीतक कोई नही लिया था, और इसमे उन्हे वहुत हद तक सफलता भी मिली थी। करीव-करीव अकेले ही उन्होने वगाल की उस अशाति को शात किया, जो उनकी चारित्रिक शक्ति और शिक्षा के बिना नि स-देह वगाल मे भी पजाव के समान भयकर और गभीर सकट को फैलाने का कारण बनती।

एक व्यक्ति के नाते अग्रेजो के प्रति उनका विचार सदा मैत्रीपूर्ण रहा था और जहातक उनके सामान्य अस्तित्व का प्रश्न था, गाधीजी अग्रेज जाति को सदा सुखी देखना चाहते थे। सूत-उद्योग को लेकर जब हिन्दुस्तानियो के विरुद्ध एक कटु भावना इगलैण्ड मे फैल रही थी, उस समय लकाशायर को जाकर देखने की गाधीजी की वात वहुतो को याद होगी। जैसाकि उनका नियम था, वे सीधे मजदूरो के बीच

में गए और अपने व्यक्तित्व और हमदर्दी के कारण वहां सभी की प्रशंसा के पात्र बन गए। उनका व्यक्तित्व चुम्बक के समान आकर्षक था, विशेषकर निजी गहरी दोस्ताना बातचीत में, जिसे वे हमेशा अपना बहुत समय दिया करते थे—केवल मौन के दिनों को छोड़कर—वे सदा बड़ी-से-बड़ी और छोटी-से-छोटी बात पर चर्चा करने और अपना मत देने के लिए तैयार रहते थे। जिनसे वे मिले, उनके वे सच्चे दोस्त बन गए।

मैंने सदा उनमें एक ऐसे विश्वासपात्र और अच्छे दोस्त को पाया, जिनके शब्दों का मैं पूरा भरोसा कर सकता था। कभी-कभी चीजों को उनकी निगाह से देखना और तर्क को समझ सकना मेरे लिए बड़ा कठिन होता था। परन्तु यह होना स्वाभाविक था, क्योंकि मेरे पास पश्चिमी यूरोपीय विचारों की पृष्ठभूमि थी और वे भारत और पूर्व के दर्शन में पगे थे। अंग्रेजी सरकार की जिस नीति को वे गलत और हमदर्दी से खाली समझते थे, उसके विरुद्ध उनका रुख बड़ा कड़ा रहता था, और युद्ध के बाद भी यह महसूस करने में उन्हें बड़ी कठिनाई हुई कि इस देश (इंग्लैंड) के दृष्टिकोण में कोई मौलिक परिवर्तन हुआ है, हालांकि मेरा विश्वास है कि सन १९४६ में केबिनेट प्रतिनिधि-मंडल के हिन्दुस्तान देखने के बाद आखिर वे यह बात मान गए थे। अपनी असहयोग की नीति से ब्रिटिश सरकार द्वारा नियंत्रित हिन्दुस्तानी हुकूमत का विरोध करना बिल्कुल स्वाभाविक था और मैं तो यह कहूंगा कि अहिंसक साधनों द्वारा अपने लोगों की आजादी हासिल करने वाले सच्चे भारतीय राष्ट्र-वादी की यह एक अनुकूल प्रतिक्रिया थी। मुझे पूरा यकीन है कि यदि हमें अपने देश में उन्हीं परिस्थितियों का सामना करना पड़ता, तो हम भी वही कदम उठाने को मजबूर होते, यदि हमारे भीतर भी उन जैसी ही आध्यात्मिक शक्ति और राजनैतिक दृढ़ता होती।

हमारे सामने वे आज एक महान् आत्मिक शक्ति के रूप में आने वाली संकट-पूर्ण स्थिति के दिनों में हमारा और अपने लोगों का मार्ग-दर्शन करने के लिए खड़े हैं।

हमारे बीच से उनका चला जाना दुनिया के लिए एक बड़ी भारी क्षति है, क्योंकि आज हमें ऐसे नेता कहां मिल सकते हैं जो अपने जीवन और कर्म से प्रेम की असीम शक्ति के द्वारा दुनिया की मुसीबतों के हल पर जोर दे सकें। फिर भी यही वह सिद्धान्त है, जिसका ईसा ने उपदेश किया था और ईसाई होने के नाते जिसे मानने का हम दावा करते हैं।

हो सकता है कि दुनिया उनके जीवन से किसी बुनियादी उसूल की नसीहत

न ले, परन्तु यह निश्चित है कि बल-प्रयोग की सहायता से, संहार से, अपनी रक्षा की बातें करना आज व्यर्थ है और हमारी रक्षा या मुक्ति का सबसे बड़ा हथियार प्रेम की कल्याणकारी और असीम शक्ति ही है ।

हम दिल से प्रार्थना करते हैं कि उनके देश मे उनके धैर्य, सहिष्णुता, और लोक-प्रेम का उदाहरण सदा जीवित रहे और यह उदाहरण मुसीबत के उन बादलो के बीच से, जो आज देश पर छाये हुए हैं, उनके लोगो को सफलतापूर्वक सुन्दर और सुखमय भविष्य की ओर ले जाय, जैसा कि उनकी इच्छा थी और जिनके लिए सदा दृढता के साथ उन्होने काम किया और जीवन-पर्यंत जिसके लिए वे बलिदान करते रहे ।

टामस ए केम्पिस के शब्दो से अधिक सुन्दर रूप उनकी भावना को और कोई नही दे सकता —

"प्रेम बोझ का अनुभव नही करता, कठिनाई की बात नही सोचता, जो कुछ अपनी ताकत से बाहर है, उसके लिए कोशिश करता है, असभव का बहाना नही करता, क्योंकि सभी वस्तुओ को वह अपने लिए न्यायपूर्ण और सभव मानता है ।

"इसलिए किसी भी काम को हाथ मे ले सकता है और वह बहुत-से ऐसे असभव कामो को पूरा करता है, उनके एक ऐसे निर्णय पर पहुँचाता है, जहापर प्रेम न करने वाला व्यक्ति बेहोश होकर बैठ जाता है।"

: ६ :

'एक बहुत बड़ा आदमी'

ई एम फॉर्स्टर

गाधीजी को सक्षिप्त श्रद्धाजलि भेट करते समय मै शोक पर अधिक जोर नही देना चाहता । शोक उन्हे हुआ है जो महात्मा गाधी को व्यक्तिगत रूप मे जानते थे, या जो उनकी शिक्षाओ के बहुत निकट है । मै इन दोनो बातो का दावा नही कर सकता और न एक ऐसे व्यक्ति के विषय मे दया और करुणा से भरे शब्दो मे बोलना उचित ही है, मानो उनकी मृत्यु का आघात हिन्दुस्तान या विश्वभर को नही, बल्कि स्वय उनपर हुआ हो । अगर मैने उन्हे ठीक समझा है तो मै कह सकता हूँ कि वे मृत्यु के प्रति हमेशा उदासीन रहे । उनका स्वय का कार्य और दूसरो की भलाई उनके लिए सर्वोपरि थे और यदि उनका उद्देश्य जीवित रहने की अपेक्षा मरने से पूरा होता तो

वे निश्चित ही इससे सतुष्ट होते वे वाधा को सदा साधन मानने के अभ्यासी थे और इसी विषय को लेकर उन्होने अपनी 'आत्मकथा' में लिखा है कि जो योजना मै तैयार करता था, ईश्वर की इच्छा सदा उसके अनुकूल नही होती थी, और १२५ वर्ष तक जीवित रहने की कल्पना की अपेक्षा, जिसकी उन्होने अपने भोलेपन में आशा कर रखी थी, वे सबसे वडी वाधा मृत्यु तक को जीवन का सबसे वडा साधन मानते होते। उनकी हत्या हमारे लिए वडी भयकर और अविवेकपूर्ण है। अपने एक अग्रेज मित्र के शब्दो मे हम यह चाहते थे कि यह वृद्ध सत जादू के समान हमारे बीच से ओझल हो। परन्तु हमे यह याद रखना चाहिए कि हम इस सारी घटना पर बाह्य दृष्टि से ही विचार कर रहे है, यह उनकी हार नही थी।

आज की इस सभा में यद्यपि शोक और करुणा का अभाव है, फिर भी हम एक श्रद्धामिश्रित आतक और अपने प्रति छोटेपन की भावना का अनुभव कर रहे है। गत सप्ताह मुझे जब यह समाचार मिला तो मुझे उस समय अपनी क्षुद्रता का गभीर अनुभव हुआ। मेरे चारो ओर के लोग कितने छोटे है, हममें से अधिकाश के जीवन आध्यात्मिक दृष्टि से कितने अशक्त और सीमित है, और उस परिपक्व अच्छाई के मुकावले में हमारे युग के ये तथाकथित महापुरुष शेखीवाज़ स्कूल-वालको से अधिक और कुछ नही है। कल समाचार-पत्र पढिए और देखिए कि वे क्या और किसलिए इतना विज्ञापन करते है। उन मूल्यो को परखिये, जिन्हे वे मानते है, उन कामो को समझिये, जिनपर वे जोर देते है। और तब नये सिरे से महात्मा गाधी के जीवन और चरित्र पर विचार कीजिए और भयमिश्रित श्रद्धा की एक कल्याण-कारी लहर मे हमारा व्यक्तित्व हिल उठेगा। हम आज चीजो को गढना जानते है, स्थिति के अनुकूल अपने को वदल लेते है, हम अपने को निस्पृही और सहनशील समझते है। हमारे नौजवानो ने 'पीछे हटे हुए वहादुर' की मनोवृत्ति धारण कर ली है और यह सबकुछ ठीक माना जाता है। परन्तु हम आश्चर्य के भाव को खो रहे है। हम यह भूल रहे है कि मानव-स्वभाव क्या-क्या कर सकता है और इसका क्षेत्र कितना व्यापक है। इस महापुरुष की मृत्यु हमें यह याद दिलाती है कि उन्होने अपने अस्तित्व से उन सभावनाओ की ओर सकेत किया है, जिनकी आज भी खोज की जा सकती है।

उनका चरित्र वडा पेचीदा था, पर उसके विश्लेषण का यह स्थान नही है। परन्तु जो कोई उनसे मिला, उनके आलोचक तक ने उनसे उनकी अच्छाई का सबूत पाया—एक ऐसी अच्छाई जो साधारण प्रकाश से नही चमकती। उनकी व्यावहारिक

शिक्षा—अहिसा और सादगी का सिद्धान्त, जो चर्खे मे मूर्त्तरूप हुआ था, उसी अच्छाई से उत्पन्न होता है और इसीने उनके भीतर स्वेच्छापूर्वक कष्ट सहने की प्रेरणा को जन्म दिया था। वे सिर्फ अच्छे नही थे, उन्होने अच्छाई को रूप दिया था और इसीलिए आज दुनिया का प्रत्येक साधारण व्यक्ति उनकी ओर देखता है। उन्होने हिन्दुस्तान को उनके आध्यात्मिक नक्शे मे स्थान दिलाया। विद्यार्थियो और विद्वानो के लिए तो वह हमेशा उसी नक्शे मे था, परन्तु साधारण व्यक्ति को स्पष्ट साक्षी चाहिए, चारित्रिक दृढता के आध्यात्मिक प्रमाण चाहिए, और ये प्रमाण उसे उनके वन्दी जीवन मे, उनके उपवास मे, स्वेच्छापूर्वक कष्ट सहने की उनकी आदत मे और आखिर मे उनकी इस मृत्यु मे मिले। अभी मै टैक्सी की कतारो के सामने मे होकर गुजरा और वहा मैने ड्राइवरो को आपस मे 'वूढे गाधी' के विपय मे चर्चा करते सुना। वे सव अपने तरीके से उनकी वडाई कर रहे थे। वे उनकी वडाई की कद्र अवश्य करते, वे किसी भी विद्वान् या विद्यार्थी की श्रद्धाजलि से अधिक महत्त्व इसे देते, क्योकि यह सादगी के भीतर से निकली थी।

मैने उन्हे "एक वहुत वडा आदमी" कहा है। वे इस शताब्दी के महानतम व्यक्ति हो सकते है। लोग कभी-कभी लेनिन को उनके वरावर रखते है, परन्तु लेनिन का साम्राज्य इस दुनिया का था, और हमे यह भी पता नही कि आगे चलकर दुनिया उसके साथ कैसा व्यवहार करेगी। गाधीजी के साथ ऐसी वात नही थी। यद्यपि वे घटनाओ से सघर्प करते थे, राजनीति पर असर डालते थे, तथापि उनकी जडे देश काल से परे थी और यही से उन्हे शक्ति प्राप्त होती थी।

उन्होने चाहे किसी धर्म की प्रतिष्ठा न की हो, पर वे धर्म-प्रवर्तको के साथ रखे जा सकते है। वे वडे कलाकारो के साथ है हालाकि कला उनके जीवन का माध्यम नही थी। वे उन सभी स्त्री-पुरुपो के साथ है, जिन्होने यत्रवाद और विप्लव से अलग जीवन मे कोई नई वात खोजने की कोशिश की, जिन्होने आनन्द को स्वामित्व या अधिकार मे, विजय को सफलता से सदा अलग समझा और जिनका प्रेम में अटल विश्वास रहा।

७ :

गांधीजी की महानता का कारण

एल० डब्लू० ग्रेनस्टेड

अपने समयानीन युग में सम्भवतः यदा-कदा कोई ऐसी खबर हमें मिल जाती है, जो आघात और महत्त्व से भरी हुई होती है और जिसे सुनते ही ऐसा प्रतीत होता है कि मानो यह दुनिया के किसी अमर अर्थ और सत्य की द्योतक हो। कभी-कभी ऐसे समाचारों का संबंध केवल व्यक्तिगत विषय तक ही सीमित रहता है। इसका संदेश केवल हमारे लिए ही महत्त्व रखता है, दूसरों के लिए उसका कोई अर्थ नहीं। परन्तु, कभी, प्रायः नहीं, ऐसे समाचार विश्व के व्यापक विषयों से संबंध रखते हैं और इसमें निहित संदेश को बहुत-से लोग पढ़ सकते हैं, यद्यपि उसे भली प्रकार समझने वाले लोग बहुत थोड़े ही होते हैं और उसे पूर्णतया समझ सकने वाले तो और भी कम होते हैं। संभवतः ऐसे सभी मामलों में घनिष्टता और व्यक्तिगत संबंध का तत्त्व रहता ही है, जिसके पीछे केवल अभिरुचि या दिलचस्पी ही नहीं, वरन् आत्म-तादात्म्य का गुण भी होता है, जिसके कारण होने वाली घटना की हमें केवल चिन्ता ही नहीं होती क्योंकि ऐसी चिन्ता या उत्सुकता बहुत दूर की भी हो सकती है, वरन् ऐसा लगता है कि वह घटना मानो हमों पर घटित हुई हो। ऐसे समाचार केवल इतिहास की सामयिक घटनाओं की चर्चा ही नहीं करते अपितु उनके भीतर एक अनंत तत्त्व भी रहता है। और ऐसे अनन्त तत्त्वों के ही हिस्से हम लोग हैं। आक्सफोर्ड में रहने वाले एक अंग्रेज के लिए गांधीजी की मृत्यु का समाचार ऐसा ही था।

मेरे लिए यह किसी मित्र की मृत्यु का समाचार नहीं था, क्योंकि मैं गांधीजी से कभी मिला भी नहीं था। फिर भी मैं गांधीजी के विषय में उन लोगों से कहीं अधिक जानकारी रखता था, जिनके लिए उनकी मैत्री एक बड़ी बात थी। और यद्यपि हिन्दुस्तान, उसकी संस्कृति, उसकी आकांक्षाओं एवं अन्य समस्याओं के लिए मैं सदा उत्सुक रहा हूँ, फिर भी यह कहना कल्पना-मात्र होगा कि मैं गहराई के साथ उसके मामले को जानता हूँ क्योंकि स्वीजरलैंड से आगे पूर्व की ओर मैं कभी नहीं गया। परन्तु उस घातक रविवार के दिन, जब हमें हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में चलने वाली, विनाशक शक्तियों का पता भी न था, मेरे लिए ईसाइयों की एक सभा में गांधीजी की मृत्यु और जीवन के अलावा किसी दूसरे विषय पर बोल सकना असंभव

था और सचमुच उसी सध्या को भारतीय विद्यार्थियो के साथ आक्सफोर्ड की एक शोक-सभा मे महात्माजी के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करना और उन विद्यार्थियो के प्रति—और विद्यार्थियो के ज़रिये भारत के प्रति पश्चिमी और ईसाई मित्रो की समवेदना प्रकट करने का कार्य सचमुच वडा नाजुक और हृदय-विदारक था। और एक ईसाई होने के नाते यह सदेश दे सकना मेरे लिए कठिन नही था, क्योकि यह मै पूरी सच्चाई के साथ कह सकता हूँ कि गाधीजी के जीवन मे ईसा मसीह की शिक्षा के वहुत-से तत्त्व अति अनुरूपता के साथ अभिव्यक्त हुए है, जिन्हे देखकर हम ईसाइयो का सिर लज्जा से झुक जाता है, और जव मै उन सिद्धान्तो पर विचार करता हूँ, जिनकी उन्हें सदा चिन्ता थी और जिनके लिए उनका सपूर्ण जीवन ही एक नमूना वन गया था, तो स्वय मेरा विश्वास एक नया रूप ले लेता है और इस व्यक्ति की उस नई चुनौती को अगीकार कर लेता है, जिसने स्वय अपने को कभी ईसाई कहने का दावा न करते हुए भी जीवन मे ईसा का अनुसरण और सम्मान किया। मै उस सध्या को, विभिन्न राष्ट्रो के विद्यार्थियो की मूक सच्चाई को, चन्दन की लकडी की सुगन्ध को, अल्प-आलोकित आल-सोल्स कालेज के विशाल कानूनी पुस्तकालय को और समस्त ससार मे व्याप्त शक्तिपूर्ण जीवन और मृत्यु की तीव्र अनुभूति को आसानी से नही भूल सकता हूँ।

अव कुछ समय वीत जाने के वाद, मै उस विषय पर अधिक तटस्थ भाव से लिखने की कोशिश कर सकता हूँ कि आखिर गाधीजी मे ऐसी कौन-सी वात थी, जिसने उन्हे मेरे लिए और मेरे समान अन्य लोगो के लिए, जो मेरी तरह ही, जिन लोगो के वीच वे काम करते थे, उनकी राजनैतिक और सामाजिक समस्याओ से विल्कुल अवगत न होते हुए भी ऐसी प्रभावशाली और चुनौती देने वाली हस्ती वना दिया था। शायद इस वात को सक्षेप मे मै इस तरह कह सकता हूँ कि उनकी महानता, क्योकि इतिहास उन्हे निश्चय ही महान् व्यक्तियो की श्रेणी में ही रखेगा, उनके कामो में नही, उनके चरित्र में थी। नि सदेह उनके कार्य वहुत महत्त्वपूर्ण थे, और थोडी देर के लिए यह विचारणीय वात है, क्योकि दुनिया मे पवित्रता और प्रभावशीलता हमेशा साथ-साथ नही चलते, परन्तु गाधीजी के कार्यो या सफलताओ ने विश्व को इतना प्रभावित नही किया, जितना उनके भीतर की किसी चीज ने। उनके कार्य अभी इतिहास की आलोचना के विषय है, वे इतिहास के फैसले का इन्तज़ार कर रहे है, और गाधीजी सवसे पहले यह कहते थे कि उनकी अन्तर्दृष्टि के समान ही उनकी भूलो को भी उस निर्णय का सामना करना चाहिए। लेकिन उनकी

भावना आज भी जीवित है और वही भावना इतिहास को आज एक शक्ल दे रही है, उसे बना रही है और यही गाधीजी के महान् होने का सबसे प्रबल प्रमाण है।

अपनी तमाम प्रारम्भिक पश्चिमी सस्कृति और कानूनी शिक्षण की पृष्ठ-भूमि के बावजूद वे एक पक्के हिन्दुस्तानी थे। भारत की मूल आत्मा उनके भीतर मौजूद थी और वे सदा अपने स्वप्न के, अपनी कल्पना के, भारत के लिए जिये और मरे। भारत के लिए तैयार की गई उनकी योजना और आकाक्षाओ पर कोई फैसला देना मेरे जैसे एक पश्चिमी का कर्तव्य नही है। उनके जीवन में सबसे अधिक प्रभावशाली बात अपनी कल्पनाओ को मूर्त्तरूप देने का ढग था। किसी राजनीतिज्ञ के विषय में यह कहना सर्वथा असत्य होगा कि उसमें राजनैतिक कार्य और अतर धार्मिक प्रवृत्ति मिलकर एक हो गई थी और दो विभिन्न प्रवृत्तियो की इसी एकता को बाह्य तथ्य में बदलने की आज भारत को सबसे अधिक जरूरत है और यदि इगलैण्ड में हममें से बहुत-से लोग इस महान् प्रयोग की ओर आशा और सद्भावना से देख रहे है तो निश्चय ही यह स्वीकार करना चाहिए कि हमारी आशा और सद्भावना केवल गाधीजी के कारण है।

उनके आचरण और उनके कार्यों में जो बात मुझे सबसे महत्व की मालूम हुई, उसका मै विश्लेषण करना चाहता हूँ।

पहली बात का उल्लेख मैं कर चुका हूँ। अपनी गलतियो को स्वीकार न करने वाली निजी-बचाव और मुह छिपाने की प्रवृत्ति से वे सदा दूर रहते थे। उनके निर्णय और नीति-सबधी गलतियो को प्राय उद्धृत किया जा चुका है। वे उन अहकारी धार्मिक नेताओ से कोसो दूर थे जो केवल अपनी बात की सच्चाई का ही आग्रह रखते है। परिणामस्वरूप वे अपने अनुयायियो और राजनीतिज्ञो के लिए, जिन्हे सदा उनसे काम पडता था, एक परेशानी का कारण रहे है, परन्तु कभी कोई उनकी ईमानदारी के बारे मे प्रश्न नही उठा सका। और हालाकि कभी-कभी किसी विशेष कार्य-पद्धति के औचित्य के बारे में उनके दिमाग मे कई विचार उठते थे, तथापि उसे व्यवहार में लाने में उनका कोई निजी स्वार्थ या तरीका नही रहता था। वे अपने मित्रो और अनुयायियो से कभी उस नियम का पालन करवाने का आग्रह नही करते थे, जिसे वे स्वय अधिक कठोरता के साथ न निभा सकें।

यही कारण था कि उन्होने अपने लिए एक सीधा-सादा सत का रास्ता चुना और इस मार्ग का अनुसरण उन्होने सदा मुक्त आजादी, आनद और निर्दोषपूर्ण विनोद के साथ किया। इस आदत के गवाह उनके सभी मित्र है। अपने इसी विनोदी

स्वभाव के कारण वे उन पूर्वी और पश्चिमी लोगो की महान् सगति से पृथक् नही मालूम पडते थे, जिन्होने गाधीजी के इस तौर-तरीके को अच्छा मानकर अपना लिया था।

सबसे विचित्र और एक पश्चिमी के लिए समझने मे सबमे कठिन बात थी, उनका उपवास का प्रयोग, जिसे वे प्राय घटनाओ की गति को प्रभावित करने और सकट-काल मे शीघ्र-निर्णय के लिए करते थे। पश्चिमी देशो मे भूख-हडताल का इतिहास न तो बहुत कल्याणकारी ही रहा है और न बहुत प्रशसनीय ही। जहाँतक मेरी जानकारी का सवाल है, पूर्व मे यह और भी खराब रहा है और इसका सबध भी ऐसी विश्वास और मान्यताओ से रहा है, जो गाधीजी के स्वभाव के बिल्कुल विपरीत थीं। परन्तु उन्होने इसकी जो व्याख्या की है, और जिस तरह से इसे अमल मे लाये, उससे उपवास का स्तर नि सदेह बहुत ऊपर उठ गया है। दूसरो के कामो की जिम्मेदारी और परिणाम को अपने ऊपर ले लेना उनकी दिली इच्छा का प्रतीक बन गया था और हालाकि इस उपवास का इस्तेमाल दूसरो के समान वे उन लोगो पर असर डालने के लिए ही करते थे, जिनके कि कामो को वे प्रभावित करना चाहते थे, फिर भी बिना विशेष प्रयत्न के उन्होने अपने इस प्रयोग को कटुता और विद्वेष की शकामात्र से ही मुक्त रखा था और इसीलिए सचमुच जिन लोगो की नीति के खिलाफ उन्होने उपवास का प्रयोग भी किया, उनके साथ भी सदा मित्रतापूर्ण सबधो को कायम रखा। उनके उपवास मे अमगल की कामना नही थी, बल्कि स्वय अपने ऊपर अभिशाप को लेने की चाह रहती थी।

इससे उनके जीवन के वे पक्ष हमारे सामने आते है, जो सबसे महत्त्वपूर्ण थे। मुझे कोई ऐसा व्यक्ति याद नही आता, जो दुनिया की राजनीति के क्षेत्र में ईसा मसीह की जीवन-प्रणाली को मूर्त्तरूप देने और प्रभावपूर्ण बनाने मे इतना आगे जा सका हो। मेरे समान एक ईसाई की दृष्टि मे उन्होने केवल अपनी शिक्षा की आत्मा को ही बाइबिल मे नही लिया, वरन् अपने हिन्दू धार्मिक ग्रथो तक को उन्होने ईसा मसीह के सिद्धान्त के प्रकाश मे पढा। हिन्दू धर्म उन्हे अपना मानने का दावा कर सकता है, परन्तु उनकी आत्मा सभी धर्मो की उस गहरी-से-गहरी भूमि से अवतरित हुई थी, जहापर सब धर्मो का मेल होता है। अछूतो के हको के हिमायती होने के कारण वे जिस आग्रह और तीव्रता से हिन्दू धर्म की कट्टरता के कुछ पहलुओ को चुनौती दे सकते थे, उसी तरह ईसाईयत के उन दावो का भी वे खडन कर सकते थे, जोकि वास्तविक जीवन मे अमल में नहीं लाये जा सकते। अपने-अपने युगो

के धार्मिक विश्वासों के अनुसार ईसा और गौतम दोनों विद्रोही थे। गांधीजी न तो बौद्ध थे और न ईसाई, पर उन दोनों के अति निकट थे। उनका राजनैतिक जीवन इसीलिए इतना प्रभावपूर्ण था, क्योंकि उन्होंने राजनीति की आत्मा के भीतर धर्म की प्रतिष्ठा की थी। अन्य लोगों की तरह अपनी आत्म-मुक्ति के लिए दूर जंगल में जाने के वे समर्थक नहीं थे, परन्तु विश्व-कार्यक्षेत्र के बीच जिस विश्वास या धर्म को उन्होंने पाया, दूसरों को मुक्ति दिलाने की उस धर्म की क्षमता को वे प्रमाणित करना चाहते थे।

भारत के प्रति उनकी भक्ति और उसकी आजादी की तीव्र भावना अंधी और संकीर्ण देश-भक्ति के अभिशाप से बिल्कुल मुक्त थी और निःसंदेह यह बात उनके विचारों के बिल्कुल अनुकूल थी। दुनिया में जो कुछ अच्छे-से-अच्छा मिला, उसकी उन्होंने अपने देश में प्रतिष्ठा करनी चाही, परन्तु उससे भी अधिक स्वयं भारत की विशेषताओं को सामने लाने की उन्होंने कोशिश की। अपने ही देशवासियों से अधिक-से-अधिक आत्म-त्याग की मांग करके उन्होंने उनके ऊपर असीम अधिकार प्राप्त कर लिया था। इतिहास इस बात का साक्षी है कि आजतक दुनिया में आजादी बिना रक्तपात के प्राप्त नहीं हुई है। "परन्तु याद रखिये, यह रक्त आपका हो। किसी दूसरे के खून की एक बूंद भी नहीं गिरना चाहिए।" स्वागत की आवाज बुलन्द करते हुए विद्यार्थियों से वे एक वाक्य में हमेशा ईश्वर से यह प्रार्थना करने को कहते थे कि हिन्दुस्तान वह न रहे जो आज है, वरन् वह बने जो ईश्वर उसे बनाना चाहता है। उनके अन्तिम उपवास के समय प्रायश्चित्त की सात शर्तें केवल हिन्दुस्तान के लिए थीं, पाकिस्तान के लिए नहीं।

प्रायः अपने देश में और इंगलैण्ड में इस बात के लिए उनकी आलोचना होती थी कि वे जो कुछ भी कहें, उनकी नीति से वास्तव में हिंसा के कार्य शुरू हो जाते थे। इस संबंध में उनका उत्तर बड़ा विचित्र था। उन्होंने बन्दी-जीवन का खुशी के साथ स्वागत किया और लेशमात्र भी इस भावना के बिना कि उनके प्रति कोई अन्याय किया जा रहा है, या उन्हें शहीद बनाया जा रहा है। जब उत्तेजना फैलाने के अपराध में उन्हें दंड दिया गया तो उन्होंने तत्काल अपने अनुयायियों के उन सारे कार्यों की जिम्मेदारी अपने कंधों पर ले ली, जो उन लोगों ने उनकी सख्त हिदायतों के बावजूद किये थे और अदालत में प्रार्थना की कि दंड-विधान के अनुसार उन्हें ज्यादा-से-ज्यादा सजा दी जाय। वे गवर्नरों और शासकों के लिए एक समस्या थे, क्योंकि कोई प्रशासकीय कार्य उनके आचरण के गहरे सिद्धान्त को छू तक न पाता था और न उनके मैत्री-

पूर्ण व्यवहार या मेलजोल को सरकारी अनुशासन की कोई ऐसी कार्यवाही तोड ही सकती थी, जिसे करने के लिए वह विवश थे। जहातक असर की ताकत का सवाल था, आजाद गाधी और वन्दी गाधी मे कोई अन्तर नही था। आत्म-शक्ति के अलावा वे किसी दूसरी शक्ति को जानते नही थे और आत्म-शक्ति के लिए जेल के सीखचो का कोई अर्थ नही, सिवाय इसके कि वस्तुत वलिदान की रचनात्मक शक्ति की अत मे जीत होती है। उनकी पूर्ण निर्भीकता और व्यक्तिगत खतरे के प्रति उनकी उदासीनता से वढकर असर करने वाली वात उनकी जिन्दगी मे और कोई नही थी।

इसके पीछे उनकी अहिसा की सारगर्भित और अर्थपूर्ण व्याख्या थी और इसीने उन्हे पूर्ण अहिसा की शिक्षा ओर मानवमात्र के लिए आदर-भाव का मार्ग दिखाया। लदन के पूर्वी छोर पर वसने वाले गरीवो के साथ वे उतने ही घुले-मिले थे, जितने कि हिन्दुस्तान मे। दलितो के प्रति उनकी चिन्ता केवल भावुकता नही थी, वरन् जीवन के प्रति पवित्रता के व्यापक अर्थ की अभिव्यक्ति थी। उनके एक मित्र ने एक वार मुझसे कहा था कि गाधीजी के दो तीव्र भाव थे—शाति और गरीवी, परन्तु असल मे ये दोनो एक ही चीज थे। वे मानव-प्रेमी थे और इस नाते मानव-मात्र के लिए सघर्ष करना भी उनके लिए आवश्यक था। परन्तु अपने इस सघर्ष मे आत्म-शक्ति के सिवा किसी दूसरे हथियार का प्रयोग वे नही करते थे, क्योकि वल प्रेम को नष्ट कर देता है।

आज वे हमारे वीच नही है, और जैसा कि उनकी मृत्यु के वाद मैने कहा था, "यह अच्छा ही हुआ कि उनका देहावसान किसी पूर्व निश्चित उपवास के कारण नही हुआ, वल्कि ससार के कुतर्क का सामना करते हुए, उसका स्वागत करते हुए हुआ, और वह भी इस महत्ता के साथ कि अन्त मे कुतर्क और दु ख स्वय अजेय प्रेम की विजय द्वारा रूपान्तरित हो जायगे। वे मरे नही है। जिस मृत्यु से वे मरे है, उसने उन्हे मुक्त कर दिया है और आज हम पश्चिम-निवासी फिर से नया जन्म लेने वाले उस भारत का अभिवादन करते है, जहा कि उनकी आत्मा आज भी जीवित है और जिसका पूर्ण परिणाम देखने तक शायद हम लोग जीवित भी न रहें।

: ८ :

उनका महान् गुण

हैलीफैक्स

गांधीजी का मित्र होने और उन्हें जानने के सुअवसर के प्रति मैं हमेशा कृतज्ञ रहूँगा। उनकी दुःखदाई मृत्यु के बाद आजतक उनके गुणों के विषय में इतना लिखा और कहा गया है कि संसार का प्रत्येक देश आज उस महान् विभूति से बहुत अंश तक परिचित हो गया है। प्रत्येक महापुरुष के बारे में कहा जा सकता है कि उसके जीवन के भिन्न-भिन्न पक्ष अलग-अलग लोगों के लिए अपना अलग-अलग महत्व रखते हैं। हिन्दुस्तान में जिस गुण के कारण उन्हें ऐसा अद्वितीय स्थान प्राप्त हुआ, वह उस गुण से सर्वथा भिन्न था जिसके कारण पश्चिम में उनके मित्रों से उन्हें प्रशंसा मिली। इसी बात को दूसरे शब्दों में इस तरह कहा जा सकता है कि उनका व्यक्तित्व असल में उनका चित्र खींचने के किसी भी प्रयत्न से कहीं अधिक बड़ा था।

उनमें एक ऐसी स्पष्टता थी जो लोगों को पूरी तरह अपनी ओर खींच लेती थी। परन्तु इसके साथ ही उनके व्यवहार में एक ऐसी बौद्धिक बारीकी थी, जो कभी-कभी बड़ी उलझानेवाली मालूम होती थी। उनके दिमाग में क्या चल रहा है, इसे ठीक-ठीक समझने के लिए यह आवश्यक था कि यदि हम स्वयं उसी बिंदु से शुरू न कर सकें तो कम-से-कम उस बिंदु को भली प्रकार समझ लें कि उन्होंने अपना सोचना कहाँ से शुरू किया था, और यह बात हमेशा बड़ी मानवीय और सीधी होती थी।

मुझे अच्छी तरह याद है जब पहली बार हिन्दुस्तान जाकर मैंने सी० एफ० एन्ड्रूज से उनके विषय में बातचीत की थी, जोकि मेरे खयाल से किसी अंग्रेज की अपेक्षा गांधीजी के अधिक निकट थे। उस समय मुझसे उन्होंने कहा था कि मि० गांधी विधान और वैधानिक रूप की कम परवाह करते हैं और वह गोलमेज कान्फ्रेंस के समय और भी स्पष्ट हो गया। हिन्दुस्तान का गरीब किस तरह रहता है, इस मानवीय समस्या की उन्हें सबसे अधिक चिन्ता थी। वैधानिक सुधार हिन्दुस्तान के व्यक्तित्व और आत्म-सम्मान के लिए आवश्यक और महत्वपूर्ण था, परन्तु सबसे अहम सवाल लाखों लोगों की रोजाना की जिन्दगी पर असर डालने वाला—नमक, अफीम, घरेलू धंधे और दूसरी ऐसी ही चीजों का था।

हालांकि चर्खे के प्रति गांधीजी की आस्था पर हँसना बहुत आसान है, विशेष-

कर ऐसी अवस्था मे जवकि एक ओर काग्रेस अपने चन्दे के लिए ज्यादातर धनी हिन्दुस्तानी मिल-मालिको की उदारता पर निर्भर थी, तो भी चर्खे का उनके जीवन-दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तो मे एक विशेष स्थान था, यह वात विल्कुल सत्य थी और मुझे इसमे कोई सदेह नही है।

वे स्वाभाविक योद्धा थे। गरीवो के साथ किये गए अन्याय और दिये गए कष्टो के खिलाफ वे हमेशा लडते रहे। दक्षिण-अफ्रीका मे भारतीयो के अविकार, नील के खेतो मे हिन्दुस्तानी मजदूरो के साथ होने वाला व्यवहार, उडीसा की वाढ से वेघर-वार होने वाले हजारो लोग और सवसे ज्यादा साम्प्रदायिक घृणा से उत्पन्न कष्ट और पीडा—ये सव वारी-वारी से उनकी लडाई के मैदान थे, जहा वे अपनी सारी ताकत के साथ मानवता और अधिकारो के लिए लडे थे।

उनके साथ सन् १९३१ के वसन्त के दिनो मे दिल्ली मे होने वाली वातचीत को जव याद करता हूँ तो उस समय की दो वाते आज भी मेरे दिमाग मे साफ झलक आती है। अन्य वातो की अपेक्षा उनके मस्तिष्क और पद्धति की ये दोनो वाते अधिक अच्छी व्याख्या करती है—और ये दोनो वाते हमे ऐसा रास्ता दिखाती है, जहा आदर्शवादी और यथार्थवादी दोनो मिल सके।

पहली वात असहयोग आन्दोलन वन्द करने के वाद उस वीच मे पुलिस द्वारा किये गए जुल्मो की जाच करवाने की उनकी माग से सवधित है। कई एक कारणो से मैने इस माग का विरोध किया। अन्य दलीलो के साथ इस तर्क को भी मैने उनके सामने रखने की कोशिश की कि हो सकता है कि दूसरे लोगो के समान पुलिस ने भी कुछ गलतिया की हो, परन्तु अव वारह महीने के वाद उन स्थानीय झझटो या उपद्रवो के विपय मे ठीक-ठीक वातो का पता लगाने का प्रयत्न वेकार सावित होगा और इसका नतीजा यह होगा कि दोनो ओर अविक उत्तेजना वढेगी। इससे उन्हे सन्तोष नही हुआ और इस मुद्दे पर तीन दिन तक हमारी वहस चलती रही। अत मे मैने उनसे कहा कि मै उन्हे वह असली कारण वताऊँगा जिसकी वजह से मै उनकी उस माग को स्वीकार नही कर सका। मुझे इस वात का भरोसा नही है कि अगले चन्द दिनो मे वह फिर कही आन्दोलन न छेड दे और जव कभी वे ऐसा करे तो मै चाहता हूँ कि पुलिस का जोश ठडा न पडे वल्कि और वढे। इसपर उनका चेहरा चमक उठा और वे वोले—"ओह, आप श्रीमान मेरे साथ वैसी ही वात कर रहे है, जैसीकि जनरल स्मट्स ने दक्षिण-अफ्रीका सत्याग्रह के समय की थी। आप इस वात से इन्कार नही करते कि मेरा दावा उचित नही है, परन्तु सरकारी दृष्टिकोण से आप अपनी

असमर्थता की ऐसी दलील पेश कर रहे है, जिनका जवाब नही दिया जा सकता। मै अपनी माग वापस लेता हूँ।"

दूसरी घटना भी उसी दिन की है और अगर मेरी सूचना गलत नही है तो इससे गाधीजी के साहस और वचन पालन करने के गुणो का सबूत मिलता है। गाधी-अर्विन समझौता पूर्ण होने के बाद दूसरे दिन सुबह वे मेरे पास आए और मुझसे एक दूसरे विषय पर बात करने की इच्छा प्रगट की। वे उस समय कराची-काग्रेस मे भाग लेने जा रहे थे, जोकि उनके विचार मे इस समझौते का अतिम निर्णय करने वाली थी। उन्होने इसी सिलसिले मे मुझसे भगतसिह नाम के एक नौजवान की जिन्दगी की अपील करनी चाही, जिन्हे कि विभिन्न आतकपूर्ण अपराधो के लिए मृत्यु-दड दिया जा चुका था। वे स्वय प्राण-दड के विरोधी थे, पर इस समय हमारे तर्क का यह विषय नही था। उन्होने कहा कि यदि इस समय भगतसिह को फासी दी गई तो वे राष्ट्रीय शहीद का गौरव प्राप्त कर लेगे और इससे समझौते के आम वातावरण को बडा धक्का पहुँचेगा। मैने कहा कि उनके उस विचार की मै कद्र करता हूँ, इस समय प्राण-दड की अच्छाई-बुराई का खयाल भी मेरे सामने नही है, क्योकि न्याय का आज जो रूप है, उसीके अनुसार मुझे अपने कर्तव्य का पालन करना है। इस आधार पर मै किसी दूसरे व्यक्ति की कल्पना भी नही कर सकता कि जो भगतसिह से अधिक प्राण-दड का अधिकारी हो। इसके अलावा गाधीजी ने यह अपील बडे बेमौके की थी, क्योकि पिछली शाम को ही मेरे पास प्राण-दड को कुछ समय तक रोकने के विषय मे स्वय भगतसिह की अपील आ चुकी थी जिसे अस्वीकृत करना ही मैने ठीक समझा था, और इसलिए शनिवार को प्रात काल उन्हे फासी दी जाने वाली थी (हमारी बातचीत का दिन, जहातक मुझे याद है, गुरु-वार था)। गाधीजी काग्रेस-अधिवेशन के लिए शनिवार की शाम को कराची पहुँचने वाले थे। तबतक भगतसिह की फासी के समाचार फैल चुके होगे। अत उनके विचार मे दोनो बातो की तारीख के एक ही दिन पडने से अधिक उलझाने वाली बात और कोई नही हो सकती थी।

गाधीजी ने चलते समय मुझसे अपने भय का सकेत किया था कि यदि मै उस दिशा मे कुछ नही कर सका तो इसका प्रभाव हमारे समझौते पर बहुत बुरा पडेगा।

मैने उनसे कहा कि यह तो स्पष्ट ही है कि इसके अब तीन ही सभव रास्ते है। पहला रास्ता यह है कि कुछ न करना और फासी लगने देना, दूसरा यह कि आदेश

देकर दड को कुछ समय के लिए स्थगित करना और तीसरा रास्ता यह था कि काग्रेस-अधिवेशन के खत्म होने तक इस निर्णय को रोक रखना। मैंने उनसे कहा कि मेरे विचार से वे इस वात से सहमत होगे कि मेरे लिए प्राण-दड को स्थगित रखना असभव है, और निर्णय को कुछ समय के लिए रोक कर किसी प्रकार की रियायत मिलने की सभावना है, लोगो को ऐसा सोचने का मौका देना न तो ईमानदारी ही है, और न खरापन ही। इसलिए तमाम मुसीवतो के वावजूद पहला रास्ता ही ठीक है। गाधीजी ने थोडी देर तक सोचा और कहा—"क्या आपको एक नौजवान की जिन्दगी के लिए की जाने वाली मेरी प्रार्थना में आपत्ति है ?" मैंने कहा, "मुझे कोई आपत्ति नही है यदि वे इसमे इतना और जोड दे कि मेरे दृष्टिकोण से मेरे लिए इसके सिवा और कोई रास्ता दिखलाई नही पडता।" उन्होने एक क्षण के लिए सोचा और अत मे मेरे विचार से सहमत हो गए, और वात को स्वीकार कर वे कराची गए। वहा जिस वात का डर था, वही हुआ, उनके पहुँचने से पूर्व फासी का समाचार प्रकाशित हो चुका था, लोगो की भीड मे भयकर उत्तेजना फैल चुकी थी और वाद मे मुझे पता चला कि उनके साथ भी वडा भद्दा सलूक किया गया। परतु जव उन्हे अधिवेशन मे वोलने का अवसर मिला तो वे उसी समझ से वोले, जैसाकि हमारे वीच समझौता हुआ था।

जिन दो घटनाओ का उल्लेख मैंने किया है, वे उनके व्यक्तिगत पक्ष पर प्रकाश डालने के लिए काफी है और इससे यह भी स्पष्ट होता है कि उनकी मित्रता को इतना कीमती मैं क्यो समझता था। किसीके विश्वास की रक्षा करने के विचार से मुझे ऐसा कोई व्यक्ति याद नही आता, जिसे अपने विश्वास मे लेने के लिए मै इतना तैयार रहूँ, जितना गाधीजी को।

अपने स्तर से नापने पर एक ऐसी जिन्दगी का एकाएक खत्म हो जाना नि सदेह उस देश के लिए असीम सकट का कारण हो सकता है, जिसे उन्होने इतना प्यार किया था। परतु जो उनके कार्यो को अच्छी तरह जानते है, और जो यह भी जानते है कि वे जिन्दगी मे और क्या करते, वे ईश्वर से प्रार्थना करेंगे कि उनकी मृत्यु से एक-दूसरे को और अधिक अच्छी तरह समझने का मौका मिले—मृत्यु, जिसने एक ऐसी जिन्दगी को समेट लिया, जो सदा सेवा के लिए समर्पित थी और जो खुशी-खुशी उसी रास्ते पर कुर्वान हो गई।

: ६ :

श्रेष्ठतम अमर पुरुष

एम० आई० हसिंग

युद्धोत्तरकालीन इगलैण्ड में कुछ कमिया यदि युद्ध-काल मे ज्यादा नहीं तो कम तो किसी भी हालत में नही है। अन्न में चावल एक ऐसा धान्य था, जिसके बिना भी यूरोप में लोग रहना सीख गये थे, इसलिए बहुत वर्षों से चावल बाजार से ओझल ही हो गया था। मै और मेरा परिवार भी इसपर रहने का आदी था, इसलिए हम लोग उस अभाव को बहुत महसूस करते थे, परन्तु कुछ सुविधाप्राप्त देशवासियो की कृपा से ३० जनवरी, १९४८ के दिन हम एक असली चीनी भोजन पाने वाले थे। आक्सफोर्ड के शात घर मे मेरे मित्र और मेरा परिवार मेज के चारो ओर बैठे थे। लेकिन उस दिन का भोजन हमे बेस्वाद लग रहा था। भोजन शुरू करने से कुछ ही मिनट पहले हमने बिना बे-तार के तार से गाधीजी की हत्या की बात सुनी।

व्यक्तिगत रूप मे हममें से किसीको भी महात्मा गाधी को जानने का गौरव प्राप्त नही हुआ था और न हम विश्व-राजनीति में कोई रुचि रखते थे। न केवल मै बल्कि मेरे सभी बच्चे आक्सफोर्ड में केवल साहित्य-अध्ययन तक ही अपने को सीमित रखते थे। "इस खबर के बारे मे आपकी क्या राय है कि हिटलर अभी-अभी मर गया है?" मेरे एक मित्र ने मेरे एक बच्चे से, जो अग्रेजी साहित्य पर भाषण दे रहा था, पूछा। उत्तर बडा नम्र परन्तु दृढ था—"ऐसे विषयो में मेरी अज्ञानता के लिए क्षमा करें। शायद हमारा एक भाई आपसे इस विषय में अधिक दिलचस्पी के साथ बात करने की रुचि रखता हो।" हमें बातचीत का विषय बदल देना पडा।

परतु महात्मा गाधी की मृत्यु से हमें बडा धक्का लगा। ऐसा जान पडा, मानो हमारे निकट का, कोई बडा प्रिय व्यक्ति कत्ल कर दिया गया हो। बहुत दिनो तक उदासीनता की वह भावना दिमाग में बनी रही। उनकी हत्या के बाद दुनिया हमें बहुत गरीब-सी मालूम होने लगी। केवल हिन्दुस्तान के लिए नही, वरन् समस्त मानव-जाति के लिए यह एक ऐसी क्षति थी, जिसे कभी पूरा नही किया जा सकता था।

चीन के लिए भारतीयो के दो नाम ऐसे है, जो प्रत्येक की जवान पर हमेशा रहते है—वुद्ध और गाधी। वे एक दूसरे से हजारो वर्ष के अतर मे पैदा हुए है। परन्तु उनकी महानता हमेशा जीवित रही है और समय के व्यवधान की परवाह किये विना यह महानता सदा अमर रहेगी। हम लोगो ने पिछले सो वर्षो मे वेशुमार मुसीवते झेली है, इसलिए हम यह अच्छी तरह जानते है कि भारतवर्ष, उसकी जनता और उसके नेताओ के लिए गाधीजी की मृत्यु के क्या माने है। एक राष्ट्रीय वीर, एक राजनैतिक पडित अयवा एक विद्वान के लिए जो आदर हमारे मन मे होता है, वह वहुत सीमित होता है, परन्तु महात्मा गाधी की आध्यात्मिक महानता के प्रति हमारे मन मे जो श्रद्धा है वह असीम है, अमर है। हमारे लिए उनका स्थान उन सत और महात्माओ के वीच है, जिनकी स्मृति हमारे मानस मे सदा अमर है।

क्या कनफ्यूशस ने यह नही कहा था, "यदि एक वार कोई व्यक्ति अपनेको ठीक रास्ते पर लाने की व्यवस्था कर ले, तो फिर एक राजनीतिज्ञ होने मे उसे कोई कठिनाई नही होती, परतु यदि वह अपनेको ठीक नही कर सकता तो फिर वह दूसरो को ठीक करने की वात कैसे सोच सकता है?" इसी तरह महात्मा गाधी ने अपने से कहा था, "सत्य के प्रति मेरी भक्ति ने मुझे राजनीति के मैदान में खीचा है।" और, "धर्म से शून्य राजनीति एक मृत्यु-जाल है, क्योकि उससे आत्मा का नाश होता है।"

मानवता की उस आत्मा की तुलना मेनशियस की शिक्षाओ से की जा सकती है, जिसने गाधीजी को ग्राम-उद्योगो के पुनरुद्धार के लिए उत्साहित किया, विशेषकर ऐसे समय मे जव सैनिक विजय ही राष्ट्रीय नेताओ का एकमात्र उद्देश्य था। आज से दो हजार वर्ष पहले चीन के एक राजा ने अपने राज्य को विशाल साम्राज्य का रूप देने के लिए युद्ध करना चाहा था। इसपर मेनशियस ने उससे कहा था कि वह एक ऐसे व्यक्ति के समान है जो मछलिया पकडने के लिए पेड पर चढना चाहता है। मेनशियस के अनुसार एक राजा दुनिया को एक ही तरह से समृद्ध कर सकता है— घर के पास की ५ एकड भूमि मे वह शहतूत के पेड लगाये, जिससे कि ५० वर्ष की उम्र के लोग रेशम पहन सके।" और, "मुर्गी-पालन, वतख-पालन के काम शुरू करें, ताकि ७० वर्ष की उम्र के लोगो को खाने के लिए गोश्त मिल सके।"

हमारे ताओवादी पथ के सस्थापक लाओ-जे ने जोकि कनफ्यूशस के अग्र-समकालीन थे, हमे यह सिखाया था, "दुनिया की सव चीजो में सिपाही बुराई

के मवमे वडे हथियार है, जिन्हे सव घृणा करते है।" और यह भी कहा था, "एक जीत का उत्मव मृत्यु-मस्कार के ममान मनाया जाना चाहिए।" उनका यह उपदेश भी था, "कुछ न करने मे मव कुछ हो जाता है। जो विश्व-विजय करता है वह भी कुछ न करके ही ऐमा करता है।" आज की दुनिया मे राष्ट्रो के प्रवान यह सुनना पमन्द नही करेगे, क्योकि वे सदा ऐमे सिद्धान्तो के विपरीत कार्य करते है। लेकिन महात्मा गाधी एक ऐमी हस्ती थे जिन्होने अहिमा और असहयोग का उपदेश दिया और उसके अनुमार आचरण किया।

यही कारण है कि हम चीनी लोग उन्हे मदा मानव-इतिहास के श्रेष्ठतम अमर पुरुषो की श्रेणी मे रखेगे।

: १० :

उनके बुनियादी सिद्धान्त

आल्डस हक्सले

गाधीजी की अर्थी एक सैनिक गाडी द्वारा चिता-स्थल तक ले जाई गई। उनकी शव-यात्रा के साथ टैंक और हथियारो से सज्जित सैनिक मोटरे थी, सैनिक और सिपाही जत्थे थे। उनकी अर्थी के ऊपर भारतीय वायु सेना के लडाकू जहाज चक्कर काट रहे थे। आत्मशक्ति और अहिमा के इस देवदूत के सम्मान मे हिमा और वल के समस्त माधनो का प्रदर्शन किया गया था। भाग्य का यह एक अटल विद्रूप था, क्योकि राष्ट्र की व्याख्या के आधार पर वह प्रभुत्वसपन्न एक ऐसा मघ है, जिसे दूसरे प्रभुत्वमपन्न सघो के विरुद्ध युद्ध करने का अधिकार है। ऐसी दशा मे किसी व्यक्ति के प्रति राष्ट्रीय सम्मान के अर्थ, चाहे वह व्यक्ति स्वय गाधी ही क्यो न हो, निश्चय रूप से सैनिक और प्रतिरोधी शक्तियो का प्रदर्शन ही होगा।

आज से लगभग ४० वर्ष पूर्व उन्होने 'हिन्द स्वराज्य' मे अपने देशवासियो मे एक प्रश्न किया था कि आखिर "स्वराज्य और गृह-शासन" से क्या मतलब है? क्या वे उसी प्रकार की सामाजिक व्यवस्था चाहते है जो उस ममय प्रचलित थी? यानी सत्ता का अग्रेजो के स्थान पर हिन्दुस्तानी शामको और राजनीतिज्ञो के हाथ मे चला जाना? अगर ऐसा है तो उनकी इच्छा शेर मे मुक्ति पाकर, अपने स्वभाव मे शेर की तमाम खूख्वार प्रवृत्तियो को सुरक्षित रख लेने की है। अथवा

वे 'स्वराज्य' के वही अर्थ करने को तैयार है, जो स्वय गाधीजी के थे, अर्थात्—भारतीय सभ्यता की उन समस्त शक्तियो का प्राप्त करना, जिन्होने उन्हें अपने पर शासन करना सिखाया था और सत्याग्रह के जरिये जिन्होने भावना द्वारा सामूहिक कार्यो को स्वीकार किया था ?

एक ऐसे विश्व मे जिसका सगठन ही युद्ध के लिए किया गया हो, हिन्दुस्तान के लिए दूसरा रास्ता चुन सकना वडा कठिन था, विल्कुल असम्भव था। उसके लिए भी एक ही रास्ता था कि दूसरे राष्ट्रो के समान वह भी एक राष्ट्र वन जाय। स्वराज्य के पहले एक विदेशी अत्याचार के विरुद्ध अहिंसक सघर्ष को चलाने वाले स्त्री-पुरुषो ने एकाएक अपनेको एक सर्वप्रभुत्वसपन्न सत्ता के नियत्रण मे पाया, जोकि अव युद्ध और प्रतिरोध के तमाम साधनो से पूर्ण थी। भूतपूर्व वन्दी और भूतपूर्व शातिवादी एक रात में जेलरो और सेनापतियो मे वदल गए। उन्हे यह परिवर्तन चाहे अच्छा लगा हो या नही।

ऐतिहासिक पूर्व-दृष्टान्तो से इस आशावाद की पुष्टि नही होती। स्पेन के उपनिवेशो ने जव एक आजाद राष्ट्र की तरह अपनी स्वाधीनता प्राप्त की, तो क्या हुआ ? उनके नये शासको ने सेनाए इकट्ठी की और एक-दूसरे के विरुद्ध लडाई के मोर्चे पर डट गये। यूरोप मे मेजिनी की राष्ट्रीयता का सदेश आदर्शवादी और मानवीय था। परन्तु अत्याचार से पीडित लोगो ने जव अपनी आजादी हासिल की तो वे अपने तरीके से वडी जल्दी आक्रमणकारी और साम्राज्यवादी वन गये। इससे भिन्न और कुछ नही हो सकता था। क्योकि जिस प्रसग के ढाचे मे एक व्यक्ति विचार करता है, वही ढाचा उसके निर्णयो की प्रकृति का द्योतक होता है। वे निर्णय सैद्धान्तिक भी हो सकते है और व्यावहारिक भी। भूमिति-शास्त्र के स्वयसिद्ध प्रमाणो से आरभ करने पर कोई भी व्यक्ति इस नतीजे पर पहुचे विना नही रह सकता कि एक त्रिभुज के तीनो कोणो का जोड हमेशा दो समकोण (१८०°) होता है। इसी प्रकार राष्ट्रीय मान्यताओ से आरभ करने पर कोई व्यक्ति शस्त्रीकरण, युद्ध और राजनैतिक एव आर्थिक शक्तियो के केन्द्रीयकरण के निष्कर्ष पर पहुचे विना नही रह सकता।

भावना और विचार के वुनियादी रूपो को जल्दी वदला नही जा सकता। राष्ट्रीय प्रसग के ढाचे के स्थान पर एक ऐसी शब्दावली तैयार करने के काम को पूरा करने में अभी वहुत वर्ष लगेंगे, जिसमें लोग राष्ट्र-निरपेक्ष ढग से राजनैतिक चितन कर सके, लेकिन इसी वीच में शिल्प-शास्त्र का वडी तेजी से विकास हो

रहा है। ऐसी व्यवस्था में राष्ट्रीय तौर पर सोचने के जड़ीभूत स्वभाव से उत्पन्न हुए मानसिक शैथिल्य पर विजय पाने मे दो पीढियां, शायद दो शताब्दियां, लगेगी। युद्ध-कौशल के क्षेत्र मे उन वैज्ञानिक खोजो के प्रयोग अभिनंदनीय है। केवल दो वर्ष के समय में हम इतना बडा काम कर सके है। यह काम इतने कम समय मे पूरा हो सकेगा, यह कह सकना बिल्कुल असगत-सा प्रतीत होता है।

गाधीजी ने अपनेको राष्ट्रीय आज़ादी के युद्ध मे व्यस्त पाया, परन्तु उन्हे इस काबिल होने की बराबर उम्मीद थी कि वे जिस राष्ट्रीयता के नाम पर लड रहे है उसे वे रूपान्तरित कर सकेगे—सबसे पहले हिंसा के स्थान पर सत्याग्रह को स्थान देकर, और दूसरे सामाजिक और आर्थिक जीवन मे विकेन्द्रीकरण को स्थान देकर। परन्तु आजतक उनकी आशा को मूर्तरूप नही दिया जा सका। यह नया राष्ट्र जहांतक हिंसक साधन और प्रतिरोधी साधनो का सबध है, दूसरे राष्ट्रो के समान ही है, और साथ-ही-साथ इसके आर्थिक विकास की योजनाओ का उद्देश्य भी एक ऐसा औद्योगिक राज्य बनाना है, जो सरकारी या पूजीवादी नियत्रण द्वारा सचालित बडे-बडे कल-कारखानो मे परिपूर्ण हो, जहा दिनोदिन सत्ता का केन्द्रीयकरण बढता जाय, जीवन का स्तर ऊचा होता चले, और इसके साथ ही उन्माद की घटनाओ और मानसिक एव उदर-सबधी रोगो की वृद्धि होती चले। गाधीजी विदेशी शेर के पजे से अपने देश को मुक्त करने मे सफल हुए, परतु राष्ट्रीयता के रूप मे वे उस खूख्वार प्रकृति को सुधारने के प्रयत्न मे असफल रहे। क्या इसलिए हमे निराश होना चाहिए? मै ऐसा नही सोचता। असलियत बडी कष्टदायक होती है और आखिर मे इसको रोका भी नही जा सकता। देर या सवेर से लोग यह महसूस करेगे कि इस स्वप्न-चेता के पैर जमीन मे बडी मजबूती से गडे थे, और यह आदर्शवादी सबसे अधिक व्यवहारवादी व्यक्ति था, क्योकि गाधीजी के सामाजिक और आर्थिक विचार मानव स्वभाव की यथार्थवादी मान्यताओ एव विश्व मे उसकी स्थिति के स्वभाव पर निर्भर है। एक ओर, वे यह जानते थे कि बढते हुए सगठनो की सामूहिक विजय और विकासशील शिल्प-विज्ञान इस बुनियादी सच्चाई को नही बदल सकते कि मनुष्य एक छोटे कद का जानवर है, और बहुत-सी चीजो मे उसकी योग्यता भी बहुत सीमित है। दूसरी ओर वे यह भी जानते थे कि शारीरिक और मानसिक सीमाए, आध्यात्मिक प्रगति के लिए की गई असीम क्षमता के व्यावहारिक रूप के अनुरूप है। अर्थात् दोनो विकास या दोनो प्रकार की प्रगति साथ-साथ चल सकती है। गाधीजी के अधिकाश

समकालीन लोगो की भूल यह थी कि वे यह मानते थे कि शिल्प-विज्ञान और सगठन तुच्छ मानव प्राणी को एक श्रेष्ठ मानव वना सकते है, और इस प्रकार आत्मिक अनुभूति की असीमताओ के स्थान पर एक दूसरी चीज दुनिया को दी जा सकती है, जिसके अस्तित्व से इन्कार करना शास्त्रानुकूल माना जाता था। इस जमीन और पानी पर चलने वाले प्राणी के लिए, जो देव और दानव की सीमा पर खडा है, किस प्रकार की सामाजिक, राजनैतिक एव आर्थिक व्यवस्थाए सवसे अधिक उपयोगी होगी ? इन सवाल का गाधीजी ने वडा सीधा और समझदारी से भरा हुआ जवाव दिया था। मनुष्य को ऐसे सगठनो के वीच जीना और काम करना चाहिए, जो उसकी शारीरिक और मानसिक रचना के अनुरूप हो, ऐसे छोटे सघ, जहा वास्तविक स्व-शासन और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व को निभाने का अवसर मिल सके। इन छोटी-छोटी स्वतत्र इकाइयो को मिलाकर एक ऐसा सघ वनाया जा सकता है जिसमे वडी सत्ता के दुरुपयोग के लोभ का सवाल ही पैदा न हो। लोकतत्री राज्य जितना वडा होता जायगा, जनता की वास्तविक हुकूमत उतनी ही अवास्तविक होती जायगी। और अपने भाग्य के निर्माण-सवधी प्रश्नो पर लोगो और स्थानीय सगठनो की राय उतनी ही क्षीण होती जायगी। इसके सिवाय प्रेम और ममता तत्त्वत व्यक्तिगत सवध से पैदा होते हैं, इसलिए पाल के अर्थ मे केवल छोटे सगठनो मे ही उदारता अपने को आसानी से जाहिर कर सकती है। यह कहना अनावश्यक है कि किसी सगठन के छोटे होने मात्र से ही सदस्यो में आपस मे उदारता और करुणा का भाव उत्पन्न हो जाता है, परन्तु इससे उदारता के विकास की सभावना तो होती ही है। वडे-वडे सगठनो में जहा कोई किसीको जानता भी नही, यह सभावना भी नही रहती और इसका यही कारण है कि इसके अधिकाश सदस्य एक दूसरे से व्यक्तिगत सवध नही रख सकते। "जो प्यार नहीं करता, वह ईश्वर को नही जानता, क्योकि ईश्वर ही प्रेम है।" करुणा एकदम आध्यात्मिकता का साध्य और साधन दोनो है। ऐसा सामाजिक सगठन जिसमें मानवीय कार्यो के अधिकाश क्षेत्र मे करुणा की अभिव्यक्ति ही असभव हो, स्पष्ट रूप से एक वुरा सगठन है।

आर्थिक विकेन्द्रीकरण के साथ-साथ राजनैतिक विकेन्द्रीकरण भी आवश्यक है। व्यक्ति, परिवार, और छोटे-छोटे सहयोगी सगठनो के पास अपनी जमीन और औजार अपने लिए और पास के वाजार की पूर्ति के लिए होने चाहिए। उत्पादन के इन आवश्यक औजारो में गाधीजी केवल हाथ-औजारो को ही

शामिल करना चाहते थे। दूसरे विकेन्द्रीकरणवादी विद्युत-चालित यन्त्रो के प्रयोग का विरोध नही करते—मैं स्वय इसी विचार का हूँ, बशर्ते कि इसका सचालन इस तरह से हो कि यह व्यक्ति और छोटे-छोटे सगठनो मे मेल खाये। इन विद्युत-चालित मशीनो को बडे पैमाने पर बनाने के लिए वास्तव मे विशेष प्रकार के अच्छे कल-कारखानो की आवश्यकता होगी। प्रत्येक व्यक्ति और छोटे सगठनो को अधिक उत्पादक यत्र मुहय्या हो सके, इसके लिए शायद कुल उत्पादन का एक तिहाई इन कारखानो मे पूरा करना पडेगा। विकेन्द्रीकरण से यान्त्रिक चातुर्य का सामजस्य हो, इस खयाल से यह कोई ज्यादा कीमत नही है। जरूरत से ज्यादा यान्त्रिक कुशलता स्वतत्रता का शत्रु है, क्योकि इससे अधीनता को प्रोत्साहन मिलता है और आन्तरिक स्फूर्ति की हानि होती है। साथ ही बहुत कम यान्त्रिक कुशलता भी स्वाधीनता की शत्रु है, क्योकि इसका नतीजा हमेशा स्थायी गरीबी और क्लान्ति होता है। इन दो छोरो के बीच मे एक सुखदाई मध्यम रास्ता है—यह एक ऐसा समझौता है जहा हम आधुनिकतम शैल्पिक सुविधाओ का आनन्द सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कीमत पर ही उठा सकते है और यह कीमत भी बहुत ज्यादा नही होगी।

यह बात स्मरण करते बडी खुशी होती है कि यदि पश्चिमी लोकतत्र के देवदूत जेफरसन के मन की चलती तो अमरीका आज केवल ४८ राज्यो का नही, वरन् हजारो स्व-शासन सपन्न इकाइयो का एक सघ होता। अपनी लम्बी जिन्दगी के अन्तिम दिनो मे जेफरसन ने अपने देशवासियो को इस सीमा तक अपनी सरकारो के विकेन्द्रीकरण करने के लिए समझाया था। जैसाकि केटो अपने प्रत्येक भाषण के अन्त मे कहा करता था, "कारथागो डीलेन्डा ईस्ट (कारथेगो को पूरी तरह खत्म कर दो)," उसी प्रकार मै अपनी प्रत्येक राय को इस आदेश से खत्म करता हू, "जिलो को ताल्लुको मे बाट दीजिये।" प्रोफेसर जॉन ड्यूई के शब्दो में उनका उद्देश्य "ताल्लुको को छोटी-छोटी रिपब्लिक (गणतत्र) बनाने का था, जिनके ऊपर एक वार्डन रहे। अपनी निगाह के नीचे सारे विषयो को वे लोग बडे राज्यो के गण-राज्यो से अधिक अच्छी तरह चला सकते है। सक्षेप मे सिविल और सैनिक सभी सरकारी मामलो मे वे सीधे तौर से अपनी राय और निर्णय का प्रयोग कर सकते है। इसके सिवाय जब कोई व्यापक और अहम मसला निर्णय के लिए आये तो सभी ताल्लुको या मुहल्लो को उसी दिन बैठक के लिए बुलाया जा सकता है, जिससे कि वहीपर लोगो की सामूहिक राय की अभिव्यक्ति हो सके।" इस योजना

को कार्यान्वित नही किया गया। लेकिन जेफरसन के राजनीति-दर्शन का यह तत्त्वपूर्ण अग था। उसके राजनैतिक दर्शन का यह इसलिए महत्त्वपूर्ण भाग था, कि महात्मा गाधी के समान उसका दर्शन भी नीतिशास्त्र-सबधी और धार्मिक था। उसकी राय से सभी मानव समान पैदा हुए है, क्योकि वे सभी ईश्वर के पुत्र है। ईश्वर के पुत्र होने के नाते उनके कुछ कर्त्तव्य और कुछ अधिकार है—और इन अधिकार और कर्त्तव्यो का व्यवहार प्रभावपूर्ण ढग से केवल स्वायत्त सत्ता-सपन्न जातत्री धर्म राज्यो मे ही हो सकता है, जोकि ताल्लुके से राज्य और राज्य से सघ मे बढते हुए चले जाय।

प्रो० ड्यूई ने लिखा है, "जो शब्द काम मे आ चुके है उनके पीछे अन्य दिवस दूसरे शब्द और दूसरी राये लाकर खडी करते है। सभी राजनैतिक व्यवस्थाओ के निर्णय की नैतिक कसौटी की जिन शर्तो मे जेफरसन ने अपने विश्वास को प्रकट किया है और जिस शर्त के द्वारा गणतत्री सस्थाओ की न्याय-सगति मे उन्होने विश्वास प्रकट किया है, वे शर्ते आज चलन मे नही है। फिर भी यह सदिग्ध है कि क्या होने वाले उन आक्रमणो के विरुद्ध लोकतत्र की सुरक्षा उस स्थिति पर निर्भर करती है जिसे जेफरसन ने अपने नैतिक आधार और उद्देश्य की दृष्टि से स्वीकार किया है, चाहे हमे लोकतत्र द्वारा व्यवहृत नैतिक आदर्श को सूत्ररूप देने के लिए दूसरे शब्द खोजने पडे।

"साधारण मानव-स्वभाव मे, आम तौर से उसकी सभाव्यताओ में और विशेष रूप से उसकी शक्ति मे फिर से भरोसा कायम करना, और तर्क एव सत्य का अनुकरण करना सर्वसत्तावाद के विरुद्ध भौतिक सफलता अथवा विशेष कानूनी और राजनैतिक स्वरूपो की गहरी पूजा के प्रदर्शन की अपेक्षा अधिक मजबूत घेरा-बन्दी है।"

गाधीजी ने जेफरसन के समान राजनीति को नैतिक एव धार्मिक रूप में ही सोचा था और इसीलिए उनके प्रस्तावित हल उस महान् अमरीकी द्वारा प्रस्तावित-हलो से इतना मेल खाते है। किन्ही बातो मे वे जेफरसन से भी आगे बढ गये थे—उदाहरण के लिए, आर्थिक और राजनैतिक विकेन्द्रीकरण और मुहल्लो मे "आरभिक सैनिक शिक्षण" के स्थान पर सत्याग्रह के प्रयोग के समर्थन में—परन्तु इसका कारण यह था कि जेफरसन की अपेक्षा गाधीजी का आचार-शास्त्र अधिक तर्कपूर्ण और धर्म पूरा यथार्थवादी था। जेफरसन की योजना अमल मे

नही लाई गई, और न गाधीजी की। और यह हमारे एव हमारी सतानो के लिए वडे दुर्भाग्य की वात है।

: ११ :

गांधीजी की देन

किंग्स्ले मार्टिन

सन् १९३१ मे मैंने पहले-पहल महात्माजी को 'गोलमेज-कान्फ्रेंस' के समय देखा था। उसी समय मेरे मन मे यह प्रश्न उठा था कि वे कहातक सत हैं और कहातक एक कुशल राजनीतिज्ञ। वाद मे मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि इस प्रश्न का उत्तर दिया ही नही जा सकता है, क्योकि दोनो प्रश्न वडे पेचीदा ढग से मिल कर एक-रूप हो गये है। हिन्दुस्तान मे सत राजनीतिज्ञ हो सकते है, जिस तरह से कि वे मध्यकालीन यूरोप मे हो सकते थे। धर्म-ग्रन्थो का सत भाष्यकार व्यापक धर्म-प्रधान समाज मे अपने लिए एक स्थान वना सकता है, जिसकी कि यत्रवादी और नास्तिक यूरोप मे कम सभावना है। गाधीजी हिन्दुस्तान के कोने-कोने मे मिलने वाले दिगम्बर साधुओ से सर्वदा भिन्न है, क्योकि उनकी धार्मिक प्रेरणा, वकील की शिक्षा, पाश्चात्य पुस्तको के व्यापक अध्ययन, विश्व-ज्ञान एव उनकी कुशाग्र वुद्धि के कठोर परीक्षण के वाद भी जीवित रही है। अपनी तर्क-पद्धति के द्वारा धार्मिक सिद्धान्तो का अनवरत परीक्षण ओर व्यवहार ही गाधीजी की ऐसी विशेषता है, जिसने मुझे सबसे अधिक वशीभूत किया है।

महात्माजी ने अपनी विचार-पद्धति अथवा किसी निर्णय पर पहुचने के मार्ग मे आने वाली कठिनाइयो को कभी गुप्त नही रखा। व्यक्तिगत वातचीत तक मे वे हमेशा दलील करने को तैयार रहते थे और हँसते-हँसते अपनी अनियमितताओ तक को स्वीकार कर लेते थे। दूसरे पत्रो से भिन्न 'हरिजन' मे वे सदा सत्य को खोजने के प्रयत्न के साथ-साथ अपने आन्तरिक सघर्ष को भी प्रकाश मे लाते थे। मेरा खयाल है कि वे इस वात को अवश्य मान लेते कि उनका राजनैतिक स्थान हमेशा सन्तोषजनक नही होता था, विशेषकर १९४२ के कठिन समय मे अपनी गिरफ्तारी से पूर्व, जबकि उन्हे अपने पुराने साथी श्री राजगोपालाचार्य से अलग होना पडा था, और जब उन्हे स्वय यह भरोसा नही था कि सभाव्य

जापानी आक्रमण के विरुद्ध अहिसक प्रतिरोध मे अपने अनुयायियो को वे कितनी दूर तक साथ ले जा सकते है। अपने ऐसे भोले-भाले अनुयायियो पर उनका क्रोधित होना भी ठीक था, जो यह समझते थे कि एक वार अहिसा के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने मात्र से सव कुछ आसान हो जायगा। वे घुमा-फिरा कर हमेशा उनसे यह कहा करते थे कि उन्हे कोई समस्या आसान प्रतीत नही होती। सिद्धान्त विल्कुल स्पष्ट था, परन्तु सामाजिक और राजनैतिक गुत्थियो के सुलझाने मे इस सिद्धान्त का व्यवहार एक वडा दिमागी काम था।

आप यह भरोसा रखिये कि महात्माजी को धोखा नही दिया जा सकता था। आक्सफोर्ड के 'नैतिक शस्त्रीकरण' के प्रवर्तक दलो के भीतर की वात को, जव वे लोग महात्माजी से मिलने आये, समझते उन्हे देर नही लगी। अपने 'हरिजन' के अक मे उनकी वातो का उत्तर देते हुए गाधीजी ने लिखा था कि ईश्वरी सदेश को सुनने के लिए 'सुनने की योग्यता' भी चाहिए। यह कहना किसीके लिए *कितना आसान है कि वह ईश्वर की वात सुन रहा है। अग्रेजी साम्राज्यवादियो का* उनसे यह कहने का क्या मतलव था कि हिन्दुस्तान को पश्चात्ताप करना चाहिए? "जवतक साहूकार या ऋणदाता कर्ज देता नही या अपने को पवित्र नही करता तवतक कर्जदार के यह कहने का क्या मतलव कि वह कर्ज अदा नही करेगा।" और इसपर उन्होने एक वडी तेज चुटकी ली, जो टाल्स्टाय की याद दिलाने वाली और जो उनके वैराग्य को समझने के खयाल से वडी महत्वपूर्ण थी। "शाति और जीवन का ऊचा स्तर दोनो वाते असगत है।" यदि इन्सान अपने को दौलत से लाद लेता है तो विना पुलिस के काम चलाना उसके लिए कठिन है। इसी नियम के आधीन साम्राज्य के लिए सेना और युद्ध अनिवार्य है।

गाधीजी के उपवास अग्रेजो की समझ से परे थे। ये उपवास भारतीय परपरा के अग है। गाधीजी स्वय कहा करते थे कि उपवास का विचार उनमे मा के दूध के साथ आया है। अपनी किसी सतान की वीमारी पर वे स्वय उपवास का सहारा लेती थी। गाधीजी के उपवासो की कीमत उनके धार्मिक असर मे थी। ये उपवास किसीपर दवाव डालने के साधन नही थे। उपवास का प्रथम उद्देश्य आत्म-शुद्धि था। सरकार को परेशान करना अथवा जिनके खिलाफ उपवास किया जाता था, उनपर असर डालना विल्कुल गौण था। उन्होने यह भी कहा था कि वे दुश्मनो के खिलाफ उपवास कभी नही करते, "जिनका मुझपर प्रेम है, उन्हें काम की दिशा मे वढाना," ऐसी उनकी आशा थी। लेकिन वे कहते थे कि उन्हे स्वय यह पता नही

कि ये उपवास किस तरह असर करते है। उन्हे अनुभव से सिर्फ यह पता था कि वे असर करते है। किसीका ऐसा कहना कि ये उपवास उस सत्य को स्पष्ट करने के खयाल से किये जाते थे, जिसके लिए वे जान की वाजी लगाने को तैयार होते थे, जिससे कि उन लोगो को फिर से अपनी स्थिति पर गौर करने और अपनी गलतियो पर विचार करने के लिए विवश किया जा सके---मेरा खयाल है कि ऐसा सोचना विषय को जरूरत से ज्यादा सरल वनाना होगा। वलिदान के विचार से आमरण अनशन का वही महत्त्व है, जो फासी पर मरने का। और फिर भी, गाधीजी के अद्वितीय जीवन के द्वारा उठाई गई अन्य समस्याओ के समान, कभी-कभी उनके धार्मिक कार्य और अति प्रभावशाली ससारी दवाव के वीच भेद कर सकना वडा कठिन था। गाधीजी इस वात को नही मानते थे कि वे कभी दवाव डालने के खयाल से ऐसा करते थे। श्री अम्वेडकर और हरिजनो को समझाने के खयाल से किये गए उनके उपवास का इतना तीव्र प्रभाव मेरे विचार मे इसलिए हुआ था कि लोग यह जानते थे कि यदि गाधीजी की मृत्यु हो गई तो इसका परिणाम अपनी जिद्द पर अडे रहने वाले व्यक्तियो के लिए वहुत वुरा होगा। लेकिन स्वय गाधीजी ने अपनी सफलता की इस व्याख्या का विरोध किया था। उनका यह कहना था कि ऐसा करने मे उनका मशा विरोधियो पर दवाव डालना नही, "वरन् उन हजारो लोगो को ज्यादा काम करने के लिए प्रेरित करना था, जिन्होने अस्पृश्यतानिवारण की प्रतिज्ञा की थी।"

बगाल मे होने वाले साम्प्रदायिक दगे को खत्म करने वाला गाधीजी का उपवास उनकी अपूर्व विजय का सूचक है। ठीक उसी समय मै पूर्व मे पहुँचा था, जवकि दिल्ली मे मुसलमानो के खिलाफ चलने वाली हिंदुओ की हिंसा को खत्म करने के उद्देश्य से किया गया गाधीजी का उपवास खत्म हो चुका था। यह वह उपवास था, जो कि लगभग मृत्यु मे समाप्त हुआ था, और महात्माजी ने इसे उस समय तोडा था जवकि अधिकार-सपन्न सभी लोगो की ओर से उन्हे भरोसा दिलाया गया था कि दिल्ली मे मुसलमानो की जान-माल की रक्षा के लिए सभी कुछ किया जायगा। यह कहना विल्कुल गलत है कि इससे पटेल एव दूसरे अधिकारी पाकिस्तान को ५० करोड रुपये देने के लिए वाध्य किये गए थे। इस उपवास के वाद, मुसलमान दिल्ली की सडको पर, कम-से-कम दिन मे, अपनी पीठ मे सिक्खो की तलवार के घुसने के डर के विना घूम सकते थे। उसी समय महरौली मे होने वाले मुस्लिम मेले मे मै स्वय मोजूद था जोकि विना गाधीजी की इस शर्त के कभी नही हो सकता था

स्वीकृति क्या उनके अहिंसा-सिद्धान्त मे किसी परिवर्तन की सूचक है ? इसके उत्तर मे उन्होने कहा कि उनका यह सिद्धान्त कभी नही वदला। "वडे दु ख के साथ मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि अग्रेजो को हटाने के उद्देश्य से प्रयोग मे लाई जाने वाली 'सविनय-अवज्ञा' केवल कमजोर के हथियार के रूप मे ही व्यवहार मे आई, अहिंसा के शुद्ध रूप मे नही, जो सत्य, प्रेम और वलिदान पर ही निर्भर करती है।" उन्होने मुझसे यह भी कहा कि यह फर्क दक्षिण-अफ्रीका के अपने सत्याग्रह के समय ही पहले-पहल उनके ध्यान मे आया ओर तभी "निष्क्रिय-प्रतिरोध" का समर्थन करने वाले अपने विचार को उन्होने छोड दिया था। उन्होने निष्क्रियता पर कभी विश्वास नही किया, और न आज जिसे 'खुश करना' कहा जाता है, उसपर उनका कभी भरोसा रहा। मानव-मात्र के लिए उनकी पहली शिक्षा यह थी कि उसे सर्वप्रथम सत्य का पता लगाना चाहिए और इसके वाद अपने उद्देश्य की शुद्धि करनी चाहिए। इस तरह के प्रतिरोध द्वारा यदि कोई व्यक्ति अपनेको सत्याग्रह की पद्धति मे सिद्ध-हस्त कर लेता है तो वह निश्चय ही सत्य ओर अहिंसा के सिद्धात पर अटल रहेगा। कई वार उन्होने दुनिया को यह कहकर आश्चर्य मे डाल दिया कि जो पूर्ण अहिंसा के लिए तैयार नही है, उनके लिए वुराई के सामने कायरतापूर्वक सिर झुका देनें की अपेक्षा हिंसक तरीके से उसका प्रतिरोध करना ज्यादा अच्छा है।

वाह्य रूप से अहिंसा सफल है या नही, यह प्रश्न इस वात पर निर्भर करता हे कि विरोधी के भीतर कोई विवेक नाम की चीज है या नही। मैने 'हरिजन' मे यह पढा था, "हमारी विजय विना अपराव या गलती किये जेल मे रहने पर निर्भर है।" अग्रेजो के विरुद्ध सघर्प मे क्लेश या पीडा को जीवन का एक अग वनाना पडा था। हिंसक प्रतिरोध के अभाव मे "अपराधी अपराध करने से स्वय तग आ जाता है", इसपर जव वर्नाड-शा ने टीका करते हुए कहा, "भेड का शाकाहारी होना शेर पर कोई असर नही डालता", तो गाधीजी ने यह जवाव दिया था कि वे यह नही मानते कि "अग्रेज विल्कुल शेर है, इन्सान नही।" नाजी लोगो के समान मामलो मे अहिंसा के प्रयोग की कठिनाई को स्वीकार करने के लिए वे तैयार थे, क्योकि उन्हे दूसरे की पीडा मे मजा लेने की शिक्षा दी गई थी—जिन्होने ६० लाख मासूम यहूदियो को तलवार के घाट उतार दिया था। परन्तु उनका यह दावा विल्कुल सच था कि अग्रेजो के विरुद्ध दुर्वल की अहिंसा का भी असर पडेगा, क्योकि नि शस्त्र प्रतिरोधको पर लाठी वरसाना उन्हे अच्छा नही लगता। वास्तव मे यह वात सभी अग्रेज अधिकारी स्वीकार करते है कि यदि निष्क्रिय-प्रतिरोध की पद्धति हिन्दुस्तानियो

द्वारा लगातार आग्रहपूर्वक अमल मे लाई जाती तो अग्रेज लोग हिन्दुस्तान से बहुत पहले ही चले जाते, लेकिन, महात्माजी ने यह अनुभव किया कि यह सचमुच अहिमा नही है। निष्क्रिय-प्रतिरोध एक ऐमा शस्त्र है, जिसका व्यवहार प्रभावपूर्ण ढग से उन लोगो के द्वारा किया जा मकता है, जिनके पास हथियार नही है, लेकिन अहिंसा एक ऐसा आत्मिक प्रयत्न है, जो उन लोगो के द्वारा अधिक मफलतापूर्वक व्यवहार में लाया जा मकता है जो यदि चाहते तो जुल्म करने वाले को हथियार के वल से जुल्म करने मे रोक सकते थे। मक्षेप में, अहिमा मे सर्वप्रथम उद्देश्य की शुद्धि और मत्य मे पूर्ण विश्वास आवश्यक है , विरोधी को वे सभी उचित रिआयते देने के वाद भी, जो देनी चाहिए थीं, जहा विरोधी साफ गलती पर हो, वहा सिद्धान्त की वात पर दृढ रहना अहिसा की दूसरी शर्त है। विजय प्रेम द्वारा ही प्राप्त होनी चाहिए, चाहे अहिमा का प्रयोग करने वाला व्यक्ति अपने शत्रु का हृदय-परिवर्तन करने से पहले ही मर जाय। महात्माजी यह स्वीकार करते थे कि इस सिद्धान्त को आम तौर पर अग्रेजो के खिलाफ निष्क्रिय-प्रतिरोध करने वाले लोगो तक ने भली प्रकार नहीं समझा था।

इसपर गाधीजी के दर्शन की एक महत्वपूर्ण कमी की ओर मैंने सकेत किया, जिमे मै हमेशा से अनुभव करता रहा हूँ। मैंने कहा कि अपने वचपन में मैंने ईमा की शिक्षाओ को पढा था और तव जैसा कुछ समझा था उसके आधार पर मै यह कह सकता हूँ कि ईमा के उपदेश से यह वहुत भिन्न नही है और इस कारण उसके महत्व को पूरी तरह स्वीकार करते हुए भी मुझे ऐमा लगता है कि परिपक्वता की पूर्ण दशा में शासन-सूत्र चलाने वाले लोगो के लिए इसके पास कोई उचित उत्तर नही है। मै यह अच्छी तरह देख सकता हूँ कि अहिमा एक आक्रमणकारी शक्ति को पराजित कर सकती है, परन्तु जव उन्ही विजयी लोगो के सामने हुकूमत का सवाल आता है तो वे स्वय ऐमी मशीन मे काम लेते है जो स्वभावत वल और जोर पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए काश्मीर के तात्कालिक ममले मे महात्माजी अहिसा का प्रयोग किम प्रकार करेगे ? इसपर उन्होंने यह उत्तर दिया था कि सरकार के लिए अहिसा का प्रयोग सभव है, और इस सम्वन्ध मे टाल्सटाय द्वारा लिखित 'मूरखराज' की कहानी सुनाई। उन्होंने यह कहा कि शेख अव्दुल्ला काश्मीर मे अहिसा का प्रयोग कर सकते थे, यदि स्वय उनका अहिमा मे विश्वास होता। उन्होंने यह भी कहा, "मै कवाइलियो के विरुद्ध सफलतापूर्वक अहिसा का इस्तेमाल कर सकता हूँ। लेकिन शेख अव्दुल्ला का अहिमा मे भरोमा नही है।" इसपर मैंने पूछा, "क्या आप ऐसे

राजनैतिक मामलो मे, जहा अहिंसा का प्रश्न ही नही उठता, व्यावहारिक सलाह नही देते ?" वे हँसे और कहा, "जरूर देता हूँ।" और इसके वाद काश्मीर के मसले को लेकर हमारी वातचीत ने ऊँचे यथार्थवादी और व्यावहारिक वाद-विवाद का रूप ले लिया।

महात्माजी की यह अपनी विशेपता थी। राजनैतिक मसलो पर वातचीत करते समय वे साधारण समझौते का रास्ता कभी नही अपनाते थे, क्योकि वे इस क्षेत्र मे सिद्धात को हमेशा अपने असली रूप मे ही अपनाने के पक्षपाती थे। सिद्धान्त के प्रश्न पर वे उस समय तक ऊपरी तौर से खामोश रहते थे, जवतक कि उन्हे या तो अपने विरोधी की स्वेच्छा का भरोसा न हो जाय—जैसा कि केविनेट-मिशन द्वारा उनके मन पर अपनी सच्चाई की छाप डाल देने के वाद हुआ था—या काश्मीर के मसले मे, जहा उन्होने समझौता न होने तक आदर्श सुझाव के सवाल को कुछ समय तक उठाना ही उचित नही समझा था। इसके वाद वे एकाएक, और प्राय पश्चिमी-निवासी को आश्चर्य मे डालते हुए, सिद्धान्तो को व्यावहारिक दृष्टि से समझौते के लिए रखते हुए दिखलाई देते और तव वातचीत पूरी तरह यथार्थवादी तर्क मे वदल जाती, जहा थोडी देर के लिए ऐसा लगता, मानो सिद्धान्त को विल्कुल भुला दिया गया हो। शायद इस वात को इस तरह से ठीक कहा जा सकता है कि दूसरे लोगो की अपेक्षा प्रत्येक समस्या के दोनो पक्षो पर विचार करने का वे आग्रह रखते थे। यदि व्यावहारिक दृष्टि से रास्ता वन्द होता तो वे अपने पाल को फिर से सँभाल लेते और इसका नतीजा यह होता कि आदर्श को खोजने का वहाना करते हुए भी उन्हे ऐसा लगता कि मानो उनका उद्देश्य उनकी निगाह से ओझल हो गया हो। ऐसी अवस्था मे अपने उद्देश्य तक यदि वे सीधे नही पहुँच सकते थे, तो व्यावहारिक राजनीति के निचले स्तर को स्वीकार कर लेते थे और औचित्य के आधार पर वडी सफाई के साथ अपनी राय देते थे। इस तरह रास्ता वदलने मे वे अपने व्यवहार को भूल नही जाते थे और इसलिए वे पुन सच्चे रास्ते पर हमेशा वढ सकते थे।

महात्माजी की हत्या के नाटकीय दिनो के वाद दो वाते मेरे दिमाग मे एकदम पैदा हुई। पहली वात थी दूसरे भारतीय नेताओ की उनकी सलाह और मशविरा पर निर्भरता। उनकी प्रतिष्ठा इतनी महान् थी, उनका स्थान इतना ऊचा था, कि विभिन्न विचार के राजनैतिक नेता उन्हे अपना गुरू समझते थे। वे उनपर शायद वहुत भरोसा करते थे। और उनमे से कुछ अव अपनेको वडा राजनीतिज्ञ मान सकते है,

क्योंकि उनका विश्वासपात्र मत्री अव उनके बीच मे नही है। 'राष्ट्रपिता' की हैसियत से उनकी स्थिति की अद्वितीय विशेपता यह थी कि सारे देश मे उनकी एक विशेष खुफिया फैली हुई थी। राजा मे लेकर रक तक उनके पाम आकर अपने व्यक्तिगत दुख: को उडेल देते थे। राजनीति मे इम तरह का दूमरा उदाहरण नही मिलता। मिविल सर्विस का एक छोटे-मे-छोटा अधिकारी तक उनसे अपने मत्री के दुर्व्यवहार की शिकायत कर मकता था और गावीजी फौरन मवधित मत्री मे जवाव तलव करते थे, और जो आलोचना के विरुद्ध इसलिए कोई विरोव नही कर मकता था कि वह आलोचना उसकी जानकारी के विना हुई है अथवा गैर मरकारी ढग पर हुई है। भारतीय राजनीति मे यह अद्भुत व्यक्तित्व और एक मे मिलाने वाला प्रभाव आज ओझल हो गया है। इम क्षति का अदाज लगाना कठिन है।

हिन्दू-मुस्लिम एकता उन कारणो मे मे एक कारण थी, जिमके लिए महात्माजी ने अपने मपूर्ण जीवन को उत्सर्ग कर दिया था। छुआछूत, खद्दर और ग्राम-निर्माण के कार्य मे वे अपनेको पहले ही खपा चुके थे। मै यह भी जानता हूँ कि वे असफलता की एक भावना को लेकर मरे। उनके वहुत कम अनुयायी अहिमा को ममझ सके, और उनमें से भी और कम उमके आचरण मे दक्ष हो सके। अहिमा के मत्र से उन्होने वहुतो को दीक्षित किया था, मगर अग्रेजो के जाने के वाद यह स्पप्ट हो गया कि ये लोग कमजोर का निष्क्रिय प्रतिरोव समझ सके, वलवान् की अहिमा नही। गावीजी यह स्वीकार करते थे कि विना हिमा के अग्रेजो का हिन्दुस्तान छोड देना एक अपूर्व वात थी। अपने जीवन के अन्तिम सप्ताह मे उन्होने एडगर स्नो से कहा था कि अहिसा केवल व्यक्तिगत आचारशास्त्र का ही विपय नही है, वरन् वह एक ऊँचा राजनैतिक साधन भी है—और इम प्रकार दुनिया को उनकी एक देन है। उन्हें यह पता था कि क्रोव और हिमा की ताकते नये हिन्दुस्तान मे वढ रही है। उनका कहना था कि अहिमा को कभी हराया नही जा सकता, क्योकि यह एक मानसिक अवस्था का नाम है, जो स्वय ही एक जीत है और जो वाहरी सफलता न मिलने पर भी दूमरो के अदर हमेशा अच्छे आध्यात्मिक परिणाम पैदा कर सकती है। परन्तु साम्प्रदायिक सवर्प एक तात्कालिक चुनौती थी। दिल्ली के उपवास से ठीक होने के वाद उन्होने पाकिस्तान जाकर अपने मित्रो से अपील करने की वात मोची थी। उन्हे यह भी पता था कि यह कार्य पूरा करने तक शायद वे जीवित न रहे। उपवास के दिनो मे उनपर फेका गया वम उग्र हिन्दुओ की कट्टरता की एक चेतावनी थी। अपनी हत्या के ठीक एक दिन पहले उन्होने कहा था कि प्रार्थना-मभा के

बीच उन्हे मारना बहुत आसान है। यह बात सिद्ध हो गई। परन्तु उनकी मृत्यु ने एक उपाख्यान का श्रीगणेश किया है। और आज हिन्दुस्तानियो के दिमाग मे गाधीजी स्वर्गीय देवताओ के समूह के बीच खडे दिखलाई पड रहे है। उत्सर्ग की रात को गहरी भावना के साथ आकाशवाणी के द्वारा प्रसारित की गई अपनी मार्मिक वाणी मे पडित नेहरू ने सहिष्णुता और अच्छाई की तमाम ताकतो को इस अवसर पर सगठित होने की अपील की थी। किसी प्रकार, थोडे समय तक महात्माजी की मृत्यु ने उनके उपवास के उपदेशो की पुष्टि की और इससे साप्रदायिक शाति की आशा अधिक बलवती हुई। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान मे कुछ भी हो, गाधीजी की 'देन' कभी व्यर्थ नही होगी। वास्तव मे यह भी एक खतरा है कि उनसे सबध रखने वाले इस उपाख्यान को ही लोग विकृत कर दे, जब सत मरता है, तब कुछ लोग उसकी स्मृति का इसलिए गुणगान करने लगते है, ताकि दुनिया उसकी नसीहतो को आसानी से भूल सके। लेकिन इस दिशा मे उन्हे पूरी सफलता नही मिलती। ईसाई धर्म के विषय मे भी यही हुआ है। जहाँ एक ओर चर्च के आपसी झगडो एव पोपो की घोषणाओ ने ईसा के उसूलो को बहुत विकृत कर दिया है, वही दूसरी ओर ईसा की नसीहते चर्च-सुधार के विरोध के भीतर से सामने आकर उसके शिष्यो को उपदेश और नव-जीवन देती रही है। इसी प्रकार गाधीजी की जिन्दगी और मौत इस विश्वास के अमर साक्षी बने रहेगे कि मानव इतने पर भी बर्बादी, हिंसा और क्रूरता पर सत्य और प्रेम के द्वारा विजय पा सकता है।

: १२ :

एक महान् आत्मा की चुनौती

जॉन मिडिलटन मर्रे

मै नही सोचता कि गाधीजी की शिक्षाओ का कोई गभीर विद्यार्थी इस बात से इन्कार करेगा कि 'हिन्द स्वराज्य' एक महत्वपूर्ण अभिलेख है। यह विचित्र स्पष्टवादिता और प्रभाव से भरी हुई एक छोटी पुस्तिका है जो प्रकाश और ज्ञान के गहरे अनुभवो का परिणाम प्रतीत होती है, ऐसा प्रकाश जो समान रूप मे लगभग सभी महान् धार्मिक शिक्षको के भाग्य मे होता है और विशेष रूप से, पश्चिमी सभ्यता के उस जोरदार खडन की समानता, उस बातचीत मे की जा सकती है, जो रूसो के आत्म-ज्ञान का परिणाम थी। रूसो के नैसर्गिक मानव का स्थान, जिसे "सभ्यता"

भ्रष्ट नही कर सकी है, गाधीजी के दिमाग मे हिन्दुस्तानी किसान ने लिया है, जोकि रूसो के नैसर्गिक-मानव की अपेक्षा स्वय एक असलियत है। रूसो का नैसर्गिक-मानव केवल एक विचित्र कल्पना-मात्र है। वह एक आदर्श या मॉडेल का मानसिक प्रतीक है। परन्तु गाधीजी का आदर्श मानव ऐसा ठोस व्यक्ति है, जो आज तक सभ्यता से भ्रष्ट नही हुआ है और जिसका अपना पार्थिव अस्तित्व भी है। ऐसे लाखो लोग भारत के गावो मे निवास कर रहे है, जिनका साप्रदायिक भाईचारे, कमखर्ची और आडम्बर-शून्य कर्तव्य-निष्ठा का जीवन है—ऐसा कर्त्तव्य जिसकी जडे अचल धार्मिक विश्वास मे गहरी जमी है—इन लोगो के लिए बुद्धि-प्रधान हिन्दुस्तानियो द्वारा किया जाने वाला पश्चिमीकरण न तो कोई अर्थ रखता था और न वे उसके कभी नजदीक ही आए थे। 'हिन्द स्वराज्य' की गाधीजी की परिभाषा तत्त्वत इस आत्म-शासनप्रिय महान् जाति द्वारा भ्रष्ट पश्चिमी सभ्यताप्रिय लोगो पर आध्यात्मिक पुनर्विजय प्राप्त करना थी। यह विजय पश्चिम का अनुकरण करने वाले लोगो द्वारा स्वय अपने नये आध्यात्मिक जीवन से, अपने भ्रष्टाचार की आत्म-स्वीकृति मे, एव भारत की ग्रामीण सभ्यता मे अपनेको नम्रतापूर्वक मिला देने से ही प्राप्त हो सकती है। गाधीजी का कहना था, "सभ्यता आचार की उस पद्धति का नाम है, जो व्यक्ति को उसके कर्त्तव्य-मार्ग का सकेत करती है।" इस मार्ग पर आज भी और विगत शताब्दियो मे भारतीय किसान बराबर चलता आया है।

दूसरे शब्दो मे गाधीजी ने भारतीय पूर्वजो के जीवन के भीतर छिपी व्यक्त चेतना बन जाने का विचार किया और ऐसे शिक्षित भारतीयो की दूसरी सतह को उससे शुद्ध करने का निश्चय किया, जो अच्छे या बुरे उद्देश्य से पश्चिमी सभ्यता के मूल्यो के प्रभाव से अपनेको विकृत कर चुके थे। परम्परागत अर्थ-व्यवस्था और प्राचीन ग्रामीण जीवन-प्रणाली मे उन्हें आत्म-शक्ति की प्रधानता दिखलाई दी और इसी शक्ति को आध्यात्मिक अनुशासन के रूप मे वे प्रत्येक व्यक्ति के ऊपर प्रयोग करना चाहते थे। साथ ही विदेशी व्यावसायिक सभ्यता से हिन्दुस्तान की मुक्ति का साधन भी इसी शक्ति को मानते थे। यह समझना बहुत महत्वपूर्ण है कि गाधीजी के दर्शन मे इस आत्म-शक्ति का कोई गुप्त स्थान नही था।

हजारो-लाखो लोग अपने अस्तित्व के लिए इस अति क्रियाशील शक्ति के ऊपर निर्भर है। इस शक्ति के सामने लाखो परिवारो के छोटे-मोटे सघर्ष अपने-आप समाप्त हो जाते है। इतिहास इस तथ्य पर न तो ध्यान देता है और न दे सकता है। इतिहास असल मे प्रेम और आत्म-शक्ति के आसानी से काम करने के मार्ग में

आने वाली प्रत्येक वाधा का अनुलेखन करता है। इतिहास प्रकृति के रास्ते की वाधाओ का लेखा रखता है। आत्म-शक्ति के स्वाभाविक होने के कारण वह इतिहास मे कोई स्थान नही पाती।

यह एक गभीर विचार-पूर्ण कथन है, यद्यपि 'प्रकृति' की परिभापा के विपय मे आम कठिनाइया उठाई जा सकती है, तथापि प्रसग से यह वात विल्कुल स्पष्ट है कि गाधीजी के लिए 'नैसर्गिक' समाज एक गहरी धार्मिक पर परस्पर निर्भर है, जिसने शताव्दियो से आग्रहपूर्ण दैनिक जीवन को मूर्त्त रूप दिया है। उस स्वरूप का दर्शन गान्धीजी को भारत मे विशेप रूप से हुआ। भारतीय सभ्यता पश्चिमी व्यावसायिक या औद्योगिक अस्थिर सभ्यता के विपरीत सदा टिकाऊ रही है।

कभी-कभी, गाधीजी अपने महान् देश के पुनर्दर्शन के नशे मे डूवकर 'हिन्द स्वराज्य' के पृष्ठो को इन विचित्र विचारो से भर देते थे। वे आलोचक पाठक को यह कहकर नही समझायगे, जैसेकि—

"इसका यह अर्थ कदापि नही है कि हम यत्र का आविष्कार करना जानते नही थे, परन्तु हमारे पूर्वजो को पता था कि यदि उन्होने अपना दिमाग इस दिशा मे लगाया तो हम इसके गुलाम वन जायगे और इस प्रकार हम अपनी नैतिक रचना को खो वैठेगे। इसलिए वहुत विचार-मथन के वाद उन्होने यह निश्चय किया कि हमे वही करना चाहिए, जो हम अपने हाथ-पाव से कर सकते है।"

यह विचार सचमुच वडा काल्पनिक है कि हजारो वर्प पूर्व भारतवर्प के ऋपियो ने वहुत विचार और चितन के पश्चात्, इरादतन और जानवूझकर उस शिल्पकर्म को छोड दिया था, जिसे वाद मे पश्चिमी यूरोप के लोगो ने खोज निकाला और शोषण का एक साधन वनाया। परन्तु यदि इस कथन की ध्वनि को लें, अक्षरो को नही, तो इससे एक सच्चाई प्रकट होती है और वह यह कि हिन्दुस्तान की अति रूढिवादी सभ्यता अपनी अनेक भूलो और दोपो के वावजूद एक धार्मिक विवेक पर आश्रित है, जिसने विचारपूर्वक भौतिक वस्तुओ के मुकाविले आध्यात्मिक तथ्यो को पसद किया है। इस विपय में भारतीय और पश्चिमी सभ्यता के वीच का भेद वडा तीव्र है और ऐतिहासिक सत्य की उपेक्षा का हिंसा की कीमत पर भी लोगो के दिलो मे यह वात विठाना गाधीजी के लिए विल्कुल न्यायसगत है। यद्यपि इतिहास की किसी भी अवस्था मे भारतवर्प उस शिल्प-आविष्कार के करने के, अथवा उसे इन्कार करने के योग्य नही रहा है, जिसके कि आविष्कार का पूरा श्रेय आज पश्चिम को है। भारतवर्प ने एक धार्मिक और पारलौकिक मार्ग चुना और उस कारण

शिल्प-विज्ञान के क्षेत्र में बढने के वह अयोग्य रहा। निःसदेह इस तथ्य के पीछे हिन्दुस्तान और ईसाईयत की सामान्य प्रकृति का गहरा भेद छिपा है, जिसके विवाद मे जाना हम यहा पसद नही करते।

'हिन्द स्वराज्य' मे यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि गाधीजी द्वारा पश्चिमी सभ्यता की अमान्यता बिल्कुल मौलिक है, और यह सोचना पूर्णतया गलत है कि असली कला और विज्ञान के प्रति उनका विरोध किसी छलपूर्ण मन स्थिति का सूचक है। वे इस विषय में सदा बहुत गभीर रहे है, क्योकि यह उनके धार्मिक दर्शन का एक अति अनिवार्य भाग था। उनकी दृष्टि मे पश्चिमी सभ्यता आध्यात्मिक सत्य की अमान्यता का और भौतिक वस्तुओ पर चित्त केन्द्रित करने का नतीजा है; जो बडा भयकर है। जब वे दृढतापूर्वक यह घोषणा करते है कि "मशीन पाप का प्रतीक है", तो 'पाप' शब्द को अधिक-से-अधिक सख्ती के अर्थ मे लेने का उनका मतलब था।

इसलिए, १९वी शती के यूरोपीय स्वतत्रता के आदर्श पर चलाये गये राष्ट्रीय स्वतत्रता-आन्दोलन मे गाधीजी का इस गहराई तक पड जाना, एक प्रकार का असत्याभास या आत्मविरोध ही है। उस आन्दोलन का नेतृत्व करना उनके लिए न्याय-सगत था, क्योकि उनके विचार से ब्रिटिश नियत्रण के हटे बिना भारत अपने स्वाभाविक परम्परागत जीवन मे आ नही सकता था। आरम्भ मे पापपूर्ण पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव को बढाने वाली और फैलाने वाली एजेसी के रूप मे ही अग्रेजो का यहा से भागना आवश्यक था। परन्तु यह मत उन बहुत-से काग्रेसियो के विचार से सिद्धान्तत भिन्न था जो पश्चिमी सभ्यता की सपूर्ण परिपाटी को सुरक्षित रखते हुए भी स्वय अपने घर के स्वामी होना चाहते थे। ये दोनो उद्देश्य अर्थ विपरीत थे और उनका मेल अनिश्चित था। इसी कारण गाधीजी की स्थिति निराली थी। तत्त्वत वे एक धार्मिक सुधारक और हिन्दुत्व को एक नया रूप देने वाले होते हुए भी क्रातिकारी हर्गिज नही थे। इसके विपरीत वे एक ऐसी नवीन आध्यात्मिक पूर्णता के शिक्षक थे जो अपने परिचित मार्ग मे अलग हो गई थी। एक राजनीतिज्ञ की हैसियत से उनकी स्थिति की असीम शक्ति इस सच्चाई मे छिपी थी कि वे भारतीय किसान की नजर मे पूरे सत थे। भारतवर्ष की जनता पूरी तरह से पश्चिमी-रग में डूबी काग्रेस के पीछे नही, उनके पीछे थी। यद्यपि काग्रेस के भीतर उनके बहुत-से बुद्धिमान् एव भक्त समर्थको के विषय मे यह सोचना बडा अन्यायपूर्ण होगा कि गाधीजी के नेतृत्व मे उनका व्यवहार बडा उद्धृत या अडियल था, क्योकि वे लोग भी उनके आध्यात्मिक महत्व और हिन्दुस्तानी जनता के प्रति उनके प्रभाव

को स्वीकार करते थे, फिर भी वहुसख्यक काग्रेसियो और उनके वीच के उद्देश्य और मूल्यो के मौलिक भेद पर जोर देना आवश्यक है।

अव दूसरा प्रश्न यह उठता है कि गाधीजी के उद्देश्य और मूल्य व्यावहारिक थे अथवा केवल काल्पनिक। एक उदाहरण, जिसको ट्वानवी ने अपनी पुस्तक 'स्टडी ऑव हिस्ट्री' (इतिहास का अध्ययन) मे "प्राचीनतावाद" की सज्ञा दी है—अतीत की ओर मुडने का वह असभव प्रयत्न, जिसका कि प्रभाव ट्वानवी के शब्दो मे और अधिक क्रातिकारी होता है। मुझे सदेह है कि कोई भारत-वासी पूर्ण विश्वास के साथ इस प्रश्न का उत्तर दे सकता है। निश्चय ही मेरे लिए भी इस विषय मे कुछ कहना वडा उपहासजनक होगा। फिर भी गाधीजी की अन्तिम स्थिति की नाप-तौल करने के विचार से यह प्रश्न इतना महत्त्वपूर्ण है कि कोई भी उसपर विचार किये विना नही रह सकता।

गान्धीजी देश को जिस रास्ते पर ले जाना चाहते थे, सवसे पहले उसके वारे मे हमे स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए। अपनी धार्मिक और आर्थिक स्थिति की वजह से पश्चिमी सभ्यता का त्याग करना उनके लिए अति आवश्यक था। ऐसा कहकर उनके विचारो की हँसी उडाना होगा कि यदि उनके हाथ मे सत्ता आ जाती तो वे हिन्दुस्तान से रेले खत्म करने और सूती मिलो को वन्द करने का निश्चय किये वैठे थे। यदि उनके सिद्धान्त का शाब्दिक अर्थ करे तो उससे साफ यही ध्वनि निकलती है। परन्तु सर्व प्रथम, उनके सिद्धान्त से यह प्रकट होता है कि उनके उद्देश्य की सीमा मे तो सत्ता प्राप्त करना भी नही आता। हिटलर या मुसोलनी के विपरीत तानाशाही ताकत हासिल करना उनके स्वभाव के विल्कुल विरुद्ध था, परन्तु उतना ही वेमेल उनके लिए नेहरूजी की वैधानिक राजनैतिक सत्ता भी थी। गाधीजी ने केवल विवेकपूर्ण मानव की शक्ति को पाने का प्रयत्न किया और पाई भी—सत, धार्मिक और आध्यात्मिक शिक्षक जो अपने उदाहरण और शिक्षा से लोगो को वही करना सिखाता है, जो उचित है। वे भौतिक सुखो की ओर दौडने को विल्कुल गलत समझते थे। मितव्ययता और आत्म-सयम को वे ठीक समझते थे और इसलिए उद्योगीकरण द्वारा हिन्दुस्तान के जीवन-स्तर को उठाने की समस्या के विचार को उन्होंने विल्कुल अस्वीकार कर दिया था। वे समान भाव से पूजीवाद, समाजवाद और साम्यवाद के विरोधी थे, क्योकि साध्य की आध्यात्मिक पुष्टि का उन्हे ऐसे सभी आर्थिक और राजनैतिक सगठनो मे अभाव दिखलाई पडता था, जिनका उद्देश्य केवल उत्पादन की वृद्धि और भौतिक वस्तुओ का उपभोग मात्र था।

ऐसा नहीं कि हिन्दुस्तान की जनता की भीषण गरीबी की उन्हें चिन्ता नहीं थी। वे यह मानते थे कि जल्दी-से-जल्दी उसके सुधार के लिए कोई व्यावहारिक कदम उठाना चाहिए। परन्तु यह बात बहुत महत्त्व की है कि गांधीजी की दृष्टि में इन्सान की जिन्दगी की वही अवस्था उचित और श्रेष्ठ है, जिसे पश्चिमी स्तर की नजर में घोर और भयंकर गरीबी का नाम दिया जाता है। इस प्रकार गांधीजी का व्यावहारिक उद्देश्य हिन्दुस्तान के किसान को विनाशकारी और असह्य गरीबी के चंगुल से निकाल कर एक सुन्दर, सुखदाई और पवित्र गरीबी की ओर ले जाना था। उनका यह विश्वास था कि प्राचीन काल में किसान की यही अवस्था थी, लेकिन उस उच्च पूर्व संतुलन को ब्रिटिश विजय ने और लंकाशायर के सूती माल ने नष्ट कर दिया था। इसलिए गांवों में कताई और बुनाई के पुनरुद्धार पर उन्होंने अधिक जोर दिया और इसे ही वे ग्राम के सर्वसाधारण की आर्थिक व्यवस्था के सुधार की प्रस्तावना मानते थे।

मुझे ऐसा लगता है कि एक पेशेवर अर्थशास्त्री के लिए, जोकि पूर्णतया विरोध का गुलाम नहीं हुआ है, चर्खा-आन्दोलन की व्यावहारिक बुद्धिमत्ता से इन्कार करना कठिन है। विशुद्ध आर्थिक दृष्टि से भी भारतवर्ष की सबसे आवश्यक समस्या किसान का साल में अधिक समय तक बेकार रहना है। जलवायु-सम्बंधी अवस्था और थोड़ी कृषि के कारण, जोकि औसतन तीन एकड़ तक होती है, उसे वर्ष में चार महीने तक बेकार रहना पड़ता है। इसलिए थोड़ी पूंजी से चलने वाले किसी उद्योग-धंधे की आज सबसे अधिक जरूरत है। चर्खे से सूत की कताई इस आवश्यकता की पूर्त्ति करती है। यद्यपि पैसे के विचार से मशीन द्वारा तैयार किये गए सूत से इसके सूत की कीमत ज्यादा पड़ती है, फिर भी कम काम पाने वाले किसान के लिए बेकार समय में अपने लिए कपड़े बना लेने के खयाल से इस तरीके के खिलाफ कोई आवाज नहीं उठाई जा सकती है। और इसी प्रकार 'इन्सानी घंटों' से तैयार हुई खद्दर और मशीन द्वारा तैयार कपड़े की लागत मूल्य की तुलना करना असंगत है। गांवों में लाखों मनुष्यों के घंटे योंही बरबाद जा रहे हैं। अतः सवाल यह है कि आज उस समय को कम-से-कम उत्पादक तो बनाया जाय।

इस दृष्टि से एक बाहरी आदमी के लिए चर्खे का आन्दोलन पूरी तरह से न्यायसंगत है और इसलिए यह उस प्राथमिकता का अधिकारी है जो गांधीजी ने उसे दी थी। परन्तु हमें इस प्रश्न का उत्तर देना है कि क्या यह एक अल्पसामयिक साधन है, अथवा इसे समाज का स्थायी आधार माना जा सकता है? यद्यपि 'हिन्द

स्वराज्य' के लेखो से यह प्रकट होता है कि गाधीजी ने हिन्दुस्तान के लिए हाथ के श्रम पर आधारित अर्थ-व्यवस्था की ओर पुन लौटने को एक आध्यात्मिक और नैतिक भलाई माना है, और इसीलिए मशीन और पाश्चात्य विज्ञान के बहिष्कार की बात वे सोच रहे थे, फिर भी यह कहना सदेहयुक्त है कि उन्होने इस प्रश्न पर पूरी तरह विचार किया या नही । उन्होने सिलाई की मशीन को अपने मशीन-अभियोग आन्दोलन मे अपवाद रूप माना था, शायद इसीलिए, क्योकि वह हाथ या पाव से सचालित होती है और शायद इसलिए भी कि इसका बनना अब अच्छी व्यवस्था के भीतर राष्ट्रीय कारखानो मे भी सभव हो सकेगा । इस उदाहरण से हम यह नतीजा निकाल सकते है कि गाधीजी शायद ऐसी मशीनो को स्वीकार कर लेते जोकि ग्राम अर्थ-व्यवस्था की विनाशक नही, बल्कि उसे मजबूत करने वाली साबित होती । अर्थात् उनका चालन विद्युत शक्ति से नही होना चाहिए और न उनसे मौजूदा अर्द्ध-बेकारी को और बढावा मिलना चाहिए । इस बात को सिद्धान्त में फैलाना उस समय तक बडी कठिन आर्थिक धारणा होगी जबतक कि कोई पूर्ण आत्म-निर्भर ग्राम-समुदाय को स्पष्ट भारतीय सभ्यता की सिद्धान्त रूप से एक अभिन्न और महत्त्वपूर्ण इकाई नही मान लेता । ऐसी जाति ही इस सिद्धान्त को सभवत मूर्त्त रूप दे सकती है, जो जीवित धार्मिक परम्पराओ में निहित नैतिक मूल्य को ही अपना निर्णायक मानती हो । भौतिक जीवन-स्तर को एक सीमा तक ही उठाने की इजाजत मिलनी चाहिए और तभी इससे कुछ अश मे एक मानवीय आनन्द प्राप्त हो सकता है । और तभी सर्वसामान्य में व्यापक रूप से उस उल्लास की प्रतिष्ठा हो सकती है, जिससे कि पाश्चात्य सभ्यता हमेशा के लिए अपना मुह मोड चुकी है । इस व्यवस्था मे भारत जैसे बडे-से-बडे देश तक को चाहे वह एक महाद्वीप के समान ही क्यो न हो, 'एक महान् शक्ति' बनने और उसी तरह की किसी ताकत मे उसे आगे नही बढने दिया जायगा । हा, आत्मिक शक्ति में वह किसी हद तक बढ सकता है ।

गाधीजी की भारतीय अर्थ-व्यवस्था की परिभाषा पूरी तरह से शातिवादी है । इस प्रकार गाधीजी का शातिवाद पश्चिमी सभ्यता मे विकसित होने वाले शातिवाद से सर्वथा भिन्न है, विशेष रूप से व्यक्तिगत अर्थ-व्यवस्था के पोषक के रूप में । गाधीजी का शातिवाद, भौतिक वस्तुओ के प्रति मोह नही रखता और इसलिए वह पश्चिमी शातिवाद की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली और सम्मानपूर्ण है। पश्चिमी शातिवाद भौतिक जीवन-स्तर को कायम रखने और ऊपर उठाने के पक्ष में है और जो भौतिक उद्देश्यो के मुकाबले में आध्यात्मिक उद्देश्यो के परिणाम

से दूर भागने की इच्छा रखता है।

इससे यह अर्थ नही निकलता कि गाधीजी का विचार पश्चिमी सभ्यता के सवध से अपरिचित है। उनके जीवन पर थॉरो और टाल्स्टाय का प्रभाव विशेष रूप से लक्षित है और इसे उन्होने सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया है। परतु ये सत पश्चिमी विचार की प्रधान धारा के प्रति कुछ सनकी होते हुए भी अनवरत युगव्यापी भारत की धार्मिक परपराओ से जुडे है। अमरीका और रूस के अरण्य से उठने वाली चीखे गाधीजी के भीतर जाकर व्यापक मानव-आत्मा की पुकार में वदल गई है। यह वात किसी प्रकार भी अविचारणीय या असभव नही है कि अपनी वहादुराना और प्रतीकात्मक मृत्यु के वाद गाधीजी आध्यात्मिक रूप मे पुनर्जीवित भारत की केन्द्रीय विभूति और आत्मिक प्रतीक वनेगे। उन्होने आध्यात्मिक सन्तोष की भावना से पूरित शातिपूर्ण ढग से व्यावसायिक सभ्यता के भौतिक मूल्यो के विरुद्ध अपनी आध्यात्मिक जीवन-प्रणाली को रखा। पश्चिम के एक निवासी के लिए इस सभावना की कल्पना कर सकना वडा कठिन है, हालाकि उसके नाममात्र के ईसाईयत के खयाल से यह विचार विल्कुल पराया नही है, परन्तु दुर्भाग्यवश पश्चिम का धर्म विल्कुल नाममात्र का रह गया है। वहुत दिनो से भौतिक उन्नति और भौतिक सकट पर से नियत्रण उठ-सा गया है और इसलिए आज यह एक का समर्थन और दूसरे की निन्दा करने लगा है। यत्र सभ्यता क्या सचमुच किसी धर्म के अनुरूप हो सकती है? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसे पूछने के लिए ईसाई सदस्यो तक मे एक उत्साह की आवश्यकता है और उसी प्रकार इसका उत्तर दे सकने के लिए एक दैवी विवेक की आवश्यकता है। यह एक ऐसा प्रश्न है जो वर्तमान समय के पूजीवाद और साम्यवाद तथा लोक-तत्रवाद और साम्यवाद के वीच की सभी प्रत्यक्ष और भयपूर्ण अर्थ-विपरीतताओ को स्पष्टत काट देता है। ये विरोधी अनुमान शैल्पिक सभ्यता में हमेशा मौजूद रहते है, जिसके दोनो छोरो पर यह मान लिया गया है कि शिल्प एक अच्छी और आवश्यक वस्तु है, जोकि लोगो को भौतिक लाभो का उपहार देने की क्षमता रखती है, जो लाभ स्वय-प्रमाण की तरह से व्यापक मानव-समाज के लिए सवसे अधिक कल्याणकारी है। इस प्रकार पश्चिमी राजनीतिज्ञो के लिए यह स्वत-सिद्ध है कि साम्यवाद के आक्रमण को सफलतापूर्वक पश्चिमी जगत के भौतिक स्तर को उस सीमा तक उठाकर ही रोका जा सकता है, जिस सीमा तक साम्यवाद के लिए पहुँचना व्यावहारिक दृष्टि से असभव हो। भौतिक उन्नति हो सके यह वात

सभव है। परन्तु यदि यह उन्नति हो भी गई तो क्या पश्चिमी मानवता इस जगल से वाहर जा सकेगी या उसमे और उलझेगी ? तव क्या शाति और सन्तोप की दृष्टि से यह पश्चिमी समाज अधिक योग्य हो सकेगा ?

इस विपय मे गाधीजी ने सीधा और स्पष्ट उत्तर दिया था। सैद्धान्तिक रूप से वुनियादी असन्तोप का शाति के साथ कोई मेल नही वैठता—कभी-कभी इसे "दैवी असन्तोप" के नाम से पुकारा जाता है और उसे शिल्प-विज्ञान के द्वारा अनुमान और प्रेरणा प्राप्त होती है, क्योकि शाति एक मन स्थिति, एक जीवन-प्रणाली है। व्यक्तिगत रूप से मानव के धार्मिक चुनाव पर अवलवित आध्यात्मिक वस्तुओ के मुकाविले मे भौतिक वस्तुओ के त्याग का ही रूप है---ऐसा त्याग जिसका कि आचरण उस व्यापक मानव-समुदाय द्वारा एक जीवित पारलौकिक और सर्वव्यापी धार्मिक परपरा के गुण के रूप मे होना चाहिए। मै यह नही जानता कि गाधीजी की वात ठीक थी या गलत। इससे भी कम कल्पना मै इस वात की कर सकता हूँ कि भारत उनका अनुकरण कर सकेगा या नही, परतु मुझे इसमें कोई सदेह नही कि जिस चुनौती को उन्होने पश्चिम के सामने रखा, वह नि सदेह एक महान् आत्मा की चुनौती थी जिसके भीतर भारत का आध्यात्मिक और धार्मिक विवेक एक नये अधिकार के साथ मुखरित हुआ था।

: १३ :

गांधीजी के काम और नसीहतें

हरमन ओल्ड

गाधीजी के चरित्र-लेखको के लिए कल्पना को तथ्य से और जनश्रुति को सत्य से अलग करना वडा कठिन होगा। अपने जीवन-काल ही मे गाधीजी के साथ एक पौराणिक हस्ती की कहानी जुड गई थी, वे एक प्रतिमा वन गए थे जिसके नाम की शपथ ली जा सकती है। एक आश्चर्यजनक शक्ति और ईश्वरी गुणो के प्रतीक का स्थान उन्हे मिल गया था। स्वय मैने कई वार उचित तर्क को पकडने के लिए अथवा नसीहत का सकेत करने के लिए, उनके नाम का स्मरण किया है—विशेपकर १९१४-१८ के युद्व के समय जवकि अपनेको मै एक शातिवादी कहता था। मेरा शातिवाद वाह्य तौर पर ईसा की शिक्षा या टाल्स्टाय द्वारा की

गई व्याख्या के अनुरूप प्रेरित हुआ था। 'बाह्य' शब्द का प्रयोग मैंने इसलिए किया है कि तबसे मैं यह मानने लगा हू कि महान् व्यक्ति अपने उपदेशो को देते नही है, लेकिन चेतना में छिपे खयालो और भावना को केवल उभारते है, जोकि शिष्यो के दिमाग में दबे पडे रहते हैं। बात ऐसी है या नही, परन्तु यह बात बिल्कुल सच है कि जब प्रथम महायुद्ध शुरू हुआ तो मैं स्वय सत्याग्रह और अहिसा के विचार का पोषक था और उस समय मैं गाधीजी को इस विश्वास का पोषक और पथ-प्रदर्शक मानता था, क्योंकि उनके उपदेश और कार्य मेरे विश्वास के अनुरूप थे, इसलिए मैंने उन्हें पूरी तरह से बिना सदेह या प्रश्न के स्वीकार कर लिया था।

तीस वर्ष के इस बीते हुए युग के दौरान मे मेरे दिमाग और आचरण में कुछ अनिवार्य परिवर्तन हुए है। मेरा विचार है, मैं अब कम कट्टर और ज्यादा सहिष्णु बन गया हू। किसी बुराई को आम मान लेने का मैं कम आदी हो गया हू और उन लोगो की सच्चाई को स्वीकार करने मे ज्यादा तैयार हो गया हू, जिन्हें पहले मैं गलत समझता था। पहले जब अग्रेजी पत्र समय-समय पर गाधीजी के कार्यो और भाषणो पर प्रकाश डालते थे तो मैं कभी-कभी उनके कामो की आलोचना करता था और उनके उपदेश को शका की दृष्टि से देखता था। उनके काम मुझे कुछ-कुछ चमत्कारपूर्ण और नसीहते बडी कठोर प्रतीत होती थी। अब मैंने यह बात आसानी से मान ली है कि परिस्थितियो के अपूर्ण ज्ञान के आधार पर निर्णय करना यदि असभव नही तो कठिन अवश्य था, और विशेषकर एक अग्रेज के लिए, जो कभी हिन्दुस्तान में न रहा हो और जो एक सामान्य अग्रेज से एक हिन्दुस्तानी के विषय में थोडा ही अधिक परिचित हो, हिन्दुस्तान के ससलो पर गाधीजी के योग का अदाज लगाना उसके लिए बडा कठिन है। मैं सचमुच इस बात का फैसला नही करना चाहता, फिर भी मुझे ऐसा लगता है कि गाधीजी के सदेश या पुकार के प्रति उस समय मेरा कम झुकाव था।

मैं गाधीजी के सच्चे स्वरूप को उस समय समझ सका जबकि सन् १९४५ में मैं हिन्दुस्तान गया और कुछ महीनो तक सभी स्थिति के लोगो से मिला और जगह-जगह सभाओ और भाषणो मे शरीक हुआ। यह कहना तो बेकार है कि वे एक अजीब हिन्दुस्तानी थे—गाधीजी के समान महापुरुष किसी देश और किसी समय के लिए विचित्र नही होते—वे अद्वितीय होते है। फिर भी वे पक्के हिन्दुस्तानी थे और उन्हे हिन्दुस्तान ही पैदा कर सकता था। यह बात कहना बिल्कुल

असगत होगा कि उनकी विशेष ताकत और असर यूरोप मे भी वैसे ही फैलते, जैसे कि हिन्दुस्तान मे, जहा अपने युगवर्ती प्राचीन इतिहास और परपरा के बावजूद आज भी अधिकाश निवासी अशिक्षित है और जहा का जीवन तत्त्वत सादा है। यद्यपि गाधीजी का अपना चरित्र बडा पेचीदा और सूक्ष्म था, परन्तु अपने लोगो के लिए दिया गया उनका उपदेश बडा सहल और सीधा होता था और वे इसे बिना किसी अस्पष्टता के प्रकट करते थे। इसमे कोई सदेह नही कि पश्चिमी सभ्यता की प्रगति बहुत अश तक भ्रष्टता और सशय की ओर हुई है और यह बात कहना व्यावहारिक नही है कि गाधीजी का सीधे-सादे शब्दो मे दिया गया सदेश उन देशो को अपने साथ वहा ले जा सकता था, जिनमे अधिकाश निवासी यूरोपीय है। सचमुच मै प्राय हिन्दुस्तान की शिक्षित नौजवान पीढी से मिला, विशेषकर ऐसे लोगो से जो उद्योग-धधो मे लगे है और जहा राजनैतिक सिद्धान्तो पर अधिक वाद-विवाद चलता है, वहा भी महात्माजी की शिक्षा के बारे मे मैने वही सशय पाया जैसा कि यूरोप के शिक्षित समाज के बीच पाने की मै आशा करता था। 'महात्मा' शब्द के बोलते समय ये नौजवान प्राय अपने ओठ सिकोड कर एक अजीब तिरस्कार-मिश्रित हँसी के साथ बात करते थे।

परन्तु आम लोगो को मैने गाधीजी का नाम बडी श्रद्धा और आदर के साथ लेते सुना है। हिन्दुस्तानियो मे श्रद्धा की भावना अग्रेजो से कही अधिक है। एक अग्रेज किसी व्यक्ति के प्रति साधारणतया श्रद्धा का भाव अपने मन में पैदा करना पसन्द नही करता, वह उस भाव को केवल ईश्वर और सतो के लिए ही सुरक्षित रखता है जबकि एक हिन्दुस्तानी हमेशा ऐसे व्यक्ति की तलाश में रहता है, जिसे वह अपनी श्रद्धा का पात्र बना सके। हिन्दुस्तानी किसी सदिग्ध सतपन के प्रतीक के ऊपर श्रद्धा की बौछार करने मे सकोच नही करेगा। यही क्यो, मै तो अनुशासन तक को प्रोत्साहन न देना ही पसन्द करता हू। ऐसे वातावरण मे जहा ये बाते सभव है, गाधीजी के लिए अपने लाखो देशवासियो के हृदय में पूजा की ज्योति जगा सकना कितना स्वाभाविक था। वे उनकी आकाक्षाओ के प्रतीक थे। हिन्दुस्तान की आवाज उन लाखो मूक हिन्दुस्तानियो की आवाज थी, जोकि यह मानने लगे थे कि अग्रेजी हुकूमत से आजादी पाने का अर्थ सचमुच आजादी है।

मै जब बबई मे था तो मुझे जनता की इस उमडती भावना का नजारा देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मेरे एक हिन्दुस्तानी मित्र, जो अपनेको गाधीजी का अनुयायी मानते थे, एक दिन मेरे पास आकर यह उत्तेजनापूर्ण खबर सुनाने

लगे कि गाधीजी बहुत जल्दी एक दिन के लिए बबई आने वाले है। उनकी बडी इच्छा थी कि मै ऐसे व्यक्ति के सामने आऊ, जिन्हे वे इतनी श्रद्धा करते थे और साथ ही यह वादा किया कि वे उनके साथ मेरी भेट का भी इतजाम कर देंगे। मेरे मित्र भी बडे मृदु स्वभाव के व्यक्ति थे। इनमे मेरा काफी स्नेह था। अत मै ऐसे मौके के प्रति कम उत्साह दिखा कर उन्हे घबराना नही चाहता था, परन्तु फिर भी लाचारी में मुझे कहना पडा कि मेरे लिए यह आखिरी चीज होगी कि मै अपनी उपस्थिति एक ऐसे व्यक्ति पर लादू जो हमेशा विभिन्न लोगो से घिरा रहता है, और निस्सदेह जिनपर बहुत-से लोग मुझसे अधिक दावा रखते है। मै दूर से ही उनकी प्रशसा करने मे सन्तोष मान लूगा। लेकिन मेरे मित्र अपने मनमे तय कर चुके थे, और कुछ दिन के बाद मैने सुना कि महात्माजी मुझसे मिल सकेंगे, यदि मै पेटिटहाल में जाकर प्रार्थना-सभा मे शामिल हो सकू, जहा वे ठहरे हुए थे। उस विशाल भवन के सामने पहुचने पर मैने उस इलाके मे फैले हुए उत्सुक वातावरण का अनुभव किया। पेटिट-हाल की ओर जाने वाली मोटरो के सिवा मैने बहुत कम लोगो को उस सडक पर चलते हुए देखा, जिसके दोनो ओर सावधान स्काउट खडे थे। उस बडे हाल में मुझे कुछ ऐसे लोग दिखलाई दिये, जो सिर्फ हिन्दुस्तान मे ही मिल सकते है—बडी आखें, चिकने चेहरे, स्वप्नदर्शी प्राणी, सफेद लम्बे कपडे पहने, जोकि उनकी काली सूरतो पर काफी फबते थे। इन लोगो ने मुझे बताया कि महात्माजी शीघ्र बाहर आ रहे है, परन्तु उन्होने मेरा नाम अदर भेज दिया।

मै जैसे ही उनकी बैठक से मिले कमरे में पहुचा, मुझे बडा धक्का लगा, क्योकि वहा मेरे मित्र जूते उतारने के लिए किसीसे कानाफूसी कर रहे थे। अब-तक मै बहुत बार मसजिद मे घुमते समय जूते उतार लेता था, लेकिन यह मुझे अजीब नही लगता था, क्योकि मसजिद खुदा का घर होता है। परन्तु मेरे जैसे ही एक दूसरे इन्सान के सामने जो चाहे जितनी श्रद्धा का ही पात्र क्यो न हो, जूते उतारने के सवाल पर मेरे मन में विद्रोह-सा उठा। सौभाग्य से इसी समय कुछ स्त्री-पुरुषो के साथ आते हुए महात्माजी दिखलाई दिये और इस तरह मै फैसले के निर्णय से बच गया। सपूर्ण वातावरण श्रद्धा की स्पष्ट भावना से भर गया था। आवाजें खामोश हो गई थी। सभी की आखें गाधीजी की ओर उठी। उनके साथ उनकी पत्नी और एक लडकी थी और इन दोनो के कधो का सहारा लिये हुए वे चल रहे थे। उनसे मेरा परिचय कराने से पूर्व मेरे मित्र उनके सामने लेट गये और उन

के चरणो को छुआ—मुझे यह काम वडा अरुचिकर लगा। जव गाधीजी ने मेरा नाम सुना तो उन्होने मेरे नमस्कार का नमस्कार से उत्तर दिया, जैसा कि उनकी आदत पड गई थी। और तव उन्होने मुस्कराते हुए मुझसे यूरोपीय ढग से हाथ मिलाया, लेकिन कहा कुछ नही। इस समय तक हम लोग एक जुलूस की शक्ल मे दरवाजे की ओर वढ रहे थे, गाधीजी अभी भी उस नौजवान लडकी का सहारा लिये हुए थे और उनके पीछे सफेद साडिया पहने स्त्रियो की एक कतार और प्रतीक्षा करने वाले पुरुष चले आ रहे थे।

ज्योही हम नीचे पहुचे, दोनो ओर खडे स्काउटो ने अभिवादन किया। इस समय तक हमारी तादाद काफी वढ गई थी और अव मैने अपनेको ५०-६० व्यक्तियो के जुलूस के आगे पाया। महात्माजी ने मुझे अपने निकट रहने का सकेत किया और मेरी तरफ मुडते हुए अपने दोनो ओठो को वन्द कर अपनी अगुली से उन्हे थपथपाया। श्रीमती गाधी ने कहा, "इसका मतलव यह है कि आज मौन है।" ओर मेरे मित्र ने जो उनके पीछे-पीछे चल रहे थे, आदरपूर्वक कहा, "यद्यपि गाधीजी आज नही वोल सकते, पर आप उनसे वात कर सकेगे।" मै यह मानने को तैयार हू कि इस स्थिति ने मुझे थोडी देर के लिए परेशानी मे डाल दिया। यदि मै गाधीजी के या किसीके साथ अकेला होता तो मै वात करने के लिए शायद इस आशा से लालायित भी हो उठता कि उनकी आखो में मै अपनी वातचीत की प्रतिक्रिया पढ सकूगा, लेकिन एक सार्वजनिक स्थान पर चलते हुए, जहा पुलिस-मैन भीड को दूर रखने की कोशिश कर रहे हो, जहा स्काउट सलामी की हालत में खडे हो, मैने अपनेको वात करने के लिए विल्कुल अयोग्य अनुभव किया। मैने तय किया कि मेरे समय का गाधीजी को निकट से देखने में अच्छा उपयोग होगा। गाधीजी का इन दिनो वडा अच्छा स्वास्थ्य था। दो महिलाओ का सहारा लिए हुए भी वे विलकुल सीधे चल रहे थे। उनका शरीर कसा हुआ और पुष्ट था और उनकी लम्वी पतली टागे उनके शरीर को तेज कदमो पर चलने के लिए पर्याप्त मजवूत थी। वे धोती और शाल लपेटे थे। पैरो मे जूते नही थे। उनका खुला हुआ शरीर पालिश लगे तावे की तरह चमक रहा था और उनका चमकदार सिर घुटा हुआ था। यद्यपि वे वोल नही रहे थे, फिर भी उनकी छोटी पैनी आखे वरावर लोगो को मुग्ध करने, खुश करने, शात रहने, चेतावनी देने—परन्तु जैसा मुझे लगा मुग्ध करने मे—मशगूल थी।

हम उस भवन के लॉन के नजदीक पहुचे, जहा प्रार्थना-सभा होने

वाली थी। इस समय तक काफी भीड इकट्ठी हो चुकी थी। और वहा स्काउट और पुलिस के गारद को नजदीक आकर लाइन बनानी पडी। घर के पीछे एक मच तैयार किया गया था, जिसके सामने एक हरा मैदान समुद्र तक फैला था। मच पर कुछ सोफे सफेद कपडे मे ढके रखे थे और एक वर्गाकार गद्दी पर गाधीजी पलथी मारे बैठे थे। उनके पीछे मसनदो का एक ढेर था, हालाकि जिनका सहारा वे नही ले रहे थे। वे वहा सरस्वती की एक पुरानी प्रतिमा के समान बैठे थे। उनकी आखें बन्द और शात थी—जो मच के ऊपर से नीचे घास पर बैठे सैकडो-हजारो स्त्री-पुरुषो को आलोकित कर रही थी।

एक भजन-गान मे प्रार्थना शुरू हुई। इस गाने में पीडा भरी थी, जो हिन्दुस्तान के पवित्र गीतो की अपनी विशेषता है। सर्वप्रथम कुछ गीत या भजन गाए गए और बाद में एक नेता ने 'राम धुनि' चलाई, जिसे सभी उपस्थित लोगो ने दुहराया। लाउड स्पीकर वहा थे, पर उनका इस्तेमाल नही किया जा रहा था। मच के पास एक दरी बिछी थी जिसपर बैठने के लिए मुझे आमत्रित किया गया, लेकिन मैं बराबर मच की उस स्थिर प्रतिमा को खडा-खडा ही देखता रहा, जिसके बैठने के ढग से मैं बडा प्रभावित हो रहा था। उनका दबा हुआ नीचे का होठ निश्चय का सूचक था। मेरे चारो ओर एक भाव-विह्वल भीड जमा थी। सवाददाता, फोटोग्राफर और यहातक कि चलचित्र वाले फोटोग्राफर भी चारो ओर खडे थे। मिठाई और फूलो को बेचने वाले भी वहा मौजूद थे। खूखार आखोवाली एक स्त्री एक बर्तन लिये जा रही थी, जिसमें कुछ खाने की चीजे मिली थी। उसमे से एक मुट्ठी भरकर प्रसाद उसने मुझे दिया। मेरे पास खडे एक पत्रकार ने मुझसे उसे न खाने को कहा। इसलिए बडी चालाकी से मैंने वह चिकना पदार्थ अपनी अँगुलियो के बीच से गिर जाने दिया। प्रार्थना खत्म हुई। हस्ताक्षर लेने वालो की भीड ने महात्माजी को घेर लिया। जिन्हे उनके हस्ताक्षर पा सकने का सौभाग्य मिला, उन्होंने पाच-पाच रुपये हरिजन फड मे दिये। सवाददाताओ ने मुझे भी घेर लिया और मुझसे भेट देने के लिए अनुरोध किया। महात्मा गाधी के बारे में मेरी क्या राय है? उन्हें निराश लौटना पडा। लेकिन मैंने उनसे और दूसरे लोगो से ऐसी-ऐसी छोटी-छोटी कहानिया गान्धीजी के विषय मे सुनी, जोकि इस श्रद्धा को प्रकट करने के लिए पर्याप्त थी, जिसके कि भागीदार मेरे वे नत मित्र और वहा इकट्ठी हुई जनता थी। एक उत्सुक नौजवान ने वही खडे होकर घोषणा की कि मानो खोज का यह काम उसी ने किया हो कि गाधीजी एक लोकतत्रवादी, एक कुलीनवादी, धनिको के आदमी

थे—प्रजातन्त्रवादी जैसाकि उनके 'हस्ताक्षर' करने से प्रकट होता है, कुलीनवादी, क्योकि वे सचमुच कुलीन थे, और धनिको के इसलिए कि उन्होने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए लखपतियो का उपयोग किया है।

इस घटना के प्रकाश में, जो स्वय मेरी रुचि के अधिक अनुकूल नही थी, मैंने गाधीजी के बारे मे एक स्पष्ट जानकारी हासिल की। उनके बारे मे कुछ बातो को, कुछ तरीको को, उनके उद्देश्यो को मैंने हमेशा ज्यो-का-त्यो माना है। हिन्दुस्तान के लिए उनका प्रेम, अग्रेजी हुकूमत से भारत की आजादी की अनिवार्यता के प्रति उनका विश्वास, अहिसा की नीति मे उनकी अडिग आस्था, सविनय-अवज्ञा के लिए उनका सच्चा समर्थन—कोई भी व्यक्ति इनमे से एक या सभी मान्यताओ की बुद्धिमानी पर सदेह कर सकता है। परन्तु मुझे इस उत्साह के प्रति गाधीजी की सच्चाई पर कभी सदेह नही हुआ। मेरे मन मे उनके इन तरीको के प्रति सदेह पैदा हुआ था जिनकी सहायता से वे अपने उद्देश्यो को आगे बढाना चाहते थे। सविनय-अवज्ञा कार्य की एक पद्धति थी, क्योकि १९१४-१८ के युद्ध मे मै लडाई का एक विरोधी था और इसलिए अनिवार्य सैनिक भर्ती सबधी कानूनो को पालन करने से मैंने इन्कार कर दिया था परतु ऐसा करने मे मैंने अपने सिवा और किसी को शामिल नही किया था और मेरी इस अवज्ञा का नतीजा भी केवल मुझे ही भोगना पडा था जबकि गान्धीजी ने केवल खुद इन्कार नही किया था, लेकिन हजारो लोगो की इन्कार के वे कारण थे। जब प्रतिरोध न करने वाले हजारो स्त्री-पुरुषो पर जिन्हें कष्ट सहन करते हुए भी अग्रेजी हुकूमत को परेशान करने की प्रेरणा गाधीजी मे मिली थी, लाठी चलाने के समाचार मैंने पढे, तो इन सीधे-सादे लोगो के साहस के प्रति मेरी प्रशसा की कोई सीमा न रही, परन्तु मुझे इस बात के कारण बनने के पाप से गाधीजी को मुक्त करना कठिन लगा।

इस प्रकार अहिसा के सिद्धान्त की उनकी व्याख्या मुझे दोषपूर्ण लगी। सरकार के व्यवहार के विरुद्ध यदि आवश्यक हो, तो 'आमरण अनशन' की बात अथवा झगडालू जातियो मे शर्म पैदा करना बडे साहस और दृढता का काम है, परन्तु तत्त्वत यह हिंसात्मक काम है—एक ऐसी धमकी, जिसे परिणाम के आधार पर न्यायसगत नही माना जा सकता, क्योकि इसका उस अपराध मे कोई सबध नही रहता, जिसके विरुद्ध इसे अमल मे लाया जाता है। यह एक ऐसा कार्य है जो न्याययुक्त और अन्याययुक्त दोनो उद्देश्यो में समान प्रभाव रखता है।

लेकिन गाधीजी को सचमुच इन उपायो में विश्वास था, और जहातक किसी

को पता है, उनके व्यवहार से उन्हें कोई पछतावा नही होता था। उनके लिए अधिक महत्वपूर्ण बात उन उपायो को ज्यादा प्रभावशाली बनाना था और हिन्दुस्तान निवास के मेरे थोडे दिनो में, विशेषकर जब स्वय मैंने अपनी आखो से देखा, कि वे किस तरह उसका अनुसरण करते है, तो मैं यह मानने लगा कि महात्माजी किस कुशलता और समझ के साथ अपने लोगो पर प्रभाव पडने की योग्यता के अनुरूप काम करते थे और उस दिशा की ओर लोगो को ले जाने में उस रास्ते का जिसे वे उचित समझते थे, ईमानदारी के साथ पालन करते थे। अपनेको सत कहे जाने के खिलाफ उनका विरोध इसलिए था कि क्योंकि उन्हें सत अपने इसी असीम प्रभाव के कारण माना जाता था। इस उप-महाद्वीप के लाखो लोगो की सादा जिन्दगी से अपनेको मिलाते हुए वे स्वय बहुत सादगी से रहते थे। उनका त्याग या सन्यास उनके सतपन का एक गुण था, जिसके साथ उनके धार्मिक विश्वासो का मेल था और आवश्यकता पडने पर आमरण उपवास की उनकी तैयारी निर्धारित बलिदान की एक शक्ल थी, जिससे लोगो के हृदय में उनके प्रति एक श्रद्धा-मिश्रित प्रेम पैदा होता था।

: १४ :

अंतिम दिन

विण्सेन्ट शियन

किसी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा डा राधाकृष्णन् यह बात अधिक अच्छी तरह जानते है कि महात्मा गाधी के अद्भुत दृष्टि विषयक कार्यो को देखकर पश्चिमी दिमाग में महात्माजी के प्रति विचारो के चढाव-उतार की प्रतिक्रिया किस तरह की होगी। इस प्रकार जिन ऐतिहासिक और आध्यात्मिक बातो ने गाधीजी का निर्माण किया है, उन बातो से अधिकाश पश्चिमी लोग अपरिचित है। इस कारण उनकी असलियत का सार-तत्त्व बहुत अश तक गलत समझा जाता है, या उसके गलत समझे जाने की सभावना है और युगव्यापी भारतीय चेतना की विशेषताओ से मुक्त इस विषय के अनुभव का क्षेत्र इतना व्यापक है कि ज्ञान के क्षेत्र के समान ही, बोध और प्रयोगात्मक रूप में ज्ञात-अज्ञात पश्चिम-निवासी की बडी असुविधाजनक स्थिति है। गाधीजी हमारी (पश्चिम) सीमा से आगे बढ गए और हमारे मूल्यो को पार कर गए। मुझे यह भी लगता है—और इसके निर्णय

के भी योग्य अधिकारी प्रो राधाकृष्णन् ही है—कि उन्होने हिन्दुस्तानी वर्गों और मूल्यो के प्रति भी वैसा ही किया। इस प्रकार वे क्या थे, क्या किया और हमें क्या सिखाया, इसपर विचार करने के लिए हम सबको अपने सामान्य घेरे से, अपने छोटे-वडे जेलो से, एक ऐसी ऊचाई तक ऊपर उठना होगा, जहा पहुचकर विश्व मे निस्स्वार्थ पवित्रता के विषय मे एक शक्ति के रूप मे सोचने का मौका मिले—ऐसा नही कि उसे जीवन से वाहर खीचा गया है, वल्कि गहराई और व्यापकता से वह जीवन पर प्रभाव डालने वाली है।

सन् १९४७ के अत मे मुझे कोई पूर्व चेतना हिन्दुस्तान मे खीच लाई। मै यहा पहले भी वहुत आराम के साथ रह चुका था और यह भी तय था कि एक दिन मै हिन्दुस्तान मे पुन यह सीखने जाऊगा कि वहा आखिर है क्या ? पहले कराची पहुचकर मै वहा कुछ दिन ठहरा और जब मुझे मालूम हुआ कि गाधीजी शीघ्र ही मुसलमानो की रक्षा के विचार से दिल्ली मे आमरण उपवास शुरू करने वाले है तो मैने दिल्ली पहुचने की जल्दी की। यह उपवास १३ जनवरी १९४७ के दिन शुरू हुआ। मै नई दिल्ली १४ जनवरी को पहुचकर उपवास की प्रगति को देखने लगा। गाधीजी की इस उम्र मे उपवास की वात वडी चिन्ता-जनक थी, लेकिन यह भी निश्चित मालूम पडता था कि उपवास को तुडवाने के सब सभव उपाय किये जायगे। उपवास के प्रारम्भ मे उन्होने कोई शर्त नही रखी थी—हमेशा की तरह यह एक प्रार्थना और प्रायश्चित की शक्ल मे आरभ हुआ था। शर्ते आने वाले शनिवार (१८ जनवरी) के दिन वताई गई। इस दिन प्रत्येक सगठन और श्रेणी के ३० हिन्दू नेता गाधीजी से आकर मिले। इसमे कुछ अन्य सगठनो के नेता भी शामिल थे। इन लोगो ने गाधीजी से यह पूछा कि उनकी कौन वात उनके अच्छे इरादे के प्रति गाधीजी को भरोसा दिला सकेगी। उस समय गांधीजी ने सात शर्तो का नाम लिया, जिसमे दिल्ली मे रहने वाले मुसलमानो की जिन्दगी की रक्षा और पूजाकर सकने की वात भी शामिल थी। इन सभी शर्तो को पूरा करने की इन ३० नेताओ ने शपथ खाई और इस प्रकार रविवार को दोपहर के दिन गाधीजी ने अपना उपवास तोड दिया।

मै इस वीच वरावर पढता रहा और प्रतीक्षा करता रहा। मै किसी भी प्रकार के निर्णयात्मक अनुभव के लिए पहले से ही तैयार था। मेरी चेतना मे अन्य वहुत-से लोगो के समान वर्षो से गाधीजी विद्युत शक्ति के सदृश मौजूद थे। मुझे ऐसा लगता है कि अपने आध्यात्म वल के आन्दोलन में उन्होने १५ अगस्त के दिन

प्रवेश किया था, जबकि प्रथम बार हिन्दुस्तानियो के हाथ में सत्ता हस्तान्तरित की गई थी और उन्होंने वह दिन मौन प्रार्थना, चिन्तन और चर्खा कातने में बिताया था। मेरे दिमाग में पहले प्रश्न यह था कि आखिर यह आन्दोलन कितने दिन तक चलेगा। कलकत्ते में मैं उन दिनो था और तब इसकी सफलता की मुझे काफी आशा थी। उनके जीवन के संपूर्ण नाटक के विकास के प्रत्येक अणु और प्रत्येक तर्क में यह बात निहित थी। इस विचार को वहा पहुचने के बाद मैंने न तो न्यूयार्क में और न दिल्ली में अपने दोस्तो से छिपाया। ये बाते मैं इसलिए कह रहा हू कि जिस तरह उनसे मेरी पहली बातचीत में ही मुझे ऐसा लगा कि वह आखिरी है—यह आत्मानुभूति मेरे लिए बडी गहरी थी। मैं बिडला-भवन की प्रार्थना में उपवास समाप्त होने के बाद गया, लेकिन गाधीजी से मिलने और उन्हें देखने की उस समय तक कोशिश नही की जबतक कि श्री नेहरूजी ने मुझसे यह न कहा कि गाधीजी अब बात करने के बिल्कुल काबिल है।

जब मैं बिडला-भवन के उद्यान-स्थल में गया तो मुझे अन्दर से ऐसा लगा कि गाधीजी के साथ बात करने का यह मेरा आखिरी मौका है। वर्षो से मैं वर्धा जाना चाहता था, लेकिन अबतक इसका कोई अवसर नही आया था और यहा गाधीजी बहुत व्यस्त थे। साथ-ही-साथ १५ अगस्त के दिन होने वाली घटनाओ से वे बहुत दु खी थे। इस समय तमाम तामसी वृत्तिया इकट्ठी हो रही थीं। ऐसी दशा में अस्थायी बातो के विषय में पूछने की मेरी बिल्कुल इच्छा न थी, फिर वे बातें चाहे कितनी ही महत्वपूर्ण क्यो न हो। मैं हिन्दुस्तान या किसी दूसरे मुल्क के बारे में समय या स्थान के बारे में बात नही करना चाहता था। इस दुनिया की पच्चीस वर्षो की चिन्ता मुझे पुराने सवाल पूछने के लिए यहा लाई थी सत्य क्या है? कर्म क्या है? कर्म का फल क्या होता है? क्या कोई युद्ध सच्चाई के लिए होता है? एक अच्छी लडाई का भयकर परिणाम कैसे निकल सकता है?

जिस ढाचे में ये प्रश्न असाधारण तरीके से ठीक उतरते थे, वह पुस्तक एक दिन अचानक मेरे हाथ कुछ दिन पहले एक पुस्तक की दुकान पर पड गई थी। यह पुस्तक गाधी-गीता—(दी वे ऑव सेल्फ-लैसनेस) थी गाधीजी की इस पुस्तक का अनुवाद 'अनासक्ति योग' के नाम से महादेव देसाई ने गुजराती से किया था। इस पुस्तक में इन्ही विषयो की चर्चा की गई थी। गाधीजी को यह पता लग गया था कि मैं बहुत ही गम्भीर हू और उनके उत्तर मेरे लिए किसी दूसरे के उत्तरो से अधिक मूल्य रखते है। बहुत दिनो बाद तक बातचीत के दौरान में मैंने

उन्हे यह नही वताया कि यही प्रश्न हिटलर के विरुद्ध हमारे युद्ध और उसके नतीजे से सवध रखते है। वास्तव मे उनके दिमाग मे उस समय कोई दूसरा सघर्ष चल रहा होगा, फिर भी उन्होने उसे कुरुक्षेत्र के युद्ध तक ही सीमित रखा था। इस वातचीत मे वे किसी वातचीत की अपेक्षा जिसका पूर्ण अहिसा मे मै कोई उल्लेख पा सकू, साधन और साध्य की एकता और त्याग के आग्रह पर ज्यादा दूर तक चले गए थे। अव मै यह महसूस करता हू कि वे मेरी आवश्यकता को समझ सके थे और इसलिए मेरी मदद करना चाहते थे। एक वार उन्होने 'ईशोपनिपद्' की एक कापी मगवाई, लेकिन वह सस्कृत मे आई। उन्होने मुझसे कहा, "यदि आपको अग्रेजी की कोई प्रति न मिले तो अगले दिन मै मगवा दूगा।" इसके वाद उन्होने ईशोपनिपद् का प्रथम श्लोक पढकर सुनाया और उसकी अपने शव्दो मे व्याख्या की "दुनिया को छोड दो और पुन ईश्वर को देन के रूप मे उसे प्राप्त करो।" इसमे दार्शनिक दिलचस्पी की भी कुछ वाते थी। उन्होने 'माया' शव्द का 'भ्रम' अनुवाद करने की इजाजत नही देनी चाही। हमने 'दृश्य रूप' पर समझौता किया। अणु-शक्ति, विद्युत-चुम्वक—विस्तार एव आनुसगिक सभी दृश्य और इस ब्रह्माण्ड की सभावित लय आदि विपयो तक को उन्होने वडी शाति के साथ देखा। तव मुझे इतना नही मालूम था जितना अव है कि ये सभी विषय कितनी स्पष्टता के साथ उपनिषद् मे वर्णित है। उस वातचीत के दौरान में, जिसका कि मैने नही के वरावर सकेत किया है, उन्होने मुझसे कहा कि मै विडला-भवन मे रोज उनके पास आ सकता हू और शाम की प्रार्थना के वाद वे मुझसे रोज मिला करेगे। उन्होने यह भी कहा कि यदि मै चाहू तो स्वय उस भवन में आकर ठहर सकता हू। अत में यह भी कहा कि वे कुछ दिन मे वर्धा जा रहे है, जहा मै उनके साथ चल सकता हू और वहा भी अपने प्रश्नो को जारी रख सकता हू।

मेरे दूसरे दिन के प्रश्न सत्य और अहिसा के सघर्ष की सभावना मे सवधित थे, जिसे उन्होने मानने से इन्कार कर दिया था। इसके वाद मै वाहर जा रहा था, इसलिए दूसरे दिन भी उन्होने मुझसे उसी विपय पर चर्चा जारी रखने को कहा। इसपर मैने महात्माजी से प० नेहरू के साथ अपने अमृतसर जाने की वात कही। उन्होने अपने दोनो हाथो को जोडकर कहा, "जाइये! जाइये!" ये थे उनके आखिरी शव्द जो मैने उनके मुह से निकलते सुने थे, क्योकि अमृतसर से दो दिन के वाद लौटने पर ३० जनवरी आ गई थी। मैने उस दिन के लिए सत्य-अहिसा के विवाद को वही खत्म करने की वात तय की थी, (विपय विशेपकर दूध पीने की

शपथ मे सबध रखता था)। और कोई नया विषय उस दिन लेने का विचार था—'दी किंगडम ऑव गॉड इज़ विदिन यू' (ईश्वरी राज्य तुम्हारे भीतर ही है) इस रचना ने कुछ दिन पहले गाधीजी को बहुत प्रभावित किया था। मैंने उनसे पूछा कि 'सर-मन ऑन दी माऊट' (गिरि-प्रवचन) उनको कैसा लगा? एक लम्बी जिन्दगी के आखिर मे इससे बहुत प्रभावित होकर सामाजिक सबध के क्षेत्र में टाल्स्टाय ने इसे अपना मार्ग-दर्शक बनाया था। उस दिन प्रार्थना-सभा मे पहुचने में उन्हें बारह मिनट की देर हो गई थी। मुझे बाद मे मालूम हुआ कि उस दिन दोपहर के बाद का समय उन्होने भारत का नया सविधान पढने में लगाया। अन्य गभीर विषय भी साथ-साथ चलते रहे। सूर्यास्त के बाद ठीक ५-१२ पर वे प्रार्थना-स्थान के लिए चले। बगीचे के एक छोर पर स्थित प्रार्थना-स्थल की सीढियो के ऊपर वे जैसे ही पहुचे, वैसे ही मैंने तीन धीमे विस्फोट सुने। मै कुछ ही गज की दूरी पर था, लेकिन गाधीजी और मेरे बीच कुछ लोग खडे थे, इसलिए मै उन्हे देख नही पा रहा था। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन विस्फोटो की आवाज ने कितना घबडाने वाला असर पैदा कर दिया था, क्योकि मुझे यह आशका पहले ही थी कि एक-न-एक दिन यह होने ही वाला है। यह हो सकता है कि थोडी देर के लिए मरी चेतना खो गई हो। ऐसा लगा कि कोई असाधारण बात हो गई है क्योकि मैंने लोगो को उन्हें ले जाते हुए अथवा कोई दूसरी महत्वपूर्ण बात नही देखी। इस बात का वर्णन मैं केवल एक ही तरह से कर सकता हू—यानी यह सब भूचाल के समान हो गया, जिसमे देखा कम जाता है, अनुभव ज्यादा होता है। उस बगीचे मे मै डेढ घटे तक रहा। इसके बाद मेरे एक मित्र और साथी आकर मुझे ले गये, लेकिन इसके सिवाय मुझे उस समय की कोई बात याद नही कि मेरे दिमाग में कुछ अजीब-सा तूफान चल रहा था।

इसके बाद मै यमुना-तट पर गीता सुनने के लिए रोज जाने लगा और फिर १२ फरवरी को बिडला-भवन में उनके फूलो के सामने होने वाली प्रार्थना मे गया। बाद में इलाहाबाद-सगम को जाने वाली स्पेशल ट्रेन तक भी मै गया था। इसके बाद मेरा यह काम हो गया था—जैसाकि आज भी है—कि मै उनकी बातो को समझने की कोशिश करू, जोकि उन्होने समय-समय पर मुझसे कही थी। बाह्य परिस्थितियो के सामजस्य का क्या अर्थ हो सकता है और उनके द्वारा दिये गए छोटे-छोटे सबको के विस्तार के क्या मानी हो सकते है?

इस बात का प्रमाण मै तब दे सकूगा, जब मै यह सब व्यवस्थित कर लूगा,

और तब यहा बतलाने की अपेक्षा उस समय यह ज्यादा व्यापक और विस्तृत होगी। एक बात बिल्कुल तय है और पहले कुछ क्षणो मे बिल्कुल सत्य थी कि गाधीजी कभी भी किसी भी अवस्था मे किसी बात से डरे नही। मुझे विश्वास है कि जीवन मे वे भयभीत कभी नही हुए। प्राय उन्हे दुर्जेय कहा जाता है, पर मै अभेद्य कहना अधिक पसद करूगा। कोई ऐसा कोना या रास्ता नही था, जहा से उनपर हमला किया जा सके, धावा बोला जा सके या गहरी चोट पहुचाई जा सके—जीत लेना तो दूर की बात थी। (शरीर की चर्चा यहा असगत है—उन्होने मुझसे कहा था कि वास्तव मे यह एक "बन्दीगृह" है।) अपनी पहली बातचीत के दौरान मे जब हम एक नीली दरी के ऊपर टहलते हुए बात करते जा रहे थे, उन्होने मुझसे एक बात को स्पष्ट रूप से समझने के लिए कहा था।

उन्होने कहा, "मै बीमार हू। मै अच्छे-से-अच्छे डाक्टर को बुलाता हू। मुझे बुखार है। वे सल्फा-द्रव्य का इजेक्शन देकर मेरे जीवन की रक्षा करते है। इससे कोई बात साबित नही होती। ऐसा हो सकता है कि मेरी जिन्दगी का न रहना ही इन्सानियत के हक मे ज्यादा अच्छा हो। अब बात स्पष्ट हुई ? अगर अब भी बिल्कुल स्पष्ट नही तो मै फिर बता दू।"

मैने कहा, "मुझे विश्वास है कि मै समझ गया हू।" इसके बाद हम गीता की चर्चा करने लगे और उन्होने फिर उस विषय को नही दुहराया। लेकिन मेरे लिए हर तरह से वे जो कुछ कहना चाहते थे, स्पष्ट था।

यह अभेद्य निर्भीकता स्वय गीता, उपनिषद् एव अन्य प्रभावो पर अवलबित है ('गिरि-प्रवचन' का भी प्रभाव इसमे शामिल है) और शायद यह उनके आचरण मे आरभ से ही हो, फिर भी उनके उपदेश के अनुसार इसका विकास जीवन-व्यापी अनवरत प्रयत्न से हुआ था। उनकी प्रकाशित रचनाओ में बहुत दूर तक इस गुण का बढता हुआ प्रभाव मुझे दिखलाई पडता है। कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि प्रत्येक व्यक्ति के हृदय मे है, और साध्य साधन को एक-दूसरे से अलग नही किया जा सकता है। उन्होने यह भी बडे विश्वास के साथ कहा था कि यदि एक बार सभी विद्वान गीता-सबधी उनकी व्याख्या को गलत करार दे दे तो भी वे उसमें सदा विश्वास रखेंगे। इन वक्तव्यो की पूर्ण पवित्रता, निर्भीकता और आत्म-त्याग ने पहली ही चर्चा मे मुझे इतना हिला दिया था कि उस अधेरे उद्यान मे बडी मुश्किल से मैं अपना रास्ता खोज सका। उस समय न तो मैने ईसा पर, न बुद्ध पर कोई विचार किया था। मुझे यह भी लगता है कि स्वय गाधीजी ने भी उस समय उसपर

विचार नही किया था। उस समय वे अपने व्यक्तित्व की गहराई मे बोल रहे थे। अपने जीवन में मैंने ऐसा कोई व्यक्ति नही देखा, जिसके विषय मे यह कहा जा सके। मेरे द्वारा रखे हुए विषयो पर विचार करते समय वे समस्त बाह्य अस्तित्व के बोध से परे हो गए थे—ऐसे विषय जो अन्ततोगत्वा उनके निजी जीवन की आकाक्षाओ का निचोड थे।

उनके द्वारा की गई गीता की व्याख्या यद्यपि महादेव देसाई ने जीवित रखी और उसे विस्तार भी दिया, फिर भी मेरा ख्याल है कि विद्वानो द्वारा उसका अधिक समर्थन नही हुआ है। श्री अरविन्द घोष भी यह बात स्वीकार नही करते थे कि कुरुक्षेत्र व्यक्ति के हृदय के भीतर है। गीता पर लिखे गए निबन्धो मे उन्होने उसे एक पार्थिव युद्ध ही माना है जो स्वय बहुत भयकर था। यही बात कोई साधारण पाठक भी मानेगा, लेकिन गाधीजी के विचार उनकी आत्मा की तह से प्रकट हुए थे और उनके लिए वे विचार बिल्कुल सच थे और इसलिए एक लम्बी जिन्दगी के बाद, जो आदि से अत तक बलिदान और आत्म-त्याग की कहानी रही है, जब उन्होने मेरे सामने वे विचार रखे, तो मै उसे सत्य के रूप मे उसी तरह मानने को विवश था, जिस तरह आज। यदि आत्मा साक्षात्कार की दिशा मे आगे बढती है (जैसा कि मुझे स्वीकार करना चाहिए कि गाधीजी के साथ हुआ है) तो यह बात सत्य हो जाती है कि कुरुक्षेत्र इन्सान के हृदय के भीतर ही बन जाता है और कर्मयोगी तब उसे विशुद्ध अहिंसा मे बदल देता है। साधारण व्यक्ति के विषय मे यह लागू भले न हो, लेकिन महात्मा गाधी की मृत्यु मे, शिक्षा में और जीवन में कर्मयोगी का सत्य बराबर निहित था।

ईशोपनिषद् के विषय मे उनके दृष्टिकोण को अध्ययन करने के लिए मुझे पर्याप्त सामग्री मिली है। उनकी व्याख्या का असर मेरे विचार से दो श्रेणियो मे रखा जा सकता है—पहला असर विधि या धर्म-सबधी है, और दूसरा, बुद्धि-सबधी। जहातक मुझे मालूम हुआ है, उनके जीवन में 'गिरि-प्रवचन' का उसी समय प्रवेश हुआ जिस समय गीता का, परन्तु 'गिरि-प्रवचन' का किग जेम्स का सुन्दर भाषायुक्त स्वरूप उनके पास पहुचा, जबकि जो गीता उन्हें इस समय उपलब्ध हुई, वह सर एडविन का छन्दोबद्ध अग्रेजी अनुवाद मात्र था (इस समय गाधीजी की उम्र बीस वर्ष की थी)। ऐसी अवस्था मे यह आश्चर्य की बात नही है कि गाधीजी के पूरे हिन्दू होने के उपरान्त भी यह ईसाई धर्म-पुस्तक उनको बहुत अधिक प्रभावित कर सकी। गीता अपने पूरे प्रभाव मे उनके सामने सन् १९२४ में ५४ वर्ष की

उम्र में आई, अर्थात् जबकि दिल्ली मे उन्होने तीन सप्ताह का उपवास किया था। इसी समय स्वर्गीय मालवीयजी ने गीता का पारायण उनके सामने गाकर किया। शेष जीवन में उन्होने मूल सस्कृत मे ही गीता का पारायण किया, उसपर चिंतन किया और कठाग्र किया। और उसके छन्दो की लय मे उन्होने उत्तरोत्तर अधिकाधिक सौन्दर्य पाया। गीता के द्वितीय अध्याय के अतिम १९ श्लोको का पाठ उनकी प्रार्थना-सभा मे हमेशा होता था और उनकी चेतना मे गीता का यह अश 'गिरि-प्रवचन' मे बडी बारीकी के साथ मिल गया था। यह मेल इतना गहरा था कि गीता-सबधी गाधीजी की व्याख्या इससे एकदम प्रभावित हो गई थी, फिर भी २७ जनवरी की अपनी बातचीत मे, जबकि उन्हे ऐसा लगा था कि मुझे एक ऐसे सत्य की आवश्यकता है, जो उनकी पहुच के भीतर हो, जो कुछ मुझे दिया वह था गीता से भी परे और शायद ऊपर—ईशोपनिषद्। निस्सदेह इसकी जानकारी उन्हे अपने तमाम जीवण में थी, फिर भी उन्होने मुझसे कहा था कि सर्वप्रथम उन्होने सन् १९४६ मे इसे 'प्राप्त' किया, जबकि त्रावणकोर के कुछ ईसाई श्रोताओ को समझाने के लिए उन्होने किसी अविकृत रचना को प्रस्तुत करना चाहा था।

मेरी राय मे उनके विकास मे धर्म-निरपेक्ष और बुद्धि प्रधान प्रभावो का इन महान् धार्मिक रचनाओ की अपेक्षा गौण स्थान है और शायद अपने धार्मिक सस्कारो के अभाव के कारण ही 'गिरि-प्रवचन' और 'गीता' उनकी आत्मा पर इतना निर्णयात्मक प्रभाव छोड सके। वे इतने ही ईसाई थे, जितने बौद्ध, और एक हिन्दू और विशेषकर वैष्णव होने के नाते चाहते हुए भी वे गीता की धार्मिक मान्यता की उपेक्षा नही कर सकते थे। परन्तु फिर भी महाभारत और रामायण को ईश्वरी रचना मानने के लिए वे तैयार नही थे, ऐसा उन्होने मुझसे कहा भी था। उनको वह "महत्वपूर्ण कथाए" ही कहते थे। इस प्रकार दो धार्मिक पुस्तके उनके निकट बिल्कुल नवीन और ताजे रूप मे आई। उनके ऊपर इन पुस्तको को न तो थोपा गया था, और न 'प्रमाणित सत्य' की तरह पेश किया गया था, इसके विपरीत, बिल्कुल स्वाभाविक रूप मे अपनी अन्तरप्रेरणा की सहायता से उन्होने इनकी खोज की।

प्रधानतया रस्किन का और तत्पश्चात् टाल्सटाय का उनके ऊपर धर्म-निरपेक्ष और बुद्धिवादी असर पडा था—और वे ही उन्हें सहयोगात्मक श्रम और चर्खे की ओर ले गए थे। अपनी आत्मा-कथा में उन्होने रस्किन-सबधी अपनी खोज

की विस्तृत व्याख्या की है, लेकिन सचमुच यह बड़े दुख की बात है कि मै उनसे स्वय 'दी किंगडम ऑव गॉड इज़ विदिन यू' (ईश्वर का राज्य तुम्हारे भीतर ही है) के विषय मे उनके विचार न पूछ सका। मै विश्वास नही कर सकता कि अब इतना आगे बढने पर यह उन्हें इतना प्रभावपूर्ण लग सकता, जितना कि यौवन में। यह सत्य है कि यदि कुरुक्षेत्र की युद्ध-भूमि प्रत्येक मानव के अन्तर में है तो इस विषय में टाल्सटाय का उत्कृष्ट दार्शनिक दृष्टिकोण बिल्कुल सत्य है, लेकिन टाल्सटाय की सपूर्ण तर्क-विधि सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था के स्तर तक ही सीमित रही है और इसलिए यह समझना वास्तव में बहुत कठिन है कि व्यक्ति बिना दबाव या बाह्य-प्रतिबन्धो के कैसे चल सकता है। लेकिन इस विषय पर आज चर्चा नही करनी थी और न रविवार वाले विषय पर कि ईसा नजारथ का एक कलाकार था। यह उनका एक खयाल था जो सन् १९२४ की मुलाकात के समय स्पष्ट हुआ था, और इसी विषय पर आगे चर्चा करने की मेरी इच्छा इस मान्यता पर निर्भर थी कि मुहम्मद और ईसा में उन्होने जिस रचनात्मक सूझ का सकेत किया था वह बहुत अश तक उनकी सूझ से मिलती-जुलती थी—यह सूझ भाग्य के साथ मेल के विशेष विचार से उत्पन्न हुई थी। उदाहरण के लिए मैने उनसे यह पूछने का विचार किया था कि ईसामसीह यह जानते हुए भी कि यरुशलम जाने का मतलब उनकी मृत्यु है, वहा क्यो गए। मै महात्माजी से दो बातो का अन्तर जानना चाहता था—भाग्य के साथ मेल अर्थात् महत्वपूर्ण बलिदान, मृत्यु द्वारा शिक्षा देना—और आत्महत्या। कलाकार ईसा के विषय में उनसे पूछने के दूसरे शब्दो में यह मानी थे कि मै स्वय इस प्रकार शहादत की ओर बढती हुई उनकी अडिग गति के विषय में कुछ मालूम कर सकता।

मै "कर सकता" का प्रयोग कर रहा हू, क्योकि इस विषय मे निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता है असलियत यह है कि हो सकता है अपनी असाधारण निर्मलता, मानसिक उच्चता, व्यापक स्थिर-बुद्धि, अथक व्यावहारिक कार्यशीलता एव सामान्य ज्ञान के आग्रह के बावजूद, महात्माजी भाग्य के साथ अपने योग से पूर्णतया परिचित न हो। आखिर, वे सूझ-सपन्न व्यक्ति थे। इतिहास के महानतम व्यक्तियो में से एक थे और सूझ की प्राथमिक विशेषता यह है कि वह रचनात्मक शक्ति के अचेतन तल से उठती हुई प्रकट होती है। ऐसी दशा मे यह सभव प्रतीत होता है कि उन्होने जिस समय डाडी नमक-यात्रा आरम्भ की उस समय तक वे स्वय उन ध्वन्यात्मक प्रतीको के उन गुणो की विशेषताओ से परिचित नहीं

थे, जोकि विभिन्न भाषाओ, स्थान और काल से परे उसे प्राप्त है, यद्यपि उन्होने यह भली प्रकार अनुभव किया था कि तमाम हिन्दुस्तानी भाषाए इसके प्रभाव से ओत-प्रोत है और इस प्रकार हिन्दुस्तानी लोगो की जागृति मे इनका बहुत अहम स्थान है। श्रीमती नायडू ने, जो कि नमक-यात्रा के समय और जेल मे भी गाधीजी के साथ थी, मुझे बताया था कि उस समय तक प्रतीक के रूप मे वे स्वय इसके प्रभाव से परिचित न थी, और न गाधीजी ने यह बात उन्हे समझाई थी। यह एक बात थी जो सपन्न पहले हुई और उसकी सिद्धि बाद मे प्राप्त हुई।

किसी तरह, इस विषय पर और सवाल-जवाब नही होने वाले थे। मेरा प्रयत्न यह था कि उनके साथ होने वाली बातचीत के समय ही इसका अर्थ मै उसीमें से खोज लू। किसी विषय के मूल्य-दान मे इस प्रकार प्राप्त ज्ञान की बुनियाद बडी कमज़ोर मानी जा सकती है, फिर भी जिन परिस्थितियो के बीच उन बातो का श्रीगणेश हुआ, उनकी न तो व्याख्या ही की जा सकती है और न भौतिक स्तर पर उनका विश्वास ही किया जा सकता है। उन्हे आम विचार के अश के रूप में ही पेश किया जा सकता है।

: १५ :

महात्माजी के तीन आदर्श

थाकिन नू

असहिष्णुता, लोभ और घृणा के अधकार से आवृत्त इस विश्व मे दो बडे सकटो के बावजूद महात्मा गाधी का जीवन और शिक्षा आज भी अद्वितीय प्रकाश-स्तभ के समान चमक रहे है। पच्चीस वर्षो के समय में दो विश्व-युद्धो द्वारा उत्पन्न विनाश और सहार राष्ट्रो के दिमाग मे शायद सयम का भाव लाने में काफी समर्थ हो, ऐसा लोग सोच सकते है और इसलिए पवित्रता, आत्म-त्याग और अहिसा के उन आदर्शो के पालन की ओर वे झुक सकते है, जिनका गाधीजी ने अपने जीवन मे स्वय पालन किया था। लेकिन द्वितीय महायुद्ध के अत मे ऐसा प्रतीत होता है कि उस स्वार्थ, असहिष्णुता, और अनैक्य के पुनरागमन के लिए मानो इसने रास्ता साफ होने का सकेत दे दिया है, जिसके कारण स्वय द्वितीय महायुद्ध हुआ था। महात्माजी ने अपने देश मे उनके उच्च आदर्शवाद, और उपदेश

के व्यवहार ने आजादी की लडाई को एक आध्यात्मिक स्तर तक उठा दिया था और इस प्रकार आजादी के उसके दावे को सभी दृष्टियो से अजेय बना दिया था। इस व्यापक विश्व में, उनकी नसीहतो ने 'जिसकी लाठी उसकी भैस' वाले कानून और पडोसी की वस्तु के प्रति मोह के विरुद्ध एक चुनौती पेश की, क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे मानव के कार्यो के पीछे यही प्रवृत्ति काम करती है। इस प्रकार एक पागल के हाथ मे होने वाली उनकी मृत्यु ने केवल हिन्दुस्तान को ही नही, वरन् सारे विश्व को स्तभित कर दिया। ऐसा लगा मानो, प्रेम और शाति के जिस भवन को उन्होने बडी सावधानी से बनाकर खडा किया था, वह ढह जायगा, और जिस सामजस्य को उन्होने प्रोत्साहित किया था वह ओझल हो जायगा। परतु उनके आशीर्वाद की ताकत हत्यारे के हाथ की मौत से ज्यादा मजबूत साबित हुई और महात्माजी की नसीहते आज भी दुनिया के लाखो लोगो के जीवन और भावना को प्रेरणा दे रही है। लाखो आने वाली सताने समय-समय पर उनसे प्रेरणा और उत्साह प्राप्त करेगी।

महात्मा गाधी की सत्य के लिए भावना-प्रधान खोज और उद्देश्य के प्रति उनकी पूरी सचाई ने मुझे बचपन मे ही उत्साहित किया है। मेरी यह तीव्र इच्छा थी कि मै एक शिष्य के रूप मे उनके आश्रम मे कम-से-कम एक वर्ष तक रहू, और इस प्रकार उनकी नसीहतो को ज्यादा पूर्णता के साथ अपने मे पचा लेना चाहता था, जोकि प्रकाशित लेखो को पढकर कभी सभव नही हो सकता था। लेकिन परिस्थितिया कुछ और ही चाहती थी। फिर भी उन्हें एक बार देखने के लिए मै दृढप्रतिज्ञ था, और जवाहरलालजी द्वारा हिन्दुस्तान को देखने के कृपापूर्ण निमत्रण ने मुझे वह सुअवसर दिया, जिसके लिए मै वर्षो से इच्छा कर रहा था। मैंने महात्माजी को वर्मी किसान का टोप भेट में दिया था, जिसे उन्होने उदारतापूर्वक स्वीकार भी कर लिया था। बाद मे मैंने कुछ समय उनकी इच्छानुसार वैसा ही दूसरा टोप खोजने में खर्च किया। अत मे जब वह मिला तो मैंने अपने मित्र ऊ हॉन के सरक्षण मे हवाई जहाज से उसे भारत भेजा, लेकिन खेद कि जिस समय एक अकिंचन शिष्य की यह भेट लेकर हवाई जहाज दिल्ली के रास्ते में था, हत्यारे की गोलियो ने उनके दुर्बल शरीर को छेद दिया और मानव-जाति को अपने एक महानतम पुत्र से वचित कर दिया। उस टोप को उनके ठडे चरणो पर रखा गया और अपनी जनता की सेवा मे प्रेम, पवित्रता और बलिदान की उनकी शिक्षाओ को मरते समय तक आचरण में लाते रहने के निश्चय का मेरे

लिए वह प्रतीक वन गया ।

एक बौद्ध और सत्य का विनम्र शोधक होने के नाते महात्माजी के तीन आदर्शों का मुझ पर वहुत प्रभाव पडा । पहला था ब्रह्मचर्य का आदर्श, जिसका उन्होने केवल उपदेश ही नही दिया वरन् अपने जीवन के अधिकतर भाग में उसका दृढता के साथ पालन किया । अपनी पत्नी की स्वीकृति से अपने वैवाहिक जीवन को वासना से मुक्त करके योन-सवध को उन्होने विल्कुल खत्म कर दिया था और इस प्रकार जीवन मे मैथुन पक्ष का उनके लिए कोई अर्थ नही रह गया था । मानसिक पवित्रता से दैहिक पवित्रता पैदा हुई थी । वे एक महात्मा थे, जिन्होने अपनी वासना को विल्कुल जीत लिया था ।

दूसरा ऐसा आदर्श था, जिसका पालन वहुत लोग कर सकते है, यानी निर्धनता का आदर्श । साधुओ और सन्यासियो के लिए स्वीकृत सपत्ति से परे उनकी कोई निजी सपत्ति नही थी—अर्थात सिर के ऊपर एक छत और अति साधारण कपडे जो उनकी केवल धूप और सर्दी से रक्षा कर सके । पिछले वर्षो मे उनका खाना भी वहुत साधारण हो गया था—खजूर और वकरी का दूध । धन और आराम का उनके लिए कोई मूल्य नही रह गया था और इसलिए जीवन की नितान्त अनिवार्य आवश्यकता से परे जो कुछ ज्यादा था, उसे उन्होने धीरे-धीरे छोड दिया था ।

तीसरा आदर्श—जिसका मै विशेष प्रशसक था—अहिसा का आदर्श था । महात्माजी के विचार से हिसा का किसी प्रकार भी समर्थन नही किया जा सकता था । उनकी मान्यता थी कि हिसा को अहिसा से, घृणा को प्रेम से और अहकार को विनम्रता से जीतना चाहिए । यह सिद्धान्त दुनिया के लिए नया नही है । वुद्ध, ईसा एव दूसरे धर्म-प्रवर्त्तको द्वारा इसका उपदेश दिया जा चुका है । महात्माजी ने इस सिद्धान्त को ऐसी दुनिया मे फिर से जीवित किया, जो इसे विल्कुल भूल चुकी थी, जहा जगल का कानून प्रचलित था, जहा ताकतवर जातियो ने वल-पूर्वक कमजोर जातियो को अपने अधीन कर लिया था, जहा साम्राज्यवाद और पजीवाद टैंक और सगीनो के पीछे शरण लेकर मानवता को भयभीत कर रहे है । ऐसे राष्ट्र की व्यावहारिक समस्याओ के हल मे इस सिद्धान्त को अमल में लाकर गाधीजी ने अपनी मौलिकता का सवूत दिया था—ऐसा राष्ट्र जो गुलाम होने के साथ-साथ वर्वर जातिवाद और आर्थिक पराधीनता का सदियो से शिकार था । हिन्दुस्तान वगावत कर सकता था और हिसा का जवाव हिसा से दे सकता

था, लेकिन इस तरह जीत अनिश्चित थी, पर प्रश्न सफलता और असफलता का उतना नहीं था। प्रश्न था कि इस प्रकार सशस्त्र क्रांति खून खराबी, गरीबी और पीड़ा की जड़े हमेशा के लिए जमा देती और उससे जातीय घृणा की जड़ें भविष्य के भीतर तक प्रविष्ट हो जाती।

इन तीन सिद्धान्तों के उपदेश और अपने दैनिक जीवन में इनके अनवरत आचरण की सहायता से महात्माजी ने असंगठित हिन्दुस्तान के जनसामान्य को एक शक्तिशाली संगठन में बदल दिया। सफलतापूर्वक साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ाई लड़कर अपने देश के लिए स्वतंत्र देशों के बीच एक उचित स्थान प्राप्त किया। एक ऐसे राष्ट्र ने, जो अपने शानदार अतीत और दार्शनिकों की शिक्षा को भूला चुका था, जिसकी जिन्दगी पर स्वार्थ अहं और फूट की लहरें छा गई थी, फिर एक बार वाणी प्राप्त की और अपनी ताकत का अनुभव कर भारतवर्ष को अपनी नींद की बेताबी से जगा दिया। इस सदी के पहले बीस वर्षों में हिन्दुस्तानी जनता की चेतना के अन्दर जो महान् परिवर्तन हुआ, उससे महात्माजी के आदर्शों की सामर्थ्य का अंदाज लगता है।

अपने जीवन के आरम्भिक दिनों में महात्माजी ने सत्याग्रह अथवा अहिंसक अवज्ञा के शस्त्र का प्रयोग दक्षिण-अफ्रीका में रहने वाले भारतीयों की समस्या के हल करने में किया। उन्होंने बैरिस्टर की बड़ी आमदनी को छोड़ दिया और हिन्दुस्तानियों का, अनुचित कानूनों के खिलाफ अहिंसक प्रतिरोध के मोर्चे पर नेतृत्व किया। कुछ हद तक इसमें सफलता मिली। पूर्ण सफलता अप्राप्य थी, क्योंकि सभी ने उस सिद्धान्त का सच्चाई के साथ पालन नहीं किया था और न लोग उस सीमा तक उन मुसीबतों को सहने के लिए तैयार थे, जिनको उन्होंने स्वेच्छा-पूर्वक सहन किया था। परन्तु उन्हें यह मालूम था कि उनका यह रास्ता अन्त में जातीय गुलामी के बंधन को तोड़ने में अवश्य सफल होगा। दक्षिण-अफ्रीका के अपने आरम्भिक दिनों में उन्होंने अहिंसक प्रतिरोध के आन्दोलन के साथ 'घृणा के अभाव' वाले सिद्धान्त को भी मिला दिया था। बोअर-युद्ध के समय उन्होंने रेड-क्रास-दल खड़ा किया और उसका संचालन किया। जोहन्सबर्ग में जब प्लेग का प्रकोप हुआ तो उन्होंने वहां एक प्लेग अस्पताल कायम किया। नेटाल के १९०८ के विद्रोह के समय स्ट्रेचर पर घायलों को ले जाने वाली एक टोली खड़ी की।

सन् १९१४ में वे हिन्दुस्तान आये। सन् १९१८ के अत्याचारी रौलट-एक्ट के बाद देश में अपने सत्याग्रह के व्यवहार के लिए एक व्यापक क्षेत्र उन्होंने पाया।

लेकिन, अफसोस कि उनके सभी अनुयायी उनकी अहिसा को पूर्ण रूप देने के योग्य नही थे, और इसलिए अत मे पजाव और दूसरी जगहो पर यह आन्दोलन असफलता मे समाप्त हो गया।

वीज वोये जा चुके थे और इस प्रकार अहिसा और असहयोग का विचार चारो ओर फैला। १९३० का देशव्यापी सविनय अवज्ञा-आन्दोलन नमक-कानून के सामूहिक प्रतिरोध से आरभ हुआ और यदि इसने अग्रेजो को भारत से हटने के लिए विवश नही किया तो भी इसने हिन्दुस्तान मे साम्राज्यवादी शक्ति की नीव को हिला दिया और उनके यहा रहने के दिनो को सीमित कर दिया। यदि सभी हिन्दुस्तानियो ने पूरी तरह से अमल किया होता, तो अहिसक अवज्ञा का आन्दोलन असफल नही हो सकता था। मानव-स्वभाव की दुर्वलता के कारण यह आन्दोलन असफल हुआ, किसी उपाय की कमियो के कारण नही। अत मे, यह वह वीज था, जिसे कि हिन्दुस्तानी नेता ने अपने लोगो के दिमाग मे वोया था , और जिसके कारण हिन्दुस्तान की आजादी की माग को टाला नही जा सकता था।

महान् कार्यो के साथ महात्माजी का नाम सदा जुडा रहेगा। इनमे से एक हरिजन-उद्धार का काम है। हिन्दुस्तान एक छोर पर शासक-जाति के विरुद्ध लडाई लड रहा था, और दूसरे छोर पर अपने भीतर एक ऐसी रुढिवादी जाति प्रथा को छिपाये था, जिसके अनुसार 'दलित' वर्ग को उच्च लोगो की परछाई छूने तक का अधिकार नही था। उनके मदिरो और कुओ तक उनकी पहुँच वर्जित थी। यह वात महात्माजी की मानवता और विश्व-प्रेम के विरुद्ध थी। इसलिए उन्होने अपनी प्रवल मानसिक शक्ति और सत-प्रभाव को हरिजन-उद्धार के काम मे लगाया। हिन्दू धर्म को इस दोष से मुक्त करना उनके जीवन का कार्य वन गया था। उनकी मृत्यु होने तक यह आन्दोलन समाप्त नही हुआ था, हालाकि उन्होने काग्रेस को इस वात के लिए विवश किया था कि वह अस्पृश्यता-निवारण को अपने कार्यक्रम का आवश्यक अग माने। महात्माजी सभी इन्सानो को समान और वधुतुल्य मानते थे—चाहे वे हिन्दू हो, चाहे मुसलमान, चाहे यहूदी। इस प्रकार उन्होने जिस सुधार का वीजारोपण किया, वह समय आने पर अवश्य फल देगा और हरिजन-कार्य को सफलता मिलेगी।

महात्मा गाधी आज इस दुनिया मे नही है, परन्तु जिन महान् आदर्शो की पौध को उन्होने स्त्री-पुरुषो के मस्तिष्क मे रोपा है, आचरण की पूर्ण पवित्रता, मित्र और शत्रु के प्रति प्रेम-व्यवहार , निर्धनता एव पुरुष-पुरुष के वीच और स्त्री-स्त्री के वीच वर्गभेद की पूर्ण समाप्ति—वह पौध सदा अमर रहेगी और मानवता को विश्व-प्रेम और विश्व-शाति के निकट ले जायगी।

: १६ :

उनका ज्योतिर्मय प्रकाश

सिविल थार्नडायक

यह वात देखने में अजीव-सी मालूम पडती है कि किसी के धार्मिक मत का प्रचार किसी वाहर के दूसरे व्यक्ति द्वारा हो, ऐसे व्यक्ति द्वारा जिसका मत विल्कुल भिन्न हो। यह मेरा निजी अनुभव है और जिस व्यक्ति ने मेरे अपने चर्च-सबधी विचारो को—चर्च ऑव इग्लैण्ड—के सुलझाने मे मुझे सहायता की,वह व्यक्ति थे गाधीजी। मेरा खयाल है कि मुझे यह वात इस तरह से कहनी चाहिए कि ईसाइयत को और अधिक स्पष्ट रूप से देखने मे, किसी विशेष चर्च या ईसाईयत की किसी शाखा की अपेक्षा, उन्होने मेरी अधिक सहायता की, और निश्चय ही यह वात उनके व्यापक विचार की सूचक है। उन्होने अपने लेखो, राजनैतिक कार्यो एव जीवन के प्रति अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण द्वारा 'धर्म' मे आस्था की साक्षी दी है—ईश्वर मे विश्वास की साक्षी दी है। जैसे-जैसे एक व्यक्ति 'नये टेस्टामेट' वाइविल को वार-वार पढता है, उसे पता चलता है कि वे ईसा के उपदेशो के कितने नजदीक थे। प्रत्येक व्यक्ति को यह मालूम था कि गाधीजी प्रत्येक कठिन क्षण मे एक सच्चे ईसाई का रुख अख्तियार करेगे और इस प्रकार सच्चे अर्थ मे वे हम ईसाइयो के मार्ग-दर्शक वन गये थे। वचपन से मेरे लिए यह एक समस्या थी कि किस तरह एक पथ, एक मत विशेष को यह निश्चय हो सकता है कि उसके मौजूदा रूप मे पूर्ण सत्य छिपा है, क्योकि कभी-कभी हमे यह देखने को मिला है कि दूसरे लोगो के पथ ने किस तरह हमारी जिन्दगी के रास्ते में एक 'मार्ग-सकेत' का काम किया है। गाधीजी ने मेरे लिए यह वात और स्पष्ट कर दी।

उनकी मृत्यु के उपरान्त उनकी स्मृति मे होने वाली वेस्टमिन्स्टर एवे गिरजाघर की प्रार्थना कितनी अद्भुत थी, यह वात अनुभव करने से मै अपनेको रोक नही सकता। उस दिन विभिन्न पथो के ईसाई वहा इकट्ठे थे—हिन्दू, वौद्ध, मुसलमान और वहुत-से दूसरे धर्मो के लोग भी वहा मौजूद थे। मै केवल उनकी वात कह रही हूँ, जिन्हे मै जानती थी। हम सव एक ही उद्देश्य के लिए वहा इकट्ठे हुए थे—ईश्वर को यह धन्यवाद देने के लिए कि उसने हमे एक सत-जीवन को जानने की सुविधा प्रदान की। इसीके वाद मेरे एक हिन्दुस्तानी मित्र ने मुझसे कहा कि

कितना अच्छा होता, यदि हम लोग कभी-कभी हो सके तो वर्ष मे एक बार ऐसी प्रार्थना मे शामिल होकर उन बातो पर विचार कर सकते, जिनपर हम सब सहमत है और थोडी देर के लिए अपने मतभेदो को भूल जाते, जैसाकि गाधीजी ने किया था। दूसरे लोगो के साथ एक ईश्वर के प्रति पितृ-भाव उत्पन्न करने में, मानवमात्र के प्रति भाईचारे की भावना बढाने और अन्य ऐसी ही बातो की एकता का अनुभव कराने मे उन्होने कितनी सहायता की, और हमें यह भी बताया कि मतभेदो के प्रति झगडते हुए भी हमे इस तथ्य को ग्रहण करना चाहिए। गाधीजी ने मेरे चर्च के और भी बहुत-से सिद्धातो को समझने में मेरी सहायता की। उदाहरण के लिए कुमारी मेरी का शिक्षा, चिन्तन, दोष की आत्म-स्वीकृति आदि विषयो को मैं पुराने रूढिवादी चर्च के तरीके से उतना नही समझ सकी, जितना उनके दृष्टिकोण की सहायता से।

आत्मा और पदार्थ के एकीकरण के विषय मे उनकी शिक्षा, चिन्तन, और प्रार्थना के शात क्षणो के प्रति उनका आग्रह, उनकी विनम्रता आदि ऐसी सहायताएँ है, जिन्हें हमने इस सत से प्राप्त किया है और जिनमें व्यक्तिगत रूप से एक न होने पर भी, हम उनसे अच्छी तरह परिचित है। उनके लेख और उनकी बाते हमारे लिए इतनी ममता और सच्चाई से भरी है कि प्रत्येक व्यक्ति को पढते समय ऐसा लगता है, मानो वे उससे बाते कर रहे हो। हर व्यक्ति यह आसानी से जान सकता था कि कठिन समस्या सामने आने पर वे किस तरह की सलाह देंगे।

हममे से बहुतो के लिए वे ईसा की व्याख्या के मूर्त्त रूप थे, और उनकी जिन्दगी के तरीके के प्रति जो कृतज्ञता हम अनुभव करते है, मुझे विश्वास है कि वह व्यक्तिगत रूप से हम सबको उस ईश्वरीय ज्ञान के प्रयत्न की दिशा में आगे बढने में सहायता देगी, जो हमारे काम मे, हमारी राजनीति में एव हमारे व्यक्तिगत सबधो में सदा लक्षित होता है।

उनकी मृत्यु गुजर जाना नही है, बल्कि आगे बढ जाना है। वे उसी रास्ते पर आगे बढ ही रहे हैं, जिसपर चलकर सतो ने हमारी जीवन-यात्रा को अधिक व्यवस्थित और एक अच्छी दिशा की ओर जाने के योग्य बनाया था। जो उनके मित्र थे, आज भी अपनी अच्छाइयो मे उनकी झलक देखते है, और हम पापियो और झगडालुओ को अपने उदाहरण और अपने ज्योतिर्मय प्रकाश मे वे आज भी सहायता दे रहे है।

: १७ :

गांधीजी की संसार को देन

रॉथ वाकर

वस्तुओ को देखने का शायद हमारा विचित्र तरीका है। जब हम किमी हिन्दुस्तानी और अग्रेज को साथ-साथ देखते है तो मवमे पहले उनके शरीर और रग का भेद हमारे मामने आता है और सवसे अत मे मानसिक और भावना-मवधी प्रतिक्रिया मे निहित तात्त्विक एकता, जिसकी कि पुष्टि एक अति अनुभवी द्रष्टा, लार्ड पेथिक लारेन्म ने की है, ठीक यही अवस्था भारतीय और पश्चिमी मस्कृति के विषय में है। हमारे नजदीक पहले उनका भेद आता है, और अक्सर हम उस गहराई तक जाने की कोशिश नही करते, जहा अन्तर्दृष्टि और आकाक्षा का गठवधन पाया जाता है। फिर भी सस्कृति की भाषा से तुलना की जा मकती है। मानव-इतिहास के एक निश्चित युग मे कुछ लोगो या कुछ जातियो के लिए यह आदान-प्रदान का एक सहज साधन रही है और भाषा की विचार पर प्रतिक्रिया होती है, जिसमे कि उसकी अधिक स्पष्टता के साथ अभिव्यक्ति हो मके। इसलिए यह व्यापक रूप से सत्य है कि दुनिया की तमाम भाषाएँ महत्वपूर्ण मत्यो की अभिव्यक्ति के साधन उपलब्ध करती है। हमारे युग की मवमे वडी आवश्यकता एक ऐमे भाषा-शास्त्री की है, जिसे कि माम्कृतिक दृष्टि मे वहुभाषी कहा जा सके , जो केवल पाडित्य-पूर्ण न हो, वरन् जिनके अन्दर पूर्व और पश्चिम को एक दूमरे के सामने दुभाषिये के समान रखने की सूक्ष्म दृष्टि हो।

योही कालान्तर से परम्पराओ के पारस्परिक सघर्ष मे भिन्नत्व खत्म हो रहा है। इसी वात को हम इम तरह रख मकते है कि वगीचे के सभी फूलो मे एक अपना सौंदर्य है, लेकिन माली खोज करके सभी फूलो की एक ऐमी कलम तैयार करे, जिससे वास्तव मे एक मुदर फूल तैयार हो सके। अधिक स्पष्ट रूप करने के लिए कह सकते है कि विभिन्न फूलो को खतम करने के लिए एक नया फूल तैयार करे। वडा खतरा हठधर्मी से भरी माम्कृतिक प्रातीयता मे है, जिमका गौरव रूढिवादी रस्मो और विश्वासो तक ही सीमित है और जिसे मानने वाले ममझते हैं कि उनकी विशेष सभ्यता ही "सवसे अच्छी" है और वह भी केवल उनके लिए नही, वरन प्रत्येक व्यक्ति के लिए। पश्चिम में तो यह आम दोष है। महात्मा गान्धी के विश्व-

सदेश का खुले दिल से स्वागत करने के वजाय उसका विरोध करने की भावना वहा वहुत तीव्र है। "सदेश प्रचार की वात हिन्दुस्तान मे अधिक सफल हो सकती है", लोग कहेगे, "लेकिन इसे फैलते हुए वे यहा नही देख रहे है।" अथवा "अग्रेजो पर अहिसा का प्रयोग इसलिए सफल हुआ, क्योकि हम लोग अपेक्षाकृत अधिक सहिष्णु और न्यायप्रिय जाति है। यही प्रयोग नाजियो के विरुद्ध अथवा सामूहिक विनाश के अणु बम सरीखे हथियारो के खिलाफ काम मे नही लाया जा सकता है।"

इसपर भी गाधीजी इतने पूर्व के नही है, जितने विश्व के। उनका दर्शन और ढग-ढाचा निश्चित रूप से मानवमात्र के उपयुक्त है, क्योकि सास्कृतिक, सामाजिक और शैल्पिक भिन्नताएँ जहा जीवन मे निर्णयात्मक महत्व रखती है, वही उनकी अपेक्षा उनके कार्य का धरातल अधिक गहरा होता है। गाधीवादी शातिवाद को केवल उनके हिन्दुस्तानी होने के कारण असगत मानना ठीक वैसी ही वात है, जैसी कि मार्क्सवाद का केवल मार्क्स के जर्मन होने के नाते विरोध करना। पाच प्रश्न विल्कुल साफ है, परन्तु उन्हे वहुत कम पूछा गया है। यह प्रश्न निर्णय करेगे कि गाधीवादी उदाहरण का विश्व-महत्व है अथवा नही

१ गाधीजी की मान्यताओ का क्या आधार है ?

२ वे मान्यताएँ क्या थी ?

३ हिन्दुस्तान के वाहर दुनिया के वारे मे गाधीजी को क्या कहना था ?

४ उचित राय की कसौटी क्या है ?

५ व्यक्तिगत चेतना की क्या प्रतिक्रिया होती है ?

मै यह वताने की कोशिश करूँगा कि इन प्रश्नो के उत्तर किस दिशा मे खोजे जा सकते है।

गाधीजी एक हिन्दू थे, लेकिन उनकी स्थिति के लिए यह जरूरी था। "हालाकि धर्म वहुत-से है, परन्तु सत्य धर्म एक ही है।" "मेरा हिन्दू धर्म पथवादी नही है। जहातक मै जा सकता हूँ, इसके भीतर इस्लाम के, ईसाई धर्म के, वौद्ध धर्म के और यहूदी धर्म के सभी श्रेष्ठ तत्त्व उपस्थित है।' इसलिए यह कहना कि महात्मा-जी के जीवन पर 'नये टेस्टामेट' 'वाइविल' और अन्य धार्मिक पुस्तको का गौण प्रभाव पडा है, गलत है। साहित्यिक दृष्टि से तीन अन्य रचनात्मक प्रभाव उनके जीवन पर पडे है टाल्स्टाय का ईसाई शातिवाद, जिसकी व्याख्या उन्होने "दी किगडम आफ गाड विदिन यू" (तुम्हारे भीतर ईश्वरीय राज्य) मे की है, रस्किन द्वारा लिखित 'अन-टू दि लास्ट' मे उल्लिखित काल्पनिक साम्यवाद का, और सविनय

अवज्ञा पर लिखे गये थॉरो के निवधो में वर्णित रहस्यवादी अराजकतावाद, जिसने गाधीजी को केवल नाम ही नही दिया, वरन् सीधी चोट करने वाला यह प्रभावशाली अहिसक तरीका भी दिया। यह एक ऐसा तथ्य है, जिसका महत्व दुनिया के मौजूदा सकट मे और बढ जाता है। इस महान् भारतीय पर तीन आधुनिक प्रभाव डालने वालो में एक रूसी, एक अग्रेज और एक अमरीकी था। इसके अलावा गाधीजी का विकास हिन्दुस्तान में नही, लदन और अफ्रीका में हुआ था। लदन मे ही प्रथम बार उन्होने अपने मित्र सर एडविन एरनाल्ड द्वारा अनुवादित गीता अग्रेजी छदो में पढी और वही माता को दिये गए वचन के कारण शाकाहारी होने की अपनी प्रतिज्ञा को अपने माता-पिता की मृत्यु के उपरान्त छोडने का विचार रखने वाला विचार छोड एक नया सिद्धान्त—व्यक्ति सिद्धात और चुनाव से शाकाहारी बनता है—स्वीकार किया और यह रूपान्तर उनमें हेनरी साल्ट द्वारा लिखित 'प्ली फार वेजीटेरियनिज्म' (शाकाहार के पक्ष मे) एव अन्य शाकाहारी पुस्तको को पढने और लदन की शाकाहारी सोसायटी के ससर्ग के कारण हुआ। इस शाकाहारी सोसायटी की कार्यकारिणी में वे स्वय रहे थे और इसके साप्ताहिक पत्र में ही उनकी प्रथम प्रकाशित रचना सन् १८९१ में निकली थी। दक्षिण-अफ्रीका में भारतीयो के अधिकार के लिए चलने वाले लबे सघर्ष के समय मे ही, जोकि कुछ समय के लिए प्रथम विश्वयुद्ध के आरम्भ होने के पूर्व ही रुका था—उनके विचार परिपक्व हुए थे और उस छोटी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' के बाद, जो कि सन् १९०९ में प्रकाशित हुई थी, और जिसे उन्होने दक्षिण-अफ्रीका की वापसी यात्रा के समय लिखा था, तत्त्वत और कोई नई बात नही हुई। गाधीजी के अधिकाश सघर्ष यूरोपीय, विशेषकर अग्रेजी विरोधियो के खिलाफ थे। केवल इसी बात से वे पश्चिमी जगत के लिए बहुत सगत प्रतीत होते है, क्योकि इससे सघर्ष के हल में अहिसक उपायो के प्रति पश्चिमी राजनीतिज्ञो एव लोगो की प्रतिक्रिया का पता लग जाता है।

यहा गाधीजी के दृष्टिकोण का विस्तृत विवेचन नही करना है, लेकिन उनकी यह मान्यता कि "धर्म एक ही है", बडी बुनियादी बात है। "मै राजनीति मे उसी सीमा तक प्रवेश करता हूँ, जहातक वह मेरी धार्मिक प्रवृत्ति के विकास में सहायक है", ऐसा गाधीजी ने स्वय कहा है और आध्यात्मिक तत्त्व के कारण ही उनके राजनैतिक निर्णय न्यायपूर्ण है—केवल विषय की उपयोगिता के कारण नही। उनका यह आध्यात्मिक तत्त्व विश्व-व्यापी उपयोगिता रखता है। किसी निर्णय विशेष के आत्मिक महत्व को समझने के लिए सघर्ष की परिस्थितियो का अध्ययन

करना आवश्यक होगा। यदि एक बार देख लिया गया, तो सारभूत मानवीय दृष्टि-कोण को पहचानकर उसे पलटा भी जा सकता है। 'एक दक्ष राजनीतिज्ञ' के रूप मे गाधीजी की आलोचना, जिसमे तत्त्वत व्यापक मानवीय समस्याओ के हित की सगति का अभाव हो, और जो सत और पार्टी-नेता का मिश्रण-मात्र हो, बिल्कुल गलत है। निस्सदेह गाधीजी के बहुत-से निर्णय—असहयोग आन्दोलन को रोकने मे लेकर जो कि धीरे-धीरे सविनय अवज्ञा की ओर बढ रहा था, बगाल के गावो मे काम करने के लिए उस समय चले जाने तक जबकि दिल्ली मे केबिनेट मिशन के साथ हिन्दुस्तान के भाग्य का फैसला हो रहा था—ऐसे निर्णय है, जिन्हे केवल राजनैतिक औचित्य के विचार मे नही समझा जा सकता है। गाधीजी विलियम ब्लैक के मत को स्वीकार कर सकते थे—"धर्म राजनीति है और राजनीति एक भाईचारा।"

हिन्दुस्तान से बाहर की दुनिया के लिए ओर खास तौर से पश्चिम के सबध मे कही गई गाधीजी की बातो को पढकर बिल्कुल सदेह नही रहता कि उनकी मान्य-ताएँ और विश्वास दूसरी सभ्यताओ के लिए लेशमात्र भी असगत थी। यह समझना बहुत जरूरी है कि उनका स्वदेशी का सिद्धान्त, अथवा एकदम उपस्थित वातावरण पर निर्भर रहना और उसके भीतर काम करना ऐसा अनुशासन था, जिसने उन्हे उनके सार्वजनिक जीवन के अधिकाश भाग मे केवल हिन्दुस्तान के विषयो तक ही राय और कार्य करने के लिए सीमित कर रखा था, परन्तु ऐसा करते हुए भी उन्होने व्यापक विश्व को हमेशा अपने सामने रखा। अपनी मृत्यु से चन्द महीनो पहले उन्होने 'हरिजन' मे जो कुछ लिखा था, वह प्रारम्भिक २० वर्षो मे लिखे गये 'यग इडिया' के लेखो से बिल्कुल भिन्न नही था। "एशियन कान्फ्रेस के मौके पर मैने कहा था कि मुझे आशा है कि भारत की अहिसा की सुगध समस्त ससार मे फैल जायगी। मुझे प्राय आश्चर्य होता है कि क्या यह आशा साकार हो सकेगी?" सन् १९३१ मे अपने इगलैण्ड-भ्रमण के समय आशिक कार्य-पद्धति (Dole System) के प्रश्न पर अग्रेजी बेरोजगारो को उन्होने असहयोग की सलाह दी थी और हिन्दुस्तान लौटते समय स्वीजरलैण्ड मे पेरी सेरीसोल मे कहा था कि "यूरोप निवासी अहिसक कार्य के योग्य है, लेकिन जिस तरह के नेतृत्व की समय को आज आवश्यकता है, उसकी यहा कमी है।" बाद मे मध्य यूरोप के यहूदियो को नाजी जुल्म के विरुद्ध उन्होने सामूहिक अहिसा की सलाह दी थी। सन् १९३९ मे उन्होने जेकोस्लावाकिया को जर्मन आक्रमण के विरुद्ध अपनी आजादी की रक्षा अहिसक उपायो से करने की

सलाह दी थी और वाद मे उसी वर्ष पेत्रेवस्की की अपील पर उन्होंने पोलैण्ड के सामने वही सुझाव रखे थे। सन् १९४० मे युद्धरत इगलैण्ड मे एक अपील की थी, जिसमें उससे यह कहा गया था कि न्याय के लिए वह शस्त्रयुद्ध के स्थान पर अहिंसक सघर्ष को अपनावे। सानफ्रासिस्को मे अन्तर्राष्ट्रीय सगठन के हेतु इकट्ठी होनेवाली वडी ताकतो से जो अपील उन्होंने की थी, उसका सार और अणु वम का उनका एकमात्र उत्तर अहिंसा था। निस्सदेह गाधीजी अपने विश्वासो को एशिया की सीमा तक ही सीमित नही मानते थे।

पर क्या उनका यह विचार ठीक था? थोडे दिन पहले 'टाइम्स' के 'लिटरेरी सप्लीमेंट' ने श्री राधाकृष्णन् द्वारा की गई अहिंसा की समीक्षा पर टीका करते हुए लिखा था, "इस वात मे हम निश्चित ही पूर्व मे कुछ सीख सकते है" आल्डस हक्सले ने अपने 'साइस, लिवर्टी एण्ड पीस' (विज्ञान, स्वतत्रता और शाति) नामक निवधो में गाधीजी के प्रति धारण किये गए अपने मौन का सुधार किया है और इसमे उन लोगो को भी जवाव दिया है, "जो यह सोचते है कि गाधीजी के कार्यो का औद्योगिक पश्चिम की ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक स्थिति के सामने उल्लेख करना असगत है।" और साथ ही उन्होंने यह भी घोषणा की है, "आगे आने वाले दिनो में यह वहुत सभव है कि पश्चिम में यही सत्याग्रह अपनी जडे जमा ले।" डा गोपीनाथ धावन ने 'दी पोलीटिकल फिलास्फी ऑव महात्मा गाधी' (१९४६) (महात्मा गाधी का राजनैतिक दर्शन) नामक पुस्तक मे यह मत व्यक्त किया है, "राजनैतिक व्यवहार और राजनैतिक विचार के क्षेत्र में हिन्दुस्तान की यह सर्वदा मौलिक देन है।" "व्यक्तिगत जीवन की अपेक्षा सामुदायिक सवधो मे आजकल सघर्ष और हिंसा का पुराना रोग हो गया है और आज तो सभ्य जीवन के अस्तित्व को ही इस वात से खतरा उत्पन्न हो गया है। सत्याग्रह के द्वारा गाधीजी ने दुनिया को अन्तर्राष्ट्रीय आक्रमण और शोषण के क्षेत्र मे रचनात्मक प्रकार से लडने की एक पद्धति दी है।" एक ऐसे मनुष्य के जीवन और उद्देश्यो को समझने के लिए, जो हर नाप से भी इस युग की दुनिया के महापुरुषो मे से एक था, और जो मेरी कसौटी के हिसाव से तो महानतम था, मूल्याकन और चर्चा, ये दो महत्वपूर्ण पद्धतिया है, परन्तु जिस भयकर और शानदार तरीके से उनकी मृत्यु हुई है, उससे तो उनके शब्द हमारे दिलो मे अधिक सच्चाई और गहराई के साथ प्रवेश कर गए है और उनकी व्यावहारिक ताकत भी वढ गई है। "भावात्मक सत्य का उस समय तक कोई मूल्य नही है जवतक कि इसका प्रचार करनेवाले व्यक्तियो के भीतर

यह स्वय स्थान न कर ले और वे स्वय इसके लिए अपने प्राण तक देने को तैयार न हो जायँ।" अवतक पश्चिम मे केवल चन्द प्रतिभाशाली योग्य व्यक्तियो के निजी जीवन मे ही नही, वरन् हमारे युग के ऐतिहासिक सघर्षो मे, अहिसा का यह सत्य किस सीमा तक सफलतापूर्वक लोगो के हृदयो मे स्थान पा सका है ? मेरे विचार से इसमे कोई सदेह नही कि इसका सबसे ज्वलत उदाहरण हमे नारवे के लोगो के उस शानदार प्रतिरोध में मिलता है, जोकि उन्होने क्विसलिंग-सत्ता और जर्मनी की अधिकार करने वाली सेनाओ के विरुद्ध सन् १९४०—४५ मे किया था। निस्सदेह यह प्रतिरोध सर्वप्रथम एक छोटे सैनिक सघर्ष से शुरु हुआ था और बाद मे बाहरी ताकतो द्वारा सगठित तोड-फोड और आतकवाद भी इसके साथ मिल गए थे। फिर भी, गाधीजी के मूल्याकन सबधी मेरे लेखो मे ही नही, वरन् पालियामेट के एक अशातिवादी सदस्य श्री विलियम वारवे ने अपने विशाल ग्रथ मे यह स्वीकार किया है कि यह प्रतिरोध प्रधानतया अहिसक था और इसे काफी सफलता भी मिली थी।

मेरे पाच प्रश्नो में से अतिम प्रश्न था, नैतिकता का क्या असर होता है ? एक प्रकार से सब प्रश्नो से यह अधिक महत्वपूर्ण है। गाधीजी हमेशा हमारी टीकाओ, भाष्यो और समर्थनो से घिरे रहे है और साथ ही हमारी प्रशसाओ से ढके रहे है। हमारा उद्देश्य अच्छा है, लेकिन फिर भी हम आपके और व्यक्ति के बीच आ ही जाते है और यह बात अच्छी नही है। सबसे अच्छा तरीका यह है कि आप स्वय उसकी खोज करे, जो गाधीजी ने लिखा है। गाधीजी पर सी एफ एन्ड्रूज अथवा अन्य व्यक्तियो के द्वारा प्रकट किये गए विचार उपलब्ध है। उन पुस्तको के कुछ पृष्ठ पढते ही आप यह जान जायगे कि जिस व्यक्ति के मस्तिष्क और व्यक्तित्व की आप खोज करने निकले है, उसके अन्दर सीधे और सहज तरीके से हमारे भीतर उप-स्थित मानवता से बात करने का एक दैवी गुण था और वह गुण केवल साहित्यिक नही था। अपने इसी अपूर्व गुण के कारण वे दुनिया की सर्वमान्य हस्ती बने। पश्चिम में अहिसा की शक्ति को थपथपाने की बहुत चर्चा हुई है, जिसमें अधिकाश चर्चा रूढि और अन्ध-विश्वासो से भरी है। बहुत कम राजनीतिज्ञो और धार्मिक नेताओ ने यह समझने की चिन्ता की है कि गाधीजी की असली ताकत मानव-स्वभाव के श्रेष्ठतम अग से अपील कर सकने की क्षमता में निहित थी। सामान्य लोगो का यह अटूट विश्वास था कि गाधीजी ने युद्ध का हमेशा के लिए त्याग कर दिया है और अहिसा उनका सर्वकालीन धर्म है। इसी अटूट विश्वास के कारण वे अपने

कार्यों में लोगों का समर्थन प्राप्त कर सके थे। आज एक ओर अणु बम और कीटाणु बम सभी को महाविनाश से भयभीत कर रहे हैं और दूसरी ओर रक्षात्मक युद्ध का आखिरी निशान तक हमेशा के लिए ओझल हो गया है—ऐसे तेजी से गुजरने वाले जमाने में दुनिया पूर्व और पश्चिम में ऐसे आध्यात्मिक और राजनैतिक नेताओं की प्रतीक्षा कर रही है जो गांधीजी से अहिंसा की उस अनिवार्य शर्त को सीखने की कोशिश करें, जिसपर मानव-जाति के अक्षुण्ण हित और भलाई के शब्द खुदे हैं।

: १८ :

वह पुरुष !

एलबर्ट आइन्सटीन

गांधीजी अपनी जनता के ऐसे नेता थे, जिसे किसी बाह्य सत्ता की सहायता प्राप्त नहीं थी। वे एक ऐसे राजनीतिज्ञ थे, जिसकी सफलता न चालाकी पर आधारित थी और न किसी शिल्पिक उपायों के ज्ञान पर, बल्कि मात्र उनके व्यक्तित्व की दूसरों को कायल कर देने की शक्ति पर ही आधारित थी। वे एक ऐसे विजयी योद्धा थे, जिसने बल-प्रयोग का सदा उपहास किया। वे बुद्धिमान, नम्र, दृढ़-संकल्पी और अडिग निश्चय के व्यक्ति थे। उन्होंने अपनी सारी ताकत अपने देशवासियों को उठाने और उनकी दशा सुधारने में लगा दी। वे एक ऐसे व्यक्ति थे जिसने यूरोप की पाशविकता का सामना सामान्य मानवी यत्न के साथ किया और इस प्रकार सदा के लिए सबसे ऊँचे उठ गए।

आने वाली पीढ़ियां शायद मुश्किल से ही यह विश्वास कर सकेंगी कि गांधीजी जैसा हाड़-मांस का पुतला कभी इस धरती पर हुआ होगा।

: १९ :

अहिंसा के दूत

माउण्टबेटन

महात्मा गांधी की मृत्यु सभ्य संसार के हर कोने में करोड़ों व्यक्तियों के लिए एक व्यक्तिगत सदमे की तरह ही थी। सिर्फ उन लोगों को ही नहीं, जो उनके जीवन

भर उनके साथ काम करते रहे, या मेरे जैसे लोगो को, जो उन्हे अपेक्षाकृत कम समय से जानते थे, वल्कि उन लोगो को भी जो उनसे कभी नही मिले, जिन्होने कभी उनके दर्शन नही किये थे और जिन्होने उनकी प्रकाशित पुस्तको का एक शब्द भी नही पढा था, ऐसा लगा, मानो उनका कोई मित्र विछुड गया हो।

जिस सबोधन के साथ वह मुझे पत्र लिखा करते थे, वह था, "प्रिय मित्र", और मैं भी इसी सबोधन के साथ उन्हे उत्तर दिया करता था क्योकि स्पष्टत उन्हे सबोधित करने का यही सबसे ठीक तरीका था और मैं ओर मेरा परिवार सदा इसी प्रकार उनके वारे मे सोचेगा।

मै गाधीजी से पहली वार सन् १९४७ के मार्च के महीने मे मिला था, क्योकि भारत पहुँचते ही मेरा पहला काम यह था कि मै उन्हे पत्र लिखू और इस वात का सुझाव दू कि हम जल्दी-से-जल्दी मिले—और अपनी इस पहली मुलाकात मे हमने यह निश्चय कर लिया कि आगे आने वाली महान् समस्याओ का सामना करने में एक-दूसरे की सहायता करने का सर्वोत्तम तरीका व्यक्तिगत सवध है, जिसे लगातार कायम रखा जाय। एक महीना हुआ कि वे उस प्रार्थना-सभा के वाद, जिसमे उन्होने यह घोपणा की थी कि यदि साप्रदायिक एकता पुनस्स्थापित न हुई तो वे आमरण अनशन कर देगे, मुझसे मिलने के लिए आये। उनके जीवन मे अतिम वार मै उनसे तव मिला, जव मै और मेरी पत्नी उनके अनशन के चौथे दिन उनके दर्शन करने गए। हमारी पारस्परिक जान-पहचान के इन दस महीनो मे हमारी मुलाकाते कभी औपचारिक भेट की तरह नही हुई—वे दो मित्रो की वातचीते थी—और हम लोग विश्वास और समझ की एक सीमा प्राप्त कर चुके थे, जो सदा एक चिरस्मरणीय सस्मरण रहेगी।

शातिपुरुप, अहिसा के दूत, गाधीजी धर्माधता के विरुद्ध—जिसने भारत की नवार्जित स्वाधीनता के लिए खतरा पैदा कर दिया है—सघर्प मे हिंसा द्वारा शहीद की भाँति मरे। वे इस वात को समझ चुके थे कि राष्ट्र-निर्माण के महान् कार्य को हाथ मे लेने से पहले इस कोढ को मिटाना होगा।

हमारे महान् प्रधान मत्री, पडित नेहरू ने हमारे सामने एक लोकतात्रिक, धर्म-निरपेक्ष राज्य का लक्ष्य रखा है, जिसमें सभी लोग उपयोगी और सृजनात्मक जीवन वसर कर सकेंगे, जिसमें सामाजिक और आर्थिक न्याय पर आधारित सही मानो में प्रगतिशील समाज का विकास हो सकता है। गाधीजी की स्मृति में हमारी सर्वोत्तम श्रद्धाजलि यही है कि हम अपने दिलो-दिमाग और शरीर को स्वाधीनता की

नीव पर खडे ऐसे समाज के निर्माण मे लगा दे, जिसे अपने जीवन-काल मे उन्होने इतना पुख्ता कर दिया था। आज ही यदि गाधीजी की दर्दनाक मृत्यु मे हम अपने पारस्परिक मतभेद भूल जाय और सतत तथा सगठित प्रयास मे लग जाय तो यह गाधीजी की अपने देशवासियो के लिए, जिन्हें वे इतना प्यार करते थे, अतिम और सबसे महान् सेवा होगी। केवल इसी प्रकार उनके आदर्शों को प्राप्त किया जा सकता है और भारत अपनी विरासत को पूरी तरह हासिल कर सकता है।

२० :

प्रेम और शांति के दूत

हॉरेस अलैक्जेण्डर

महापुरुषो का देहावसान उनके पीछे रहे लोगो के लिए हमेशा दु ख की बात होती है। लेकिन महात्मा गाधी की मृत्यु पर हमारा शोक कही बढकर है—केवल उस आदर्श के लिए नही, जिसके कि वे प्रतीक थे, बल्कि इसलिए कि जिस प्रकार उन्होने अपने प्राण त्यागे, वह बहुत दर्दनाक था। सत्य, प्रेम और अहिसा के दूत की हत्या अपने ही एक देशवासी के हाथो हो, यह नि सदेह इस बात का सबूत है कि देश मे ऐसे तत्त्व मौजूद है, जिन्होने उनकी शिक्षाओ को अगीकार नही किया है। पिछले डेढ वर्ष मे हमारे देश मे घटने वाली घटनाएँ इस बात की साक्षी देगी कि हम उस आदर्श पर दृढ रहने मे असमर्थ रहे है, जिसके लिए हमारे महान् शिक्षक एक चौथाई शताब्दी से भी अधिक काल से हमसे कह रहे थे।

एक ऐसे विश्व मे, जहा नूतनतम वैज्ञानिक खोज जनता को हानि पहुँचाने की सभावनाओ से परिपूर्ण है, गाधीजी परमाणु शक्ति के श्रेष्ठतम स्वरूप का प्रतिनिधित्व करते थे। उन्होने ससार को यह दिखा दिया कि किस प्रकार अहिसा-पथ की अनुगामिनी एक निरस्त्र जाति भयानक हिसा के मुकाबले मे भी अपनी आजादी प्राप्त कर सकती है। उनके नेतृत्व मे भारतीय जनता ने राजनैतिक स्वतत्रता के लिए सफलतापूर्वक जो सघर्ष चलाया, वह अपने लगभग सपूर्णत अहिसात्मक स्वरूप के लिए सदा विश्व-इतिहास के श्रेष्ठतम अध्यायो मे रहेगा। लेकिन खुद गाधीजी के लिए राजनैतिक स्वतत्रता को प्राप्त करना ही एकमात्र साध्य नही था और हाल के महीनो मे वे भारत मे रहने वाली विभिन्न जातियो मे शाति और सद्भावना

कायम करने में लगे हुए थे। यह एक ऐसा आदर्श है, जिसपर वे जीवन भर कायम रहे। यह कहना कोई अतिशयोक्ति न होगी कि वे तो समस्त ससार मे शाति रखने के लिए उत्सुक थे, पर स्वाभाविक रूपेण उनकी गतिविधिया भारत तक ही सीमित रही।

वास्तव में यह वडी दर्दनाक वात है कि खुद गाधीजी—जिन्होने जीवन भर ऐसे कायरतापूर्ण आक्रमणो से दूसरो के जीवन की रक्षा की—के जीवन का अन्त इतने निर्दयतापूर्ण तरीके से हुआ। लेकिन शायद यह परमेश्वर की इच्छा ही थी कि गाधीजी की इस प्रकार हत्या की जाय, ताकि हम, जो आज उनके वियोग पर शोक कर रहे है, अहिंसा और सत्य में उनके विश्वास को ग्रहण कर सके। गाधीजी की मृत्यु पर खुद-ब-खुद हुए शोक-प्रदर्शनो का इस उद्देश्य के लिए पूरा-पूरा उपयोग किया जाना चाहिए, जो जीवन भर उन्हे इतना प्रिय था। अगर हम, जो गाधीजी के वाद यहा रह गए है, उनके आदर्शों से अपने को प्रेरित नही करते तो ये सारे प्रदर्शन व्यर्थ हो जायगे।

इतिहास में ऐसा दृष्टात ढूढने के लिए हमें अपना ध्यान कोई दो हजार वर्ष पहले की ओर ले जाना होगा, जव ईसामसीह ने प्रेम और शाति के लिए अपने जीवन का वलिदान किया था। ईसा की भाति गाधीजी के वारे मे कहा गया है कि गाधीजी ससार मे कुछ पहले आ गए थे। यह हम सवका पुनीत कर्तव्य है कि हम ससार को यह सिद्ध करके दिखा दें कि यद्यपि हम पितृहत्या के दोषी है, तथापि हमने अपने इस अपराध के लिए समुचित प्रायश्चित कर लिया है और यद्यपि हमने उनकी वात उनके जीवन मे नही सुनी, इस शोणित तर्पण के द्वारा हमने आत्म-शुद्धि कर ली है और अपनेको उनकी विरासत के योग्य उत्तराधिकारी सिद्ध कर दिया है।

लोग अभी से महात्माजी के लिए समुचित स्मारक स्थापित करने की वात कह रहे है, लेकिन यह स्पष्ट है कि जहा-तहा प्रतिमायें या उद्यान वना देना ऐसे व्यक्ति के लिए उचित स्मारक नही हो सकता, जिसने सारे राष्ट्र की उन्नति के लिए और जनता के सभी वर्गों में सौहार्द भाव को वढाने के लिए सर्वस्व त्याग दिया था। उनके लिए जो एकमात्र समुचित स्मारक हमारे द्वारा स्थापित किया जा सकता है, वह उनके द्वारा छोडे अधूरे काम को पूरा करना है।

आइए, हम इस प्रकार कार्य करने की शपथ ग्रहण करें, जिससे एक नए, वेहतर और शानदार हिन्दुस्तान की नींव पडे, जिसके लिए महात्माजी जिये और मरे।

: २१ :

छोटे, किन्तु महान

पैथिक लॉरेंस

गांधीजी को लोग बहुत ही प्रेम करते थे। उनके लिए उतना ही अधिक वे शोक करेंगे। हाड-मांस के व्यक्ति के रूप में वे अब हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन उनकी आत्मा सदा जीवित रहेगी। पुरुषों और स्त्रियों के दिलों और दिमागों पर उनके इतने प्रभाव का रहस्य क्या था? मेरी राय में उसका कारण यह था कि उन्होंने स्वेच्छा से उन सब अधिकारों और सुविधाओं का त्याग कर दिया था, जिनका उपभोग वे अपनी पैदाइश, साधन, व्यक्तित्व तथा बौद्धिक ऊँचाई के कारण कर सकते थे। उन्होंने सामान्य व्यक्ति की हैसियत और दु:ख-दीनताओं को अंगीकार किया।

जबकि वे एक युवक के रूप में दक्षिण-अफ्रीका में थे और इस देश में अपने देश-वासियों के साथ होने वाले व्यवहार का विरोध कर रहे थे, उन्होंने छोटे-से-छोटे भारतीय के साथ होनेवाले अपमान का अपने लिए स्वागत किया था, जिससे कि अवज्ञा के लिए मिलने वाले दंड को वे स्वयं भुगत सकें। जब उन्होंने भारत में ब्रिटिश-शासन के साथ असहयोग करने को कहा, तो उन्होंने स्वयं कानून की अवज्ञा की और उन व्यक्तियों के साथ जेल जाने का आग्रह रक्खा जो सबसे पहले सीखचों के पीछे बन्द हुए थे। जब उन्होंने पश्चिमी औद्योगीकरण का भारत द्वारा अपनाये जाने का विरोध किया तो अपने घर में स्वयं उन्होंने चर्खे को प्रतिष्ठित कर लिया और अपने हाथों से प्रतिदिन उसपर श्रम करने लगे। जब वे साम्प्रदायिक हिंसा का मुकाबला करने को उद्यत हुए तो उन्होंने अपने सम्प्रदाय की, जिसके कि वे स्वयं एक सदस्य थे, भूल और पाप के लिए स्वयं प्रायश्चित्त के रूप में अनशन तथा मृत्यु का सामना किया।

उन्होंने कभी भी यह दावा नहीं किया कि वे किसी भी सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा कुछ और हैं। उन्होंने स्वीकार किया कि भूल उनसे भी हो सकती है और यह भी माना कि अपनी भूलों से उन्होंने प्राय: शिक्षा ग्रहण की है। वह सार्वजनीन बन्धु थे, प्रेमी थे और गरीब, दुर्बल, दोषी तथा दुखित मानवता के मित्र थे।

आइये, हम सब उनकी आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करें, केवल शब्दों द्वारा ही नहीं, बल्कि जैसा कि उन्होंने किया, सत्य की खोज में, साथियों के लिए प्रेम में और राष्ट्रों के घावों को भरने में अपने जीवन को समर्पित कर दें।

: २२ :

उनका रास्ता

एल० एस० एमरी

हमारे युग का लगभग सारा-का-सारा जोर समाज-सुधार की भौतिक परिकल्पनाओ और युद्ध के तरीको से युद्ध के रोकने की योजनाओ मे लग रहा है। इस बात पर हमारा सदेह पुष्ट होता जा रहा है कि क्या यह तरीके हमे परमाणु बम से बचा सकेंगे या हमारे चारो ओर शाति और सतुष्टि सुनिश्चित कर सकेंगे? क्या ही अच्छा हो कि उस समाज-सुधारक (गाधीजी) की उत्तमतर पद्धति को अपनाया जा सके, जिसने खुद सारे जीवन मे अछूतो के सुख और उनके मानवी मान का प्रचार किया, जो भारत मे ब्रिटिश राज्य का विरोधी था, लेकिन इसके बावजूद अग्रेज जाति को भली-भाति पहचानता और प्रेम करता था, जो खुद एक कट्टर हिन्दू था, लेकिन फिर भी जो ईसाइयत और इस्लाम दोनो से बौद्धिक सबध स्थापित करता था, जो शातिवादी था और जिसका यह विश्वास था कि शाति मानवी आत्मा मे युद्ध के प्रति घृणा उत्पन्न करके ही स्थापित की जा सकती है।

: २३ :

अहिंसा के पुजारी

क्लीमेण्ट एटली

गाधीजी की निर्मम हत्या का समाचार हर किसी ने बडे आश्चर्य और घृणा के साथ सुना होगा। मै जानता हूँ कि उनके देशवासियो के प्रति उनके सबसे बडे नागरिक की मृत्यु से हुए शोक मे अपनी गहरी सहानुभूति प्रकट करने मे मै ब्रिटिश जनता के विचारो को भी प्रकट कर रहा हूँ। जैसाकि भारत मे लोग उनके बारे में जानते थे, महात्मा गाधी वर्तमान विश्व के सबसे महान् व्यक्तियो में से एक थे, लेकिन उनके विषय मे ऐसा लगता था मानो वे किसी और युग के प्राणी हो। वे घोर तपश्चर्या का जीवन व्यतीत करते थे और उनके करोडो देशवासी उन्हें दैवी-प्रेरणा प्राप्त सत मानते थे। उनका प्रभाव उनके सहधर्मियो के अलावा औरो पर भी था और एक ऐसे देश में जिसमें साप्रदायिक फूट बुरी तरह से फैली हुई थी, उनकी आवाज

सभी हिन्दुस्तानियो पर असर डालती थी। एक चौथाई शताब्दी तक हरएक भारतीय समस्या के समाधान में यही एक व्यक्ति सबसे बड़ा तत्त्व माना जाता था। वे भारतीय जनता की स्वतत्रता की इच्छा के प्रतीक बन गए थे, तो भी वे कोरे राष्ट्रवादी ही नही थे। उनका सबसे प्रमुख सिद्धात अहिंसा का था। वे उन शक्तियो के, जिनको वे गलत समझते थे, निष्क्रिय प्रतिरोध मे विश्वास करते थे। वे उनका विरोध करते थे, जो हिंसा द्वारा अपना लक्ष्य-साधन करने की कोशिश करते थे और जब कभी भी जैसाकि अक्सर हो भी जाता था, उनके द्वारा चलाये गए स्वाधीनता आन्दोलन में अपने को उनका अनुयायी बताने वालो के अनुशासन-विहीन कृत्यो के कारण जन-हानि हो जाती थी, तो इससे उन्हे बडी वेदना होती थी। लक्ष्य-साधन में उनकी सचाई और निष्ठा पर अगुली नही उठाई जा सकती। उनके जीवन के अन्तिम दिनो में, जब साप्रदायिक दगे भारत द्वारा प्राप्त की गई स्वाधीनता को कलकित कर रहे थे, उनके अनशन करने की धमकी से बगाल में मार-काट बन्द हो गई और उससे वातावरण में फिर से परिवर्तन आ गया। इसके अतिरिक्त उन्हे अन्याय से घृणा थी और वे निर्धनो और विशेषकर भारत के पिछडे वर्गो के लिए यत्न करते रहते थे। एक हत्यारे के हाथो उनके प्राण चले गए और शाति और भ्रातृत्व का स्वर ऊँचा करने वाली वाणी को इस प्रकार रुद्ध कर दिया, लेकिन मुझे विश्वास है कि उनकी आत्मा अपने देशवासियो को प्रेरित करती रहेगी और शाति और मेल की आवाज बुलन्द करती रहेगी।

: २४ :

इतिहास की अमूल्य निधि

फिलिप नोएल बेकर

भाग्य के दुखान्त चक्र ने एक ऐसे महापुरुष को छीन लिया, जिसका न केवल अपने देश में, अपितु सारे ससार में आदर होता था।

गाधीजी वह व्यक्ति थे, जिनकी महानता केवल उनके जीवन-काल तक ही सीमित नही थी, बल्कि इतिहास की एक अमूल्य निधि है। भारत तथा सारे ससार में प्रेम और भ्रातृत्व की भावना, जिसके कि वे सबसे बडे प्रवक्ता थे और जिसके लिए वे शहीद तक हो गए, की आवश्यकता पहले उतनी कभी अनुभव नही की

गई थी, जितनी कि आज की जा रही है।

आधी शताब्दी तक उनकी प्रेरणा कारगर रही और शायद पिछले वर्ष में उसकी अभिव्यक्ति सबसे अधिक हुई। उनकी मृत्यु से हमे उस खतरे को समझ लेना चाहिए, जो हम सबके सामने मुह बाये है और जिसका मुकाबिला उन सिद्धान्तो के अनुसरण से किया जाता, जिनपर उनका सारा जीवन आधारित था।

आधुनिक इतिहास मे किसी भी एक व्यक्ति ने अपने चरित्र की वैयक्तिक शक्ति, ध्येय की पावनता और अगीकृत उद्देश्य के प्रति निस्स्वार्थ निष्ठा से लोगो के दिमागो पर इतना असर नही डाला।

मेरा विश्वास है कि दूसरे पैगम्बरो की भाति उनका महान कार्य आगे चलकर सामने आयगा।

: २५ :

उनका बलिदान एक उदाहरण

हैरी एस० ट्रूमैन

गाधीजी भारत के एक महान राष्ट्र-नेता थे। लेकिन साथ ही वह अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से भी बहुत ऊचे नेता थे। उनकी शिक्षाओ और प्रवृत्तियो का कोटि-कोटि व्यक्तियो पर गहरा असर पडा। भारतवासी उनका बडा आदर करते थे और अब भी करते है। उनका प्रभाव केवल सरकारी मामलो मे ही नही था बल्कि आत्मिक क्षेत्र में भी था। दुर्भाग्य से वे उन आदर्शो की पूर्ण प्राप्ति अपने जीवनकाल में नही देख सके, जिनके लिए उन्होने सघर्ष किया था, लेकिन उनका जीवन और उनके कार्य युग-युग तक उनका सर्वोत्तम स्मारक रहेगे।

मुझे विश्वास है कि अपने लोगो के कल्याण के लिए उनका निस्स्वार्थ सघर्ष भारत के नेताओ के लिए उदाहरणस्वरूप होगा। बहुत-से नेता तो उनके ही अनुयायी है।

मै जानता हू कि केवल भारतवासी ही नही, अपितु दूसरे सब लोग भी गाधी-जी के बलिदान से उनमें मूर्तिमान भाईचारे और शाति के लिए अधिक उत्साह और लगन से काम करने के लिए प्रेरित होगे।

मुझे गांधीजी की हत्या के दुःखद समाचार से बड़ी वेदना है और मैं आपको (प्रधान मंत्री), सरकार को तथा भारतीय निवासियों को अपनी हार्दिक समवेदना भेजता हूं।

एक उपदेष्टा और नेता के रूप में उनके प्रभाव की अनुभूति न केवल भारत में ही हुई है, बल्कि संसार में हर जगह हुई और उनकी मृत्यु से सारे शांतिप्रेमी व्यक्तियों को भारी खेद हुआ है। भाई-चारे और शांति के ध्येय में एक और महापुरुष उठ गया।

मुझे विश्वास है कि उनकी दुःखद मृत्यु से एशिया के लोग सहयोग तथा पारस्परिक विश्वास के ध्येय को, जिसके हेतु गांधीजी ने अपने प्राणों की आहुति दी है, प्राप्त करने के लिए अधिक निश्चय के साथ प्रयत्नशील होंगे।

: २६ :

उनकी महानता का कारण

मिल्टन मेयर

इस वृद्ध पुरुष की अपनी कोई संपत्ति नहीं थी और न कोई ओहदा ही था। जीवन का भी उनके लिए कोई मूल्य न था और अपनी मृत्यु के विषय में भी उन्हें कोई परेशानी न थी। लेकिन दुनिया हिल गई, क्योंकि बिना थल, जल व वायु की शक्ति के, बिना डण्डे अथवा पत्थर के और बिना सत्ता अथवा दूसरों की सहायता के उन्होंने एक साम्राज्य को उखाड़ फेंका और चालीस करोड़ निःशस्त्र व्यक्तियों के देश को स्वतंत्रता प्रदान की।

हममें से बहुत-से गोरे लोग मानते थे कि वह एक शेखचिल्ली और निश्चय ही ऐसे व्यक्ति थे, जिनका असलियत से कोई संबंध न था। हमारे युग के शक्तिशाली व्यक्तियों—रूजवेल्ट, चर्चिल और स्टालिन—की तुलना में वे अपनी चादर और लंगोटी में असर डालने वाले नहीं दीखते थे। लेकिन दुर्बलों से ही तो एक बार कहा गया था कि उन्हें दुनिया का राज्य मिलेगा, और अब हर जगह आदमी आश्चर्य करते हैं कि यह दुर्बलतम व्यक्ति हमारे युग का सबसे शक्तिशाली मनुष्य था। करोड़ों व्यक्ति बिना लाभ अथवा लाभ की संभावना के उनके पदचिह्नों पर चले, उनके पीछे-पीछे जेल गए, प्रार्थना में पहुंचे और उनके साथ करे-

से-कधा भिडाकर आजादी हासिल की।

ईसा ने कहा था, "यदि मेरा साम्राज्य इस दुनिया का है तो मेरे अनुगामी लडाई मे भाग लेगे।" गाधी का साम्राज्य इसी दुनिया का था और फिर भी उनके अनुयायी लडे नही। गाधी ने धार्मिक आदेश का पालन राजनेता के काम मे किया और मेरा विश्वास है कि इस दृष्टि से हम कह सकते है कि ईसा के वाद वही पहले ईसाई राजनेता थे—वाशिंगटन, जैफरसन और लिंकन भी इसके अपवाद नही?

शस्त्रो पर आधारित विचारधाराए, जिनमे हमारी विचारधारा भी शामिल है, टिकी नही रह सकती। वल मे विश्वास करने वाले मालिक और कर्मीजन भी विनाश को प्राप्त होते है। यदि ईसा और गाधी की वाणी सही है तो रूजवेल्ट और हिटलर, वैलिस और टैफ्ट, ट्रूमैन और स्तालिन भी सदा खडे नही रह सकते। यदि गाधीजी का कथन सत्य है तो वे सव लोग जो, इस वात में विश्वास रखते है कि वल, दवाव और सत्ता मे उन्हें सफलता प्राप्त होगी, भूल मे है और यद्यपि उनमे से कुछ आदमी वुरे ध्येयो की अपेक्षा अच्छे ध्येयो के लिए शक्ति का उपयोग करते है, तथापि वे सदा गलती पर ही रहेगे।

यदि यह सही है तो उसकी कल्पना वडी ही भयावह है। चर्चिल के विश्व-साम्राज्य और हिटलर की विश्व-दासता का भाग्य हमारी आखो के सामने है। यदि गाधीजी का कथन सही है और अगर मानवता का प्रेम की भावना मे विश्वास है तो लोकतत्र और साम्यवाद का वलपूर्वक विनाश ईसाई राजनीतिज्ञ के कथन की सत्यता के आगे काले प्रमाण सिद्ध होगे।

लेकिन इसका अर्थ होता है ऐसी तीव्र क्राति जिसका किसी भी क्रातिकारी ने आजतक सकेत नही किया। इसका अर्थ यह भी है कि अपने वैयक्तिक और राज-नैतिक जीवन-व्यवस्था को हम पूर्णतया वदल दें अथवा कुछ भी न वदलें।

: २७ :

महान क्षति

डी० एच० एम० लाजारस

व्रिटिश यहूदियो की ओर से मै श्री गाधी के दुखद निधन पर अपनी गहरी समवेदना और शोक-भरे उद्गार भेजना चाहता हू। ऐसे महापुरुष की क्षति की

पूर्ति नही हो मकती, जिमके पावन-चरित्र और शान्ति के ध्येय के लिए जीवन-व्यापी निष्ठा के कारण उमका नाम चिरस्मरणीय रहेगा ।

भारत ने ही नही, मारे ममार ने उनके आदर्शों को देखा । उनकी पूर्ति कठिन अवश्य थी, फिर भी वे ही व्यावहारिक माधन है, जिनसे मानवता के अन्तिम लक्ष्य तक पहुचा जा मकता है और वे लक्ष्य है—मारी जातियो और धर्मो के लोगो के वीच स्थायी शान्ति और मैत्री की स्थापना ।

: २८ :

संसार का एक महान् नेता

एमन डी वेलेरा

हमारा और भारतीय स्वतत्रता-मग्राम अन्तिम अवस्था में बहुत-कुछ मिलता-जुलता है । हमारे देशवामियो ने अनुभव किया कि एक मामान्य ध्येय की दृष्टि मे वे भाई-भाई है और उन्होने मगल कामना की कि भारत के स्वाधीनता-सग्राम में मफलता प्राप्त हो ।

आज भारत के निवामी शोक-मग्न है और हम भी उनके शोक मे सम्मिलित है । उनका एक ऐमा नेता चला गया, जिमने उनके लिए वर्तमान स्वतत्रता प्राप्त की थी । हमारी प्रार्थना है कि उनकी जीवन की आहुति, जिमके द्वारा उन्होने अपने देश को अपनी निष्ठा पूर्णतया प्रदान की, भारतवामियो को वह भ्रातृत्व शांति प्रदान करे, जो उन्हें बहुत प्रिय थी । यह क्षति अकेले भारत की ही क्षति नही है, वल्कि समार ने एक ऐमा महान नेता खोया है, जिमका प्रभाव उनकी मृत्यु के बाद भी चिरकाल तक वना रहेगा ।

: २९ :

वेजोड़ उदाहरण

जॉन हेन्स होम्स

जब हमारे युग के मभी राजाधिराज और सेनापति, जो आज इतना शोर करते है और जीवन के नाटक मे जिन्हे इतना प्रमुख स्थान प्राप्त है, वे सब विस्मृति

के गर्भ मे समा चुकेगे, महात्माजी फिर भी गौतम वुद्ध के वाद सवसे वडे भारतीय और ईसा के वाद सवसे वडे मानव के रूप मे जीवित और सम्मानित रहेगे।

गावीजी ने भारतीय जनता को अपना सग्राम जारी रखने के लिए अस्त्र प्रदान किये। ये ऐसे अस्त्र थे, जिनकी शक्ति अकल्पनीय थी, जो अतिम विजय की गारटी देने वाले थे, और भगवान की कृपा से, गाधीजी ने जीवनकाल मे ही ऐसी विजय प्राप्त कर ली, जिसे वे देख भी सके। मानव-जाति के इतिहास मे गाधीजी का अहिसात्मक प्रतिरोध का कार्यक्रम अनुपम है। खुद यह सिद्धान्त कि वुरे का नही, वुराई का विरोध करो और अपने शत्रुओ से प्रेम करो, कोई नया नही है। इसकी प्राचीनता कम-से-कम इतनी तो अवश्य है, जितनी कि 'गिरि-प्रवचन' मे नजारथ के ईसा की शिक्षाए। लेकिन गाधीजी ने वह किया जो पहले कभी नही किया गया था। अवतक यह निष्क्रिय प्रतिरोध के सिद्धान्त इक्के-दुक्के व्यक्तियो या छोटे-छोटे समूहो तक ही सीमित थे। गाधीजी ने इस विशिष्ट प्रकार के सिद्धान्त के असख्यो मनुष्यो द्वारा प्रयोग मे लाये जाने के लिए अनुशासन और कार्यक्रम का प्रतिपादन किया। दूसरे शव्दो मे उन्होने इक्के-दुक्के व्यक्तियो के लिए, या छोटे-छोटे व्यक्ति-समूहो के लिए नही, अपितु एक पूरे राष्ट्र के लिए कार्यक्रम रखा और मै कहता हू कि यह वात मानव-जाति के लिए एकदम नई है।

१५ अगस्त १९४७ को भारतीय स्वाधीनता की प्राप्ति के साथ गाधीजी के जीवन के द्वितीय काल के महत्व का सार महान् विद्वान डा फ्रासिस नीलसन द्वारा लिखित पुस्तक "यूरोप की पीडा" (ट्रेजेडी ऑव यूरोप) के इस अश को उद्धृत करके आपके सामने उपस्थित करता हू "गाधीजी अनुपम है। उनकी स्थिति के किसी अन्य व्यक्ति का, जिसने एक महान साम्राज्य को चुनौती दी हो, दूसरा उदाहरण नही मिलता। वे कार्यक्षेत्र मे और वुद्धि मे सुकरात के समान थे। उन्होने अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हिंसा का सहारा लेने वाले राजनीतिज्ञो के तरीको के थोथेपन को विश्व के सामने रखा। इस सघर्ष में आत्मिक सपूर्णता ने राज्य-वल के भौतिक प्रतिरोव पर सफलता पाई।" यही गावीजी की सफलता थी और यही उनकी विजय। इतिहास में यही उनका स्थान निश्चित करती है।

: ३० :

मानवता के प्राण गांधी

पर्लवक

अमेरिका में पेंसिलवेनिया के निकट देहानी क्षेत्रो मे एक गाव है पेरेक्मीर। वही हमारी शातिमयी झोपडी है। ३१ जनवरी को वह दिन पिछले दिनो की तरह ही आरम्भ हुआ। हम सवेरे ही उठने के अभ्यासी है, क्योकि बच्चो को कुछ दूर स्कूल जाना पटता है। नित्य की तरह ही आज हम जलपान के लिए मेज के चारो ओर इकट्ठे हुए और साधारण बातचीत करने लगे। खिडकियो से बाहर घने हिम-पात का दृश्य दिखलाई दे रहा था और आकाश की आभा भूरे रग की हो रही थी। हमारे बच्चो को शका हो रही थी कि कही और अधिक हिम-पात न हो। एका-एक गृहपति कमरे में आये। उनकी मुखमुद्रा गम्भीर थी। उन्होंने कहा, "रेडियो पर अभी एक अत्यन्त भयानक समाचार आया है।"

यह सुनकर हम सब उनकी ओर देखने लगे और तुरन्त ये हृदय-विदारक शब्द सुनाई पटे, "गाधीजी का देहावसान हो गया।"

मेरी इच्छा है कि भारत से हजारो मील दूर स्थित अमेरिका-निवासियो पर गाधीजी की मृत्यु से जो प्रतिक्रिया हुई उसे भारतवासी जानें। हम लोगो ने हृदय को दहला देने वाला यह सवाद सुना। यह साधारण मृत्यु नही है। गाधीजी शांति की प्रतिमूर्ति थे और उन्होंने अपना सारा जीवन अपने देश की जनता की सेवा के लिए लगा दिया था। ऐसे शातिप्रिय व्यक्ति की हत्या कर दी गई। मेरे दस वर्ष के छोटे बच्चे की आखो में आसू छलकने लगे और उसने कहा, "मै चाहता हू कि यदि बन्दूक बनाने का आविष्कार ही न हुआ होता तो बडा अच्छा था।"

हम लोगो में से किसीने भी गाधीजी को नही देखा था, क्योकि जब हम लोग भारतवर्ष में थे तब गाधीजी सदा जेल में ही थे। फिर भी हम सभी उन्हे जानते थे। हमारे बच्चे गाधीजी की आकृति से इतने परिचित थे, मानो गाधी-जी स्वय हमारे साथ घर में ही रहते थे। हमारे लिए गाधीजी ससार के इने-गिने महात्माओ मे से एक महात्मा थे। पृथ्वी के उन गिने-चुने वीरो में से वे एक थे जो अपने विश्वास पर हिमालय की तरह अटल और दृट रहते थे। उनके सबध में हमारी धारणा भी वैसी ही अटल है।

उनकी मृत्यु का समाचार सुनने के वाद हम परस्पर गाधीजी के जीवन और उनकी मृत्यु से होनेवाले सम्भावित परिणामो के सवध मे वातचीत करने लगे। हमे भारतवर्ष पर गर्व है कि महात्मा गाधी जैसे महान व्यक्ति भारत के अधिवासी थे। पर साथ ही हमे खेद भी है कि भारत के ही एक अधिवासी ने उनकी हत्या की। इस प्रकार दु खी और सन्तप्त हम लोग चुपचाप अपने दैनिक कार्यो मे लग गये।

भारतवासी सभवत यह जानकर आश्चर्य करेगे कि हमारे देश मे गाधीजी का यश कितने व्यापक रूप मे फैला। मै उनकी मृत्यु के एक घन्टे वाद सडक से होकर कही जा रही थी कि एकाएक एक किसान ने मुझे रोका और पूछा, "ससार का प्रत्येक व्यक्ति सोचता था कि गाधीजी एक उत्तम व्यक्ति थे तो फिर लोगो ने उन्हे मार क्यो डाला?"

मैने अपना सिर धुना और कुछ वोल न सकी। उसने सकेत से कहा, "जिस तरह लोगो ने महात्मा ईसा को मारा था उसी तरह लोगो ने महात्मा गाधी को मार डाला।"

उस किसान ने ठीक ही कहा था कि महात्मा ईसा की सूली के अतिरिक्त समार की किसी भी घटना की महात्मा गाधी की गौरवपूर्ण मृत्यु से तुलना नही हो सकती। गाधीजी की मृत्यु उन्हीके देशवासी द्वारा हुई। यह ईसा के सूली पर चढाये जाने के वाद दूमरी ही वैमी घटना है। ससार के वे लोग, जिन्होने गाधीजी को कभी नही देखा था, आज उनकी मृत्यु से शोक-सतप्त हो रहे है। वे ऐसे समय में मरे जव उनका प्रभाव दुनिया के कोने-कोने मे व्याप्त हो चुका था।

कुछ दिनो से अमेरिका-निवासियो मे महात्मा गाधी के प्रति वढती हुई श्रद्धा का अनुभव हम कर रहे थे। महात्मा गाधी के प्रति लोगो मे अगाव श्रद्धा थी। महात्मा गाधी के प्रति जनता में वास्तविक आदर था और हम लोगो को यह प्रतीत होने लगा था कि वे जो कुछ कह रहे थे, वही ठीक था।

आज अपने देश के अति उन्नत मैनिकीकरण के मध्य हमारी दृष्टि गाधीजी की ओर जाती थी और यह प्रतीत होता था कि (युद्ध का नही, वल्कि शाति का) उनका मार्ग ही ठीक है। हमारे समाचार-पत्रो ने गाधीजी की इम नई शक्ति को पहचाना। भारत की इस महान व्यक्ति के कारण अन्य देशो में प्रतिष्ठा वढी। महात्मा गाधी के नेतृत्व में होने वाले भारतीय स्वातन्त्र्य युद्ध की ओर हमारी दृष्टि गई, क्योकि उनका ढग राष्ट्रो के वीच के मत-भेदो को शातिपूर्ण ढग से तय करने का था।

मै चाहती हू कि भारत के प्रत्येक नर-नारी के हृदय में विश्वास करा दू कि उनके देश को अब अन्य देशवासी क्या समझते है। आज भारत केवल भारत ही नही है, वरन् वह ससार की मानव-जाति का प्रतीक है। चर्चिल और उनके समान अन्य व्यक्ति हमें बताते रहे कि यह आवश्यक नही है कि दुनिया के सभी लोग स्वतत्र हो। इन लोगो का कहना है कि जगत को यह जान लेना चाहिए कि कुछ थोडे बलवान और शक्तिशाली व्यक्ति ही विश्व पर शासन कर सकते है।

कुछ लोग कहते है कि कोई-न-कोई शासक तो अवश्य ही होगा और यदि हम स्वय शासित होना नही चाहते है तो हमे शासक होना चाहिए। लेकिन हम इस बात पर विश्वास नही करते। हम तो ऐसे ससार की कल्पना कर रहे है, जिसमें जनता स्वय अपना शासन चलाने के लिए स्वतत्र रहे। हमारे लिए उस काल्पनिक ससार का प्रतीक भारतवर्ष है। हम प्रतिदिन भारतीय समाचारो के लिए समाचार-पत्रो को बडी उत्कण्ठा से आखें फाड-फाड कर देखते है। श्री चर्चिल ने जिस 'रक्त-स्नान' की धमकी दी थी, वस्तुत क्या वह घटना सत्य होगी ? क्या यह सत्य है कि लोग अपने मत-भेदो को शाति से न मिटा सकेंगे ? क्या युद्ध सदा होते रहेंगे ?

हम सभी लोगो के लिए, जिनकी धारणा थी कि जनता पर विश्वास करना चाहिए, गाधीजी आशा के केन्द्र थे। यह बात नही है कि हम उस क्षीणकाय चश्मे वाले गाधी को भावुकता में आकर कोई देवता समझ बैठे थे, बल्कि हमारा यह विश्वास था और हम आशा करते थे कि गाधीजी ने मानव-जीवन के मौलिक सत्य को प्राप्त कर लिया था। उनकी मृत्यु पराजय है या विजय ? इसका उत्तर भविष्य में भारतवासी विश्व को अपनी भावी गतिविधि से देंगे।

उन लोगो में, जो समझते थे कि गाधीजी सत्य पथ पर थे, यदि उनकी मृत्यु से नई जाग्रति, नई चेतना और नया सकल्प उत्पन्न हो सके तो यह हमारे और भारत के लिए समान रूप से लाभदायक सिद्ध होगा, क्योकि हम मानवता मे विश्वास करते है। यदि उनकी मृत्यु से हम निराश और पराजित हो जाय तो निश्चय ही ससार की मानवता पराजित हो जायगी।

अमेरिका में गाधीजी की मृत्यु का समाचार धक्के की तरह लगा और कुछ क्षणो के लिए लोग स्तब्ध रह गये। लोग एक दूसरे की ओर आश्चर्य से देखने लगे। नेहरूजी अभी जीवित है। अब ऐसी दुर्घटना न घटेगी। केवल यही नही कि पश्चिमी जगत भारत के किसी और व्यक्ति की अपेक्षा नेहरू को अधिक जानता है, बल्कि वह नेहरू की बुद्धिमत्ता, योग्यता और धैर्य पर विश्वास भी करता है। भारत मे

इतना वर्ग-भेद नही हो जायगा, जिससे निराशा और पराजय के कारण लोग नेहरू को पदच्युत कर दे। यदि ऐसा हुआ तो भारत की बडी हानि होगी और वह पश्चिम जगत की दृष्टि मे नितान्त गिर जायगा।

बुद्धिमान भारतीय ऐसी गलती करने से पूर्व अच्छी तरह सोचेंगे। मै न केवल एक साधारण अमेरिकन की दृष्टि से यह कह रही हू, वल्कि भारत के सबध मे जो कुछ भी जानती हू कि भारत अपने लिए क्या करना चाहता है तथा नेता के रूप मे ससार के लिए क्या कर सकता है, इस दृष्टि से मेरे उक्त विचार है।

भारत का भाग्य अधर मे दोलायमान हो रहा है। भारतीय अपने वर्गभेद की भावना को मिटाकर अपने विशाल हृदय, सत्यनिष्ठ नेताओ के आदेश पर चले और सकुचित विचार वाले उन्नति मे बाधक नेताओ से बचे, तभी उनका कल्याण होगा।

: ३१ :

मानवता का पुजारी

हेनरी एस० एल० पोलक

टाल्स्टाय के बाद ही इतनी जल्दी जिस जमाने ने एक दूसरा महान 'मानवता का पुजारी' पैदा किया है, उसमे रहना कितना अच्छा है। अहा! ये साधु-सन्त, ये पैगम्बर और भक्तगण किस प्रकार वातावरण को स्वच्छ निर्मल बनाते है और आसपास फैले हुए 'सघन तिमिर' मे प्रकाश चमकाते है।

ओलिव श्रीनर ने अपने एक गद्य-काव्य मे 'सत्यरूपी पक्षी' की खोज मे प्रयत्नशील साधक का एक चित्र खीचा है। उसे उस पक्षी की झलक एक बार दिखाई दी। उसकी तलाश मे वह पर्वत-शिखर पहुचता है, जहा जाकर उसका शरीर छूट जाता है। उसके हाथ मे उस पक्षी का गिरा हुआ एक पख है, जिसे छाती पर चिपकाए हुए वह सोया है। गाधीजी अपने जीवन-काल मे जो सन्देश हमारे लिए छोड रहे है, वह हमारे लिए ऐसा ही एक पख सिद्ध हो और हम सचमुच बडभागी होगे, अगर अपनी मृत्यु के समय उसे अपनी छाती से लगाए और अपनाए रहेगे।

: ३२ :

सबसे महान् व्यक्तित्व

रेजिनाल्ड सोरेन्सन

लेनिन और महात्मा गाधी को मै विश्व मे बीसवी शताब्दी का सबसे महान् व्यक्तित्व मानता हू, यद्यपि दोनो एक दूसरे के एकदम विपरीत है। इन दोनो मे गाधीजी वास्तव मे अत्यधिक प्रभावान्वित करने वाले महापुरुष है। मै गाधीजी से प्रतिनिधि-मडल के साथ दो अवसर पर मिला हू। उस समय वे मद्रास की उस इमारत मे निवास कर रहे थे जो वहा की एक विशाल सस्था मे ही थी। उनके द्वार पर सदा ही भीड लगी रहती थी। सवेरे नित्य ही गाधीजी प्रार्थना करते थे, जिसमे सहस्रो की सख्या मे लोग एकत्र होते थे।

हम लोग अर्धवृत्ताकार मे बैठे थे। गाधीजी भूमि पर मध्य मे शुभ्र गद्दे पर बैठे थे। बिजली जल रही थी। प्रथम दिन सध्या के अनन्तर दो घण्टे तक हम लोग पारस्परिक विचार-विनिमय तथा प्रश्नादि करते रहे। उस समय हम लोग तथा महात्माजी के अतिरिक्त और कोई न था। वह अत्यन्त कुशल और विनोदी थे, किन्तु कभी-कभी गम्भीर रूप मे अपने पक्ष के लिए दृढ हो जाते थे। विचार-विनिमय के अवसर पर प्रश्न पर उनका मस्तिष्क सदा कार्य करता रहता था, किन्तु उनके अपने विशेष ढग से। उनकी उदारता की पृष्ठभूमि मे अभेद्य दृढता की भावना विद्यमान रहती थी। कभी-कभी उनके तर्क मे अप्रासगिकता एव परस्पर-विरोधी बाते-सी मालूम पडती थी, किन्तु वह अपने आलोचको के सुधार का सदा स्वागत करते थे। व्यक्तिगत रूप मे अप्रासगिकता के होते हुए भी महात्माजी को अपनी आत्मा मे इस बात का विश्वास रहता था कि विषय के आग्रह एव हित की दृष्टि से उनमे साम्यमूलक सम्बन्ध रहता है। धार्मिक एव कर्त्तव्यशास्त्र की दृष्टि मे महात्माजी की पहुच अत्यन्त गहराई तक थी, लेकिन साधारण राजनीतिज्ञ को सकट मे डाल देती थी। वाद-विवाद मे जो लोग प्रतिशोध एव शत्रुता की भावना पैदा कर लेते है, उन्हे यह बात अत्यन्त विचित्र प्रतीत होगी कि गाधीजी ने 'भारत छोडो' प्रश्न से सम्बद्ध जब समस्त तर्क उपस्थित किया तो वह पूर्णत न्याययुक्त प्रतीत होता था। महात्माजी ने स्पष्ट शब्दो मे कहा, " 'भारत छोडो' योजना मे अग्रेजो के प्रति तनिक भी घृणा का भाव नही। यदि हम उनसे डरते है तो घृणा की भावना उत्पन्न

होती है, यदि भय के भाव का लोप हो जाता है तो घृणा का कही अस्तित्व ही नही रहता।"

महात्माजी जो कुछ कहते थे वह शुद्ध और सच्चे अर्थ में। वह अपने देश-वासियो को सत्य और स्वातन्त्र्य के लिए बिना किसी विरोधी भावना से युक्त हुए आगे कदम बढाने के लिए कहते थे। विरोधियो के लिए हृदय मे भ्रातृ-भावना से परिपूर्ण होने का सदा उनका आदेश रहता था। यह एक ऐसी असाधारण वस्तु है जो विरले राजनीतिक नेता में पाई जाती है।

महात्मा गाधी का व्यक्तित्व हम ब्रिटेनवासियो को कुछ विचित्र और चुनौती देने वाला भले ही प्रतीत हो, किन्तु इस बात मे तनिक सन्देह नही किया जा सकता कि करोडो भारतीयो की आवश्यकताओ एव आशाओ के वे मूर्त्तरूप थे। भारतीय जनता के लिए वह राजनैतिक नेता मात्र नही, अपितु आराध्यदेव 'महात्मा' थे। प्राय सभी प्रमुख ब्रिटिश नेताओ ने इस बात को स्वीकार किया है कि महात्माजी-सा प्रभावशाली अन्य कोई नही। विरोधी आलोचना तथा विपरीत विकास के लक्षणो के बावजूद पूर्ववत् शान्ति एव साम्य की स्थिति मे रहते थे।

: ३३ :

हमारा कर्त्तव्य

मीरा बहन

मेरे सिर्फ दो संगी थे—ईश्वर और बापू—और अब दोनो एक हो गए है।

जब मैंने बापू की मृत्यु की खबर सुनी तो मेरी आत्मा को बन्दी बनाने वाले दरवाजे खुले और बापू की आत्मा ने उसमे प्रवेश किया। उस पल मे शाश्वतता की नई भावना मुझमें आ गई है।

यह सच है कि प्रिय बापू जीते-जागते रूप में हमारे बीच नही रहे, लेकिन उनकी पवित्र आत्मा तो आज हमारे ज्यादा नजदीक है। एक समय बापू ने मुझसे कहा था, "जब मेरा यह शरीर नही रहेगा तब भी हम एक-दूसरे से जुदा नही होगे। तब मै तुम्हारे ज्यादा नजदीक आ जाऊगा। यह शरीर तो बाधा रूप है।" ये शब्द मैंने श्रद्धा से सुने थे। अब मै अपने अनुभव से बापू के उन शब्दो का दिव्य सत्य जान पाई हू।

क्या बापू को आज होने वाली घटना का ज्ञान था ? मेरे दिल्ली से ऋषीकेश जाने से पहले, दिसम्बर महीने की एक शाम को बापू से मैंने कहा था, "बापू, क्या गोशाला का उद्‌घाटन करने और हिन्दुस्तान की गरीब-दुखी गाय को आशीर्वाद देने का समय निकाल सकेंगे ?" बापू ने जवाब दिया, "मेरे आने का खयाल मत रखो ।"—और फिर मानो अपने आपसे कुछ कह रहे हो, इस तरह उन्होंने आगे कहा, "मुर्दे से किसी तरह की मदद की आशा रखने से क्या फायदा ?" ये शब्द इतने भयानक थे कि मैंने किसीके सामने उन्हे नही दोहराया और ईश्वर की प्रार्थना के साथ उन्हें अपने दिल में रख लिया । उनका अनशन आरम्भ हुआ और समाप्त हुआ । मुझे आशा हो गई कि बापू के इन शब्दो का मतलब अनशन के साथ खतम हो गया, लेकिन ये शब्द तो भविष्यवाणी के समान थे और वह भविष्यवाणी पूरी हुई ।

उस विधिनिर्मित शाम को जब मै ध्यान मे अचल बनकर बैठी थी, मैंने सारी दुनिया मे गुजरने वाली सताप की कपकपी का अनुभव किया । मनुष्य-जाति की मुक्ति के लिए एक बार फिर अवतार का खून बहा और धरती इस भयानक पाप के डर और बोझ से कराह उठी ।

वह पाप एक आदमी का नही है । वह युग-युग में सारी दुनिया को ढक लेने वाला पाप है । उसे एकमात्र ईश्वर के भक्तो का बलिदान ही रोक सकता है ।

अब बापू हमारे लिए जो काम छोड गये है, उसे पूरा करने में हमे जमीन आसमान एक कर देना चाहिए । बापू हम सबके लिए—हर मर्द, औरत और बच्चे के लिए—जिये और मरे । वे लगातार काम करते-करते जिये और इसीलिए शहीद की मौत मरे कि हम नफरत, लालच, हिंसा और झूठ के बुरे रास्ते से पीछे लौटे । अगर हमें अपने पापो का प्रायश्चित करना है और बापू के पवित्र उद्देश्य को आगे बढाने में हिस्सा लेना है तो हर तरह की साम्प्रदायिकता और दूसरी बहुत-सी बातें खत्म होनी चाहिए । चोर-बाजारी, रिश्वतखोरी, तरफदारी, आपसी द्वेष और उसी तरह हिंसा और असत्य के दूसरे काले रूपो को जड-मूल से मिट जाना चाहिए । इनके विरुद्ध हमें मजबूती से और बिना हिचकिचाहट से जिहाद बोलना होगा । बापू प्रेम और दया के सागर थे, लेकिन बुराई के विरुद्ध लडने में वे बडे कठोर थे ।

बापू ने भीतरी बुराई पर विजय पा ली थी, इसीलिए बाहर की बुराई के सामने वे लड सके थे । भगवान हमें इस तरह पवित्र बनावे कि हम अपने सामने पडे हुए भारी काम के लायक बन सकें ।

: ३४ :

मृत्यु से शिक्षा

राजेन्द्रप्रसाद

महात्मा गाधी का पार्थिव शरीर हमारे साथ अब नही रहा। उनके चरण अब स्पर्श करने को हमे नही मिलेगे, उनका वरदहस्त हमारे कधो पर अब थपकिया नही दे सकेगा, उनकी वाणी अब हमे सुनने को नही मिलेगी, उनके नयन अब अपनी दया से हमे सराबोर नही कर सकेगे, पर उन्होने मरते-मरते भी हमे यह सीख दी कि शरीर नश्वर है, आत्मा अमर है। उनकी आत्मा हमारे सब कर्मो को देख रही है। जो काम उन्होने अधूरा छोडा है, हमे उसको पूरा करना है और यही एकमात्र रास्ता है, जिससे हम उनकी आत्मा, उनकी स्मृति कायम रख सकते है। यो तो जो कुछ उन्होने किया वह उनको अमर बनाने के लिए ससार के सामने हमेशा बना रहेगा और किसी दूसरे प्रकार के स्मृति-चिन्ह की आवश्यकता नही है, फिर भी मनुष्य अपनी सान्त्वना के लिए कुछ-न-कुछ करता है। इसलिए सोचा गया है कि गाधीजी की स्मृति को कायम रखने के लिए जो रचनात्मक काम उन्हे प्रिय थे, उनको बहुत जोरो से चलाया और फैलाया जाय। वे रचनात्मक कार्य के द्वारा अपने सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तो को कार्य-रूप मे फूलता-फलता देखना चाहते थे। यही मानकर हम भी उनके सिद्धान्तो को सच्चे रूप मे समार के सामने रख सकेगे, इसलिए उसी कार्यक्रम को चलाना, बढाना, प्रसार करना उनके सिद्धान्तो को कार्य रूप मे परिणत करना है।

आज मै इसी बात पर विचार करना चाहता हू कि गाधीजी की हत्या क्यो हुई, किस कारण से की गई, अहिंसा के एकमात्र अनन्य पुजारी हिंसा के शिकार क्यो बनाये गए? भारतवर्ष में इधर कई वर्षो मे साम्प्रदायिक झगडे इतने चलते आ रहे हैं और साम्प्रदायिक भेद-भाव का इतना जोरो से प्रचार किया गया कि उसीके फलस्वरूप आज यह दुर्घटना हुई। महात्मा गाधी ने अपनी सारी शक्ति साम्प्रदायिक भेद-भाव के विरुद्ध लगा दी थी। वह आदमी जिसने हिन्दू-धर्म, हिन्दू-समाज और हिन्दुस्तान को अपनी गिरी हुई अवस्था मे उठाकर इस शिखर तक पहुचाया था, उसका अहित स्वप्न में भी सोचा नही जा सकता था, पर जो लोग सकुचित विचारो के है, दूर तक देख नही सकते, धर्म को समझ नही सकते, उन्होने ऐसा समझा और

इसीका यह फल हुआ। क्या इस हत्या से हिन्दू-धर्म या हिन्दू-समाज की रक्षा हुई या हो सकती है? हिन्दू-समाज के इतिहास मे लड़ाइयों का उल्लेख है, पर जितने भी युद्ध हुए वे सब धर्म-युद्ध हुए। धर्म-युद्ध के नियमानुसार किसीको कभी इस तरह धमकी देकर किसीने नही मारा। किसी महात्मा की हत्या का तो कही कोई उल्लेख नही मिलेगा। यह पहला अवसर हिंदू-समाज के इतिहास में है कि किसी हिंदू पर ऐसे पाप का लाञ्छन लगा है और इसमें संदेह नही कि यह ऐसा धब्बा है जिसको कोई मिटा नही सकता। हत्या किसकी की गई? गाधीजी के शरीर की? नही। गाधीजी का पार्थिव शरीर, वे खुद कहा करते थे, कुछ चीज नही है। जो गोली लगी वह गाधीजी के हृदय मे नही लगी, वह तो हिन्दू-धर्म और हिन्दू-समाज के मर्म-स्थल में लगी। इसलिए आज प्रत्येक भारतवासी का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने नेत्र खोले और देखे कि क्या यह साम्प्रदायिक पाप उसके दिल में भी कोई स्थान रखता है और यदि रखता हो तो उसे निकाल दे, अपना हृदय साफ कर ले और तभी वह दूसरे के हृदय को समझ सकेगा। हमारा बड़ा भारी दोष है कि हम अपने पापो, बुरे रास्तो और कुभावनाओ को, जिनको हम सबसे अधिक जानते और देखते है, न देखने और न समझने की कोशिश करते है और दूसरो के दोषो की खोज मे अपनी आखे और अपने विचार दौड़ाया करते है। आवश्यकता है कि हम अपनी आखो को अन्तर्मुखी बनाकर देखे। यदि हममे से प्रत्येक मनुष्य अपनेको सुधार ले तो सारा संसार सुधर सकता है। गाधीजी ने यही सिखाया है और आज यदि भारत को जीवित रहना है तो उन्हीके सत्य और अहिसा के रास्ते पर चलकर। भारत स्वराज्य तक पहुचा है, पर स्वराज्य अबतक सुराज नही हो सका क्योकि हम उस रास्ते पर दृढ निश्चय के साथ नही चल रहे है।

काग्रेसजन, जो गाधीजी के पीछे चलने का दम भरा करते थे, जिनमें बहुतेरो ने बहुत-कुछ त्याग भी किया, आज समझ रखे कि सबकी परीक्षा हो रही है। प्रत्येक के सामने यह प्रश्न है कि क्या सचमुच वह इस हत्या के कुछ अश मे भागी नही है? यदि हममें से हरेक गाधीजी के पथ पर चला होता तो यह दुर्घटना असभव थी। अपनी कमजोरियो के कारण उनके बताये पथ पर हमारे न चलने का ही यह दुष्परिणाम हमे देखना पड़ा। अब भी स्वराज्य को सुराज बनाने मे जो कुछ बाकी है अगर उसको पूरा करना है तो हम व्यक्तिगत भेद-भाव छोड़ दे, साम्प्रदायिक भेद-भाव उठा दें और सच्चे त्याग के साथ देश की सेवा में लगें। हमे यह भूल जाना चाहिए कि त्याग का समय चला गया और भोग का समय आ गया। जब हथकड़ियो,

जेलखानो, लाठियो और गोलियो के सिवाय हमें कुछ दूसरा मिल ही नही सका था तो हम त्याग क्या कर सकते थे ? हा अकर्मण्य वनकर कायरतापूर्वक हम भाग सकते थे। जव हमारे हाथो मे कुछ-न-कुछ अधिकार हो, जव हमको इसका अवसर हो कि हम अपने हाथो को गरमा सके, अपनी प्रतिष्ठा को ससार की आखो मे वहुत वढा सके, और अपनेको एक वडा अधिकारी दिखला सके फिर भी उस अधिकार की परवाह न कर सेवा का ही खयाल रखे, धन के लोभ मे न पडे और सादगी में वडप्पन देखे, तव हम कुछ त्याग दिखला सकते है। आज जव हम कुछ सासारिक वस्तुओ को प्राप्त कर सकते है तो उनके त्यागने को ही त्याग कहा जा सकता है। जव वह प्राप्य नही था, उस वक्त त्याग क्या हो सकता ?

गाधीजी की मृत्यु हममे यह भावना एक वार और जागृत कर दे, यही ईश्वर से प्रार्थना है और इसीमे देश का कल्याण है।

: ३५ :

गांधीजी की सिखावन

विनोवा

अभी इस समय दिल्ली मे जमना नदी के किनारे पर एक महान् पुरुष की देह अग्नि मे जल रही है। हम यहा जिस तरह अव प्रार्थना कर रहे है, उसी तरह हिन्दुस्तान भर में प्रार्थना चल रही है। कल के ही दिन शाम के पाच वज गए थे। प्रार्थना का समय हुआ और गाधीजी प्रार्थना के लिए निकले। प्रार्थना के लिए लोग जमा हुए थे। गाधीजी प्रार्थना की जगह पहुँचे ही थे कि किसी नौजवान ने आगे झपटकर उनकी देह पर गोलिया चलाईं। गाधीजी की देह गिर पडी। खून की धारा वहने लगी। वीस मिनट के वाद देह का जीवन समाप्त हुआ। थोडे ही समय पहले सरदार वल्लभ-भाई पटेल एक घटा तक उनसे चर्चा करके लौट रहे थे। रास्ते में ही उन्हें खवर मिली और वे लौट आये। विडला-हाउस में पहुँचने पर जो दृश्य उन्हे दिखाई दिया, उसका वर्णन उन्होने कल रेडियो पर किया। यह आपमें से वहुतो ने सुना ही होगा। लेकिन यहा देहात से भी कुछ भाई आये है, उन्होने यह नही सुना होगा। सरदार वल्लभ-भाई ने एक वात वडे महत्त्व की कही। वह यह कि गाधीजी के चेहरे पर दया-भाव तथा माफी का भाव, यानी अपराधी के प्रति क्षमा-वृत्ति दिखाई देती थी। आगे

चलकर वल्लभभाई ने कहा कि इस समय कितना ही दु ख क्यो न हुआ हो, गुस्सा नही आने देना चाहिए। और यदि आये भी तो उसे रोकना चाहिए। गाधीजी ने जो चीज हमें सिखाई, उसका अमल उनके जीते जी हम नही कर पाये। लेकिन अब उनकी मृत्यु के बाद तो हम अमल करें।

ऐसी ही घटना पाच हजार वर्ष पहले हिन्दुस्तान मे घटी थी। भगवान् श्रीकृष्ण की उमर ढल गई थी। जीवन भर उद्योग करके वे थक गए थे। गाधीजी की तरह उन्होने जनता की निरन्तर सेवा की थी। थके हुए एक बार वे जगल मे किसी पेड के सहारे आराम ले रहे थे। इतने मे एक व्याध उस जगल मे पहुँचा। उसे लगा कि कोई हिरन पेड के सहारे बैठा है। शिकारी जो ठहरा! उसने लक्ष्य साधकर तीर छोडा। तीर भगवान् के पाव मे लगा और खून की धारा बहने लगी। शिकारी अपना शिकार पकडने के इरादे से नजदीक आया। लेकिन सामने प्रत्यक्ष भगवान् को जख्मी पाया। उसे बडा दु ख हुआ। अपने हाथो से बडा पाप हुआ ऐसा सोचकर वह दु खी हुआ। भगवान् कृष्ण तो थोडे ही समय मे चल बसे। लेकिन मरने से पहले उन्होने उस व्याध से कहा, "हे व्याध! डरना नही। मृत्यु के लिए कुछ-न-कुछ निमित्त बनता ही है। तू निमित्त बन गया।" ऐसा कहकर भगवान् ने उसे आशीर्वाद दिया।

इसी तरह की घटना पाच हजार वर्ष के बाद फिर से घटी है। यो देखने में तो ऐसा दिखाई देगा कि उस व्याध ने अज्ञानवश तीर मारा था, यहा इस नौजवान ने सोच-समझकर, गाधीजी को ठीक पहचानकर, पिस्तौल चलाई। इसी काम के लिए वह दिल्ली गया था। वह दिल्ली का रहने वाला नही था। गाधीजी के प्रार्थना के लिए जाते हुए वह उनके पास पहुँचा और बिल्कुल उनके नजदीक जाकर उसने गोलिया छोडी। ऊपर से यो दिखाई देगा कि गाधीजी को वह जानता था। लेकिन वास्तव में ऐसा नही था। जैसा वह व्याध अज्ञानी थी, वैसा ही यह युवक भी अज्ञानी था। उसकी यह भावना थी कि गाधीजी हिन्दूधर्म को हानि पहुँचा रहे है, इसलिए उसने उनपर गोलिया छोडी। लेकिन दुनिया मे आज हिन्दूधर्म का नाम यदि किसीने उज्ज्वल रखा तो वह गाधीजी ने ही रखा है। परसो उन्होने खुद ही कहा कि "हिन्दूधर्म की रक्षा करने के लिए किसी मनुष्य को नियुक्त करने की जरूरत यदि भगवान को महसूस हुई तो इस काम के लिए वह मुझे ही नियुक्त करेगा।" इतना आत्म-विश्वास उनमे था। उन्हे जो सत्य मालूम होता था वह वे साफ-सीधे कह देते थे। बडे लोग अपनी रक्षा के लिए 'बाडीगार्ड' यानी देह-रक्षक रखते है। गाधीजी ने ऐसे देह-रक्षक कभी नही रखे। देह को वे तुच्छ समझते थे। मृत्यु के पहले ही वह मरकर रहे थे।

निर्भयता उनका व्रत था। जहा किसी फौज को भी जाने की हिम्मत न हो, वहा अकेले जाने की उनकी तैयारी थी।

जो सत्य है, लोगो के हित का है, वही कहना चाहिए, फिर भले ही किसीको अच्छा लगे, वुरा लगे, या उसका परिणाम कुछ भी निकले, ऐनी उनकी वृत्ति थी। वे कहते थे, "मृत्यु से डरने का कोई कारण ही नही है, क्योकि हम सव ईश्वर के ही हाथ मे है। हमसे जवतक वह सेवा लेना चाहता है, तवतक लेगा और जिस क्षण वह उठा लेना चाहेगा, उस क्षण उठा लेगा। इसलिए जो सत्य लगता है, वही कहना हमारा धर्म है। ऐसे समय यदि मै शायद अकेला भी पड जाऊँ और सारी दुनिया मेरे खिलाफ हो जाय तो भी मुझे जो सत्य दिखाई देता है, वही मुझे कहना चाहिए।" उनकी इस तरह की निर्भीकतापूर्ण वृत्ति रही और उनकी मृत्यु भी किस अवस्था मे हुई! वे प्रार्थना की तैयारी मे थे। यानी उस समय उनके चित्त मे भगवान् के सिवा दूसरा विचार नही था। उनका सारा जीवन ही हमने सेवामय तथा परोपकारमय देखा है। परन्तु फिर भी प्रार्थना की भावना और प्रार्थना का समय विशेप पवित्र कहना चाहिए। राजनैतिक आदि अनेक महत्त्व के कामो मे वे रहते थे। लेकिन उनकी प्रार्थना का समय कभी नही टला। ऐसे प्रार्थना के समय ही देह मे से मुक्त होने के लिए मानो भगवान् ने आदमी भेजा। अपना काम करते हुए मृत्यु हुई, इस विपय का उनके दिल का आनन्द और निमित्तमात्र वने हुए गुनहगार के प्रति दयाभाव, इस तरह का दोहरा भाव उनके चेहरे पर मृत्यु के समय था, ऐसा सरदारजी को दिखाई दिया।

गाधीजी ने उपवास छोडा, उस समय देश मे शाति रखने का जिन्होने वचन दिया उनमे काग्रेस, मुसलमान, सिख, हिन्दू महासभा, राष्ट्रीय स्वयमेवक दल आदि सव थे। हम प्रेम के साथ रहेगे, ऐसा उन्होने वचन दिया और उस तरह रहने भी लगे थे कि एक दिन प्रार्थना-सभा मे गाधीजी को लक्ष्य करके किसी ने वम फेका। वह उन्हे लगा नही। उस दिन प्रार्थना-सभा मे गाधीजी ने कहा, "मै देश और धर्म की सेवा भगवान् की प्रेरणा से करता हूँ। जिस दिन मै चला जाऊँ, ऐसी उसकी मर्जी होगी, उस दिन वह मुझे ले जायगा। इसलिए मृत्यु के विपय मे मुझे कुछ भी विशेप नही मालूम होता है।" दूसरा प्रयोग कल हुआ। भगवान् ने गाधीजी को मुक्त किया।

हम सव देह छोडकर जानेवाले है। इसलिए मृत्यु के विपय में तनिक भी दु ख मानने का कारण नही है। माता की अपने दो-चार वच्चो के विपय में जो वृत्ति रहती है वह दुनिया के सव लोगो के विपय में गाधीजी की थी। हिंदू, हरिजन, मुसलमान,

ईसाई, और जिन राज्यकर्त्ताओं से वे लड़े, वे अंग्रेज, इन सबके प्रति उनके दिल में प्रेम था। सज्जनों पर जिस तरह प्रेम करते है, वैसे दुर्जनों पर भी करो, शत्रु को प्रेम से जीतो, ऐसा मंत्र उन्होंने दिया। उन्होंने ही हमें सत्याग्रह सिखाया। खुद आपत्तियां झेलकर सामनेवालों को जरा भी खतरा न पहुँचे, यह शिक्षा उन्होंने हमें दी। ऐसा पुरुष देह छोड़कर जाता है, तब वह रोने का प्रसंग नहीं होता। मां हमें छोड़कर जाती है, उस समय जैसा लगता है, वैसा गांधीजी के मरने से लगेगा जरूर। लेकिन उससे हममें उदासी नहीं आनी चाहिए।

एकनाथ महाराज ने भागवत में कहा है, "मरने वाले गुरु का और रोने वाले चेले का दोनों का बोध व्यर्थ गया।" एक था मृत्यु से डरने वाला गुरु। मृत्यु के समय वह कहने लगा, "अरे, मैं मरता हूं।" तब उसके शिष्य भी रोने लगे। इस तरह गुरु मरने वाला और चेला रोने वाला दोनों ने ही जो बोध (ज्ञान) प्राप्त किया था, वह फजूल गया—ऐसा एकनाथ महाराज ने कहा है।

गांधीजी मृत्यु से डरने वाले गुरु नहीं थे। जिस सेवा में निष्काम भावना से देह लगाई जाय, वह सेवा ही भगवान् की सेवा है। वह करते हुए जिस दिन वह बुलाएगा, उस दिन जाने को तैयार रहे, ऐसी सिखावन उन्होंने हमे दी। तदनुसार ही उनकी मृत्यु हुई। इसलिए यह उत्तम अन्त हुआ, ऐसा हम पहचान ले और काम करने लग जायें।

कुछ दिन पहले ही आश्रम के कुछ भाई गांधीजी से मिलने गए थे। उस समय उनका उपवास जारी था। उपवास से जिंदा रहेंगे या मर जायंगे, इसका किसको पता था? आश्रम के भाइयों ने उनसे पूछा, "आप यदि इस उपवास से चल बसे तो हम कौन-सा काम करे?" गांधीजी ने जवाब दिया, "इस तरह का सवाल ही आपके सामने कैसे खड़ा हुआ? मैंने तो आपके लिए काफी काम रक्खा है। हिन्दुस्तान में खादी करनी है। खादी का शास्त्र बनाना है। इतना बड़ा काम आपके लिए होते हुए "क्या करें?" ऐसी चिन्ता क्यों होती है?"

इसलिए हमारे लिए उन्होंने जो काम रख छोड़ा, वह हमे पूरा करना चाहिए। असंख्य जातियां और जमातें मिलकर हम यहां एक साथ रहते है। चालीस करोड़ का अपना देश है। यह हमारा बड़ा भाग्य है। लेकिन एक-दूसरे पर प्रेम करते हुए रहेंगे, तभी यह होगा। इतना बड़ा देश होने का भाग्य शायद ही मिलता है। हमारे देश मे अनेक धर्म है, अनेक पंथ है। मैं तो यह अपना वैभव समझता हूँ। लेकिन हम सब प्रेम के साथ रहेंगे, तभी यह वैभव सिद्ध होगा। हम प्रेम से रहे, यही गांधीजी ने

अपने अतिम उपवास से हमे सिखाया है। बच्चे एक-दूसरे के साथ प्रेम से रहे, इसलिए जिस तरह माता भोजन छोड देती है, वैसा ही वह उपवास था। सारे मनुष्य एक से है, यह उन्होने हमे सिखाया। हरिजन-सेवा, खादी-सेवा, ग्राम-सेवा, भगियो की सेवा आदि अनेक सेवा-कार्य हमारे लिए छोड गए है।

सबके दिल एक विशेष भावना से भरे हुए है। लेकिन मुझे कहना यह है कि हम केवल शोक करके न बैठे रहे। हमारे सामने जो काम पडा है, उसमे लग जायँ। यह जो मै आपको कह रहा हूँ, वैसा ही आप मुझे भी कहे। इस तरह एक दूसरे को बोध देते हुए हम सब गाधीजी के बताए काम करने लग जाय। गीता मे और कुरान में कहा है कि भक्त और सज्जन एक दूसरे को बोध देते है और एक दूसरे पर प्रेम करते है। वैसा हम करे। आज तक बच्चो की तरह हम कभी-कभी झगडते भी थे। हमे वे सँभाल लेते थे। वैसा सबको सँभालने वाला अब नही रहा है, इसलिए एक दूसरे को बोध देते हुए और एक दूसरे पर प्रेम करते हुए हम सब मिलकर गाधीजी की सिखावन पर चले।

: ३६ :

निपुण कलाकार

जवाहरलाल नेहरू

सन् १९१६। ३२ वर्ष से ऊपर—जब मैंने बापू को पहले-पहल देखा था, और तबसे एक युग बीत गया है और जब हम बीते दिनो की ओर देखते है तो दिमाग में भावो का ढेर-सा लग जाता है। हिन्दुस्तान के इतिहास और कहानी का वह कैसा अजीब जमाना था, जबकि अपने तमाम चढाव-उतार और हार-जीत के बावजूद वह एक सगीत और वीरता के गुणो से भरा था, यहाँतक कि हमारी नाचीज़ ज़िदगी तरह-तरह की चमक से भर गई थी, क्योकि उस युग में हम जीवित थे और कम या ज्यादा अशो मे हिन्दुस्तान के उस महान् नाटक के पात्र थे।

यह युग दुनिया भर में इन्कलाबो, उपद्रवो और उत्तेजक घटनाओ का युग था। फिर भी हिन्दुस्तान की घटनाएँ अपनी नवीनता और मौलिकता के कारण अलग छिकी हुई मालूम पडती है, क्योकि इनकी पृष्ठभूमि बिल्कुल जुदा थी। अगर किसी आदमी ने बापू को पूरी तरह जाने बिना इस युग को समझने की कोशिश की

हो तो उसे अचरज होगा कि हिन्दुस्तान मे यह सब क्यो और कैसे हुआ ? इसकी व्याख्या करना कठिन है। सिर्फ बेजान दलीलो मे इसे समझना और कठिन है। ऐसा कभी-कभी होता है कि एक आदमी या राष्ट्र तक किसी भावना के प्रवाह में एक खास तरह के काम की दिशा मे वह जाता है। यह काम कभी अच्छा होता है, कभी बुरा भी। परन्तु जब उत्तेजना खत्म हो जाती है तो इन्सान बहुत जल्दी अपनी क्रियाशीलता या निष्क्रियता की स्वाभाविक अवस्था पर आ जाता है।

इस जमाने मे हिन्दुस्तान के बारे मे सिर्फ यह ताज्जुब की बात नही थी कि उसने एक ऊचे पैमाने पर कुछ काम किये, लेकिन यह भी कम अचरज की बात नही थी कि यह काम ऊचे पैमाने पर वह एक लम्बे अर्से तक करता रहा। बेशक यह एक लाजवाब काम था। जबतक कोई उस जोरदार शख्सियत पर गौर नही करता, जिसने इस जमाने को बिल्कुल अपने तरीके से ढाल दिया था, तबतक उसे नही समझा जा सकता। एक विशाल मूर्ति के समान वे इस सदी के हिन्दुस्तान के आधे इतिहास मे पैर फैलाए खडे है। यह मूर्ति सिर्फ जिस्मानी नही, बल्कि दिमागी और रूहानी भी थी।

हम बापू के लिए दु खी है और अपनेको अनाथ महसूस करते है। उनकी उस आला जिन्दगी की ओर मुडकर देखने पर दु ख की कोई बात नजर नही आती। इतिहास मे बहुत कम लोगो को अपनी जिन्दगी मे ही अपने उसूलो को इतना सफल होते देखने की किस्मत मिली है। उन्हे हमारी नाकामयाबियो पर दु ख था और वे इसलिए दु खी थे कि हिन्दुस्तान को वे ज्यादा ऊचाई तक न उठा सके। इस रज और गम की बात को बहुत आसानी से समझा जा सकता है। फिर भी यह कौन कह सकता है कि उनकी जिन्दगी नाकामयाब थी ? उन्होने जिस चीज को छुआ उसे काबिल और कीमती बना दिया। उन्होने जो कुछ किया, उसके ठोस नतीजे निकले। शायद नतीजे इतने ऊचे न रहे हो, जितने उन्होने सोचे थे। किसीका यह खयाल बन सकता है कि उन्होने जिस दिशा मे कोशिश की, उसमे नाकामयाब कभी नही हुए। गीता के उप-देश के अनुसार उनकी सारी कोशिशे नतीजे के प्रति बिना लगाव के तटस्थ भाव मे होती थी और इसीलिए नतीजे खुद उनके पास आते थे।

गैरमामूली हिम्मत, कठोर काम और मेहनत मे भरी उनकी लबी जिन्दगी के दौरान मे शायद ही कभी कोई गैरवाजिब बात होती हुई दिखलाई दी हो। सब तरफ फैले उनके काम धीरे-धीरे एक दूसरे मे समा गए थे—उन्होने एक लय का रूप ले लिया था और उससे निकला हुआ एक-एक शब्द, एक-एक इशारा

इस लय मे बिल्कुल मौजूँ बैठता था और इस तरह से बिना जाने एक निपुण कलाकार बन गए थे , क्योकि उन्होने जिन्दा रहने की कला सीखी थी, हालाकि जिस जिन्दगी को उन्होने अपनाया, वह दुनिया की जिन्दगी से बिल्कुल जुदा थी । उनकी जिन्दगी से यह साफ हो गया था कि सच्चाई और अच्छाई की तलाश दूसरी बातो के साथ-साथ इन्सानी जिन्दगी को कलाकारी की ओर ले जाती है।

वे जैसे-जैसे बूढे होते जाते थे, उनका शरीर उनके भीतर की ताकतवर आत्मा का वाहक बनता जाता था। लोग जब उनकी बातो को सुनते या उनको देखते थे, तो उनके शरीर को बिल्कुल भूल जाते थे और इसलिए वे जहाँ बैठते थे, एक मदिर बन जाता था, जिस जमीन पर चलते थे, वह एक ऋषि-भूमि बन जाती थी।

उनकी मौत तक मे एक शानदारपूर्ण कलाकारी थी । हर निगाह से उस आदमी और उसके जीवन के अनुरूप ही यह उत्कर्ष था। इसमे शक नही कि इस मौत ने उनकी जिन्दगी की शिक्षा को और कीमती बना दिया था। एकता के मकसद के लिए वे मरे—वह एकता जिसके लिए उन्होने अपनी तमाम जिन्दगी को खपा दिया था, और जिसके लिए वे बिना रुके हमेशा काम करते रहे, खासकर पिछले सालो मे । उनकी मौत अचानक हुई, ऐसी मौत जिसमे मरना हर आदमी चाहेगा । बुढापे मे होने वाली न तो कोई लम्बी बीमारी उनके पास फटकी थी, न शरीर पीला पडा था और न दिमाग मे भूलने का रोग शुरु हुआ था। तब हम क्यो उनके लिए दु खी हो ? हमारे दिमाग मे उनकी याद एक ऐसे गुरु की याद है, जिसका एक-एक कदम आखीर तक रोशनी से भरा था, जिसकी मुस्कराहट दूसरो को भी छूत लगाने वाली थी, जिसकी आँखो मे हमेशा हँसी नाचती थी । देह और दिमाग के साथ कमजोर होने वाली उनकी ताकत की याद को हम स्थान नही देगे। वे अपनी ऊची-से-ऊची ताकत और अधिक-से-अधिक बल के साथ जिये और मरे। अपने पीछे हमारे दिमागो मे और हमारे युग के दिमाग मे एक ऐसी तस्वीर छोड गए है, जो कभी-भी धुधली नही पडेगी ।

यह तस्वीर कभी धुधली नही पडेगी। लेकिन उन्होने इससे बहुत-कुछ ज्यादा किया है, क्योकि अब वे हमारे दिमाग और आत्मा के ज़र्रे-ज़र्रे मे घुल गये है और इस तरह उन्हे बदल दिया है, एक नया रूप दे दिया है। गाधीजी की पीढी गुजर जायगी, परन्तु वह गुण सदा अमर रहेगा और आने वाली हर पीढी पर अपना असर डालेगा, क्योकि आज वह भारत की आत्मा का एक जुज़ बन गया है। ठीक जिस समय इस मुल्क मे हमारी आत्मा गरीब हो रही थी, बापू हमारे बीच हमे मजबूत और

हमें खुशहाल बनाने आये। इस बीच उन्होने जो ताकत हमे दी, वह एक क्षण, एक दिन या एक वर्ष तक ही ठहरने वाली नही थी, बल्कि वह हमारी राष्ट्रीय विरासत मे एक बढोतरी थी।

गाधीजी ने हिन्दुस्तान और दुनिया के लिए और हमारी कमजोर हस्तियो तक के लिए एक बहुत बडा काम किया है। इस काम को उन्होने बहुत खूबी के साथ अजाम दिया है। अब हमारी बारी है कि हम उनकी पाक याद को हमेशा कायम रक्खें और उनके काम को पूरी कुर्बानी के साथ सदा आगे बढाते रहे और इस तरह समय-समय पर की गई अपनी प्रतिज्ञाओ का पालन कर सके।

× × ×

और तब गाधी आये। वे ताजी हवा के मानिन्द एक तेज़ धारा की तरह थे, जिसने हमें अपने शरीर को फैलाने और लम्बी साम खीचने का मौका दिया। रोशनी की एक तेज किरण की भाति उन्होने अँधेरे अन्तर मे घुसकर हमारी आँखो के पर्दे को हटा दिया। हवा के बवडर की तरह, जो बहुत-सी चीजो को उथल-पुथल कर देता है, उन्होने लोगो के दिमाग के तौर-तरीके मे एक उथल-पुथल मचा दी। वे अपने आदर्श के नीचे नही उतरे, जनता की बोली मे बात करते हुए, उनकी दर्दनाक हालत की ओर लगातार उनका ध्यान खीचते हुए, वे लाखो लोगो के भीतर मे प्रकट होते हुए मालूम हुए। वे हमसे कहा करते थे कि जो लोग किसानो के शोषण पर जिन्दा है और जो उनकी ओर पीठ किये है, उन्हे उनकी ओर देखना चाहिए और उस हालत से छुटकारा पाना चाहिए, जिससे यह गरीबी और पीडा पैदा होती है। तभी राजनैतिक आजादी एक शक्ल धारण करती है और उसके भीतर से एक नये सन्तोष का जन्म होगा। उन्होने जो कुछ कहा था, हमने उनमे से सिर्फ कुछ बातो को माना या कभी-कभी बिल्कुल नही माना। लेकिन यह सब खास अहमियत नही रखता। उनकी नसीहत का निचोड था निडरता और सच्चाई और उनसे जुडा हुआ काम या व्यवहार, जिसमे जनता की भलाई को हमेशा नजर मे रखा जाय। हमारी पुरानी पुस्तको मे कहा गया है कि एक इन्सान या कौम के लिए सबसे बडा तोहफा 'निर्भीकता' है। सिर्फ जिस्मानी नही, बल्कि दिमाग से भी डर बिल्कुल निकल जाना चाहिए। जनक और याज्ञवल्क्य ने हमारे इतिहास की प्रभात वेला मे कहा था कि यह जनता के नेताओ का काम है कि वे उन्हे निडर बनावे, लेकिन अग्रेजी राज्य के समय हिन्दुस्तान मे सबसे जोरदार वृत्ति भय की थी—चारो ओर फैला तकलीफदेह और दमघुटाऊ डर, फौज, पुलिस और सी आई डी का डर, अधिकारी

तवके का डर, दवाने वाले कानूनो और जेल का डर ; जमीदारो के दलालो का डर; साहूकारो का डर, वेकारी और भुखमरी का डर जो हमेशा दरवाजे पर खडे रहते थे। इस चारो तरफ फैले डर के खिलाफ गाधीजी की सामूहिक और जोरदार आवाज उठी थी, "डरो मत"! क्या यह कोई मामूली वात थी ? विल्कुल नही। और इसपर भी डर के अपने भूत होते है, जो असलियत से भी ज्यादा डरावने होते है, इस असलियत की अगर खामोशी के साथ छानवीन की जाय और इसके नतीजो को अपने आप मान लिया जाय तो वहुत-सा डर अपने आप खत्म हो जाता है।

इस तरह लोगो के सिर से उस काले डर का पर्दा इतनी जल्दी उठ गया कि हमे अचरज हुआ—इतनी पूर्णता और विचित्रता के साथ कि हम यकीन भी न कर सके। डर और आडम्वर का गहरा साथ होता है, इसलिए सत्य निर्भीकता के वाद आता है। हिन्दुस्तानी जितने सत्यवादी पहले थे, उतने नही वने और न उन्होने अपने स्वभाव को ही एक रात मे वदला , इतने पर भी इन्कलाव का एक समुद्र दिखलाई देने लगा, क्योकि आडम्वर और चोरी से किये हुए आचरण की जरूरत कम रह गई। यह एक मनोवैज्ञानिक क्राति थी, मानो किसी मनोविशेषज्ञ ने रोगी के भीतर गहराई से प्रवेश कर उसकी उलझी पेचीदगियो को जड को मालूम कर लिया हो और इस तरह उसे उसके सामने खोलकर रखा और मुक्ति दिलाई।

शायद हम उतने सचाई-पसद नही हो सके, जितने पहले थे, लेकिन गाधीजी हमेशा एक दृढ सत्य के प्रतीक के रूप मे हमारे वीच आये और हमें सदा सत्य के निकट खीचने की कोशिश की।

यह कोई अचरज की वात नही है कि इस अद्‌भुत ताकतवर शख्स ने, जिसमें कि आत्मविश्वास और गैरमामूली ताकत भरी थी, जो हर इन्सान की आजादी और समानता का नुमाइन्दा था, जो सव वातो को गरीवी की तराजू मे ही नापता था, हिन्दुस्तान की जनता को मुग्ध करके उसे चुम्वक की तरह अपनी ओर खीच लिया। जनता की निगाह में वे गुजरे और आगे आने वाले जमाने की कडी थे और जो मायूसीभरे मौजूदा जमाने से आशा के भावी जीवन तक पहुँचने का पुल वना देना चाहते थे। और सिर्फ जनता ही नही, वल्कि वुद्धिवादी और दूसरे लोग भी—हालाँकि उनके दिमाग अक्सर परेशान और अनिश्चित रहते थे और उनके लिए अपनी पुरानी आदतो को वदलना वडा कठिन था—उनके असर से अछूते नही रहे। इस तरह उन्होने एक मजवूत दिमागी इन्कलाव कर दिखाया, और यह तब्दीली सिर्फ उनमें ही नहीं हुई जो उनके नेतृत्व को मानते थे, वल्कि उनके

विरोधी और तटस्थ लोगों तक में हुई, जो आखिर तक यह तय नहीं कर पाये थे कि क्या करना चाहिए और क्या सोचना चाहिए।

: ३७ :

शक्ति और प्रेरणा के स्रोत

वल्लभभाई पटेल

मेरा दिल दर्द से भरा हुआ है। क्या कहूं क्या न कहूँ? जबान चलती नहीं है। आज का अवसर भारतवर्ष के लिए सबसे बड़े दुःख, शोक और गम का अवसर है। आज चार बजे मैं गांधीजी के पास गया था और एक घंटे तक मैंने उनसे बात की थी। वह घड़ी निकालकर मुझसे कहने लगे, "मेरा प्रार्थना का समय हो गया है। अब मुझे जाने दीजिये।" वह भगवान् के मन्दिर की तरफ अपने हमेशा के समय पर चलने के लिए निकल पड़े। तब मैं वहां से अपने मकान की तरफ चला। मैं मकान पर अभी पहुँचा नहीं था कि इतने में रास्ते में एक भाई मेरे पास आया। उसने कहा कि एक नौजवान हिन्दू ने गांधीजी के प्रार्थना की जगह पर जाते ही अपनी पिस्तौल से उनपर तीन गोलियां चलाईं, वह वहां गिर पड़े और उनको वहां से उठाकर घर में ले जाया गया है। मैं उसी वक्त वहां पहुँच गया। मैंने उनका चेहरा देखा। वही चेहरा था। वैसा ही शान्त चेहरा था जैसा हमेशा रहता था। उनके दिल में दया और माफी के भाव अब भी उनके चेहरे से प्रकट होते थे। आस-पास बहुत लोग जमा हो गए। लेकिन वह तो अपना काम पूरा करके चले गए।

पिछले चन्द दिनों से उनका दिल खट्टा हो गया था और आखिर उन्होंने उपवास भी किया। उपवास में चले गए होते, तो अच्छा होता। लेकिन उनको और भी काम देना था तो रह गए। पिछले हफ्ते में एक दफा और एक हिंदू नौजवान ने उनके ऊपर बम फेंकने की कोशिश की थी। उसमें भी वह बच गए थे। इस समय पर ही उनको जाना था। आज वह भगवान् के मन्दिर में पहुंच गए। यह बड़े दुःख का, बड़े दर्द का, समय है। लेकिन यह गुस्से का समय नहीं है, क्योंकि अगर हम इस वक्त गुस्सा करें, तो जो सबक उन्होंने हमको जिन्दगी भर सिखाया, उसे हम भूल जायगे और कहा जायगा कि उनके जीवन में तो हमने उनकी बात नहीं मानी, उनकी मृत्यु के बाद भी हमने नहीं माना। हमपर यह धब्बा लगेगा। मेरी प्रार्थना है कि कितना भी दर्द हो,

कितना भी दु ख हो, कितना भी गुस्सा आवे, लेकिन गुस्सा रोककर अपने पर कावू रखिये। अपने जीवन मे उन्होने हमे जो कुछ सिखाया, आज उसीकी परीक्षा का समय है। वहुत शाति से, वहुत अदव से, वहुत विनय से एक-दूसरे के साथ मिलकर हमे मजवूती से पैर जमीन पर रखकर खडा रहना है। आप जानते है कि हमारे ऊपर जो वोझ पड रहा है, वह इतना भारी है कि करीव-करीव हमारी कमर टूट जायगी । उनका एक सहारा था और हिन्दुस्तान को वह वहुत वडा सहारा था। हमको तो जीवन भर उन्हीका सहारा था। आज वह चला गया! वह चला तो गया, लेकिन हर रोज, हर मिनट, वह हमारी आखो के सामने रहेगा! हमारे हृदय के सामने रहेगा, क्योकि जो चीज़ वह हमको दे गया है, वह तो कभी हमारे पास से जायगी नही।

उनकी आत्मा तो अव भी हमारे वीच मे है। अभी भी वह हमे देख रही है कि हम लोग क्या कर रहे है। वह तो अमर है। जो नौजवान पागल हो गया था, उसने व्यर्थ सोचा कि वह उनको मार सकता है। जो चीज उनके जीवन मे पूरी न हुई, शायद ईश्वर की ऐसी मर्जी हो कि उनके द्वारा इस तरह से पूरी हो , क्योकि इस प्रकार की मृत्यु से हिन्दुस्तान के नौजवानो का जो कानशस (अन्तरात्मा) है, जो हृदय है, वह जाग्रत होगा, मै ऐसी आशा करता हूँ। मै उम्मीद करता हूँ और हम सव ईश्वर से यह प्रार्थना करेगे कि जो काम वह हमारे ऊपर वाकी छोड गए है, उसे पूरा करने मे हम कामयाव हो। मै यह उम्मीद करता हूँ कि इस कठिन समय मे भी हम पस्त नही हो जायगे, हम नाहिम्मत भी नही हो जायगे। सवको दृढता से और हिम्मत से एक साथ खडा होकर इस वहुत वडी मुसीवत का मुकाविला करना है और जो वाकी काम उन्होने हमारे ऊपर छोडा है, उसे पूरा करना है। ईश्वर से प्रार्थना कर, आज हम निश्चय कर ले कि हम उनके वाकी काम को पूरा करेगे।

× × ×

जवसे गाधीजी हिन्दुस्तान मे आए तवसे, या जव मैने जाहिर जीवन शुरू किया तवसे, मै उनके साथ रहा हूँ। अगर वे हिन्दुस्तान न आए होते तो मै कहा जाता और क्या करता, उसका जव मै ख़याल करता हूँ तो एक हैरानी-सी होती है। गाधीजी ने मेरे जीवन मे कितना पल्टा किया। सारे भारतवर्ष के जीवन में उन्होंने कितना पल्टा किया। यदि वह हिन्दुस्तान मे न आए होते तो राष्ट्र कहा जाता? हिन्दुस्तान कहा होता? सदियो से हम गिरे हुए थे। वह हमें उठाकर कहातक ले आये? उन्होने हमे आजाद वनाया। उनके हिन्दुस्तान आने के वाद क्या-क्या हुआ और किस

तरह से उन्होंने हमें उठाया, कितनी दफा, किस-किस प्रकार की तकलीफें उन्होंने उठाईं, कितनी दफे वह जेलखाने में गए और कितनी दफे उपवास किया, यह सब आज खयाल आता है। कितने धीरज से, कितनी शांति से वह तकलीफें उठाते रहे और आखिर आजादी के सब दरवाजे पार कर हमें उन्होंने आजादी दिलवाई।

: ३८ :

उनकी विरासत

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी

सब कुछ समाप्त हो गया।

संसार एकदम खाली लगता है—बुरी तरह से खाली।

पक्षी शुक्रवार ३० जनवरी को शाम को ५ बजे उड गया।

शरीर हमारे पास रह गया और मुख पर थिरकती मुस्कान ने भ्रम को कुछ देर और जीवित रखा। लेकिन शनिवार, ३१ जनवरी, को हमने अपने पूर्वजो की सीख के अनुसार अपने प्रिय नेता के शरीर को जमुना के तट पर अग्नि को अर्पित कर दिया। फिर हमने अवशेषो को एकत्र किया। निष्ठा के कारण इस भस्म में भी हमें बापू दिखाई देने लगे और अनाथ जनता इस भुलावे मे भी शोक से पटी रही। लेकिन हमारे पूर्वजो की पवित्र शिक्षा ने हमें भस्म को तत्त्वार्पित करने और परमेश्वर में ध्यान लगाने के लिए उत्प्रेरित किया। इसलिए हमने उनके फूल पावन गंगा को प्रार्थना-पूर्वक अर्पित कर दिये और अब शोक-संतप्त हृदय के साथ वापस लौटते समय चारो ओर रिक्तता का आभास हो रहा है। हे भगवान्! हर दिन बापू के निधन के समय हमारा ध्यान हमारे प्रिय शिक्षक, हमारे अजातशत्रु, हमारे सत्यधर्मपराक्रम—की ओर जाय जो करोडो व्यक्तियो के लिए अचूक चिकित्सक के समान थे, जो भय को दूर कर देते थे और सदा प्रेम का पोषण करते थे।

भगवान् करे कि हर दिन, सायं ५ बजे भारत मे प्रत्येक नर-नारी उस दृश्य का पुन स्मरण करे, जिसमे एकत्र नर-नारी-समुदाय सम्मिलित होने के लिए आते बापू की प्रतीक्षा कर रहा हो। उस प्रिय मुख की याद करे और जिसकी और जिसके लिए वे (गांधीजी) कामना करते थे, उसका मनन करे। हर शाम को उस घडी, भारत में सकल-सद्भावना के लिए हमें दो मिनट प्रार्थना करनी चाहिए। हमारा शोक भी क्रोध

और क्रोध मे सात्वना और रूप प्राप्त करता है। उस मूल पाप के विरुद्ध, जो हमारी प्रवृत्ति को विषाक्त करता है, हमारी जागरूकता सतत होनी चाहिए। इस अपूर्व ससार मे दमन और राजकीय उत्पीडन से नही वचा जा सकता। लेकिन इस वात को हमे अच्छी ओर पूरी तरह समझ लेना चाहिए कि सद्भावना सद्भावना के विना प्राप्त नही की जा सकती। हमारे प्रिय नेता के वताये रास्ते के विना अन्य किसी प्रकार बुराई पर विजय नही पाई जा सकती। शाति के वारे मे वडी लडाकू वाते की जा रही है और सद्भावना के लिए भी वडी उत्तेजनापूर्ण आवाजे उठाई जा रही है, लेकिन आग को तेल छिडककर नही वुझाया जा सकता। काश कि हम प्यार की उस सीख को, जो हमारे मृत नेता ने एक विरासत की तरह हमारे लिए छोडी है, उनकी शिक्षा को और उनके द्वारा वसर किये गए जीवन को याद रख सके।

प्यार मागिये मत। प्यार इस तरह से हासिल नही किया जा सकता। अपना प्यार वढाइये—वदले मे अधिक प्यार उत्प्रेरित होगा और आपको प्राप्त होगा। यह नियम है और कोई व्यवस्था या तर्क इसे वदल नही सकता।

वे चले गए और यदि हम उनकी शिक्षा के अनुसार इस नियम का अनुसरण नही करेगे और इसे शिक्षक के साथ ही समाप्त हो जाने देगे तो हमारा पतन हो जायगा और यथार्थ मे हम हत्यारे के सहयोगी वन जायगे। लेकिन अगर सच्चे दिल से हम उनके नियम का पालन करे तो वे मर नही सकते, वे हमारे भीतर और हमारे द्वारा जीवित रहेगे। हमे याद रखना चाहिए कि हमारे प्रिय नेता किस प्रकार प्रतिदिन उनके पास जाते थे ओर किस प्रकार जनता उनके साथ मिलकर कहती थी

ईश्वर अल्ला तेरे नाम—
सवको समति दे भगवान।
वायुरनिलममृतमथेद भस्मात शरीरम्।
ओ क्रतो स्मर कृत स्मर क्रतो स्मर कृत स्मर॥

: ३९ :

वह प्रकाश

श्री अरविन्द

जो प्रकाश स्वतत्रता-प्राप्ति मे हम लोगो का नेतृत्व करता रहा, वह ऐक्य-प्राप्ति नही करा सका, परन्तु वह प्रकाश वुझा नही है। वह अभी प्रज्वलित है और

जबतक विजयी न हो जायगा, जलना ही रहेगा। मेरा विश्वास है कि इस देश का भविष्य अत्यन्त महान् है तथा यहां ऐक्य अवश्य स्थापित होगा। जिस शक्ति ने संघर्ष काल में हम लोगों का नेतृत्व करके लोगों को स्वतंत्रता प्राप्त कराई, वही शक्ति हमें उस लक्ष्य तक भी ले जायगी जिसके लिए महात्माजी अन्त तक सचेष्ट रहे और जिसके कारण उन्हें दुर्घटना का शिकार होना पड़ा। जिस प्रकार हमने स्वतन्त्रता प्राप्त की, उसी प्रकार हमें ऐक्य-प्राप्ति में भी सफलता मिलेगी। भारत स्वतंत्र और संघटित रहेगा। देश में पूर्ण ऐक्य होगा तथा राष्ट्र अत्यन्त शक्तिशाली होगा।

: ४० :

वह ज्वलंत ज्योति

सरोजनी नायडू

अपना पथ-निर्देश, अपना प्यार, अपनी सेवा और प्रेरणा देते रहने के लिए अपने देशवासियों की पुकार और दुनिया की आवाज के जवाब में भूतकाल में मसीह की भांति तीसरे दिन वे फिर से अवतरित हो उठे हैं। और यद्यपि आज हम, जो उन्हें प्रेम करते थे, उन्हें व्यक्तिगत रूप से जानते थे, और जिनके लिए उनका नाम एक चमत्कार और आख्यान की तरह था, शोक प्रकट कर रहे हैं, आंसू बहा रहे हैं और दुःखित हो रहे हैं, तथापि मैं समझती हूं कि आज, जब अपनी मृत्यु के तीसरे दिन वे अपनी ही भस्म से एक बार फिर अवतरित हुए हैं, शोक मनाना समयानुकूल नहीं है और आंसू बहाना असंगत है। वे, जिन्होंने अपने जीवन, आचरण, त्याग, प्रेम, साहस और निष्ठा से संसार को सिखाया है कि यथार्थ वस्तु आत्मा है, शरीर नहीं और आत्मा की शक्ति संसार की सारी सेनाओं की संयुक्त शक्ति से, युगों की संयुक्त सेनाओं की शक्ति से अधिक है, कैसे मर सकते हैं? जो इतने छोटे, दुर्बल और धनहीन थे, जिनके पास अपना तन ढकने के लिए समुचित वस्त्र भी न थे, जिनके पास सूई की नोक बराबर जमीन तक न थी, वे हिंसा की शक्तियों से, संसार की ताकत से और संसार में जूझती शक्तियों की सभ्यता से इतने अधिक शक्तिशाली कैसे थे? क्या कारण है कि यह छोटा-सा, नन्हा-सा, बच्चे से शरीर-वाला आदमी, जो इतना आत्मत्यागी था और स्वेच्छा से इसलिए भूखा रहता था

कि गरीबो के जीवन के ज्यादा पास रह सके, वह सारे ससार पर—उनपर जो उनका आदर करते थे और उनपर भी जो उनसे घृणा करते थे—ऐसी सत्ता कैसे रखते थे, जैसी कि बादशाह भी कभी न रख सके ?

यह इसलिए था कि उन्हे प्रशसा की चाह न थी, निन्दा की परवाह न थी। उन्हे केवल सत्य-मार्ग की परवाह थी। उन्हे केवल उन्ही आदर्शों की चिन्ता थी, जिनकी वह शिक्षा देते थे और जिनपर वह स्वय चलते थे। मनुष्य के लोभ और हिंसा से जनित बडी-से-बडी दुर्घटनाओ के समय भी, जब सारे ससार की निन्दा का रणभूमि मे झडी पत्तियो और फूलो की भाति ढेर लग जाता था, अहिंसा के आदर्श मे उनकी निष्ठा नही डिगी। उनका विश्वास था कि चाहे सारा ससार अपना वध कर डाले, चाहे सारे ससार का लहू बह जाय, लेकिन फिर भी उनकी अहिंसा ससार की नई सभ्यता की वास्तविक नीव बनेगी। उनकी मान्यता थी कि जो जीवन के फेर मे पडा रहता है वह उसे खो देता है और जो जीवन का दान करता है वह उसे पा लेता है।

१९२४ मे उनका पहला उपवास, जिससे मै भी सम्बन्धित थी, हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए था। उसे पूरे राष्ट्र की सहानुभूति प्राप्त थी। उनका अन्तिम उपवास भी हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए था, लेकिन इसमे सारा राष्ट्र उनके साथ नही था। वह इतना बँट गया था, वह इतना कटुतापूर्ण हो गया था, वह घृणा और सन्देह से इतना परिपूर्ण हो गया था, वह देश के विभिन्न धर्मो की शिक्षाओ से इतना विमुख हो गया था कि एक छोटा-सा भाग ही महात्माजी को समझ सका, उनके उपवास के अर्थो को जान सका। यह बिल्कुल स्पष्ट था कि इस उपवास मे राष्ट्र की निष्ठा उनके प्रति बटी हुई थी। यह भी स्पष्ट था कि उनकी ही जाति के अतिरिक्त और कोई जाति ऐसी नही थी, जिसने उनको इतना नापसद किया और अपनी नाराजगी और असन्तोष को इतने निन्दनीय ढग से व्यक्त किया। हिन्दू जाति के लिए कितने दु ख की बात है कि सबसे बडा हिन्दू—हमारे युग का एकमात्र हिन्दू—जो धर्म के सिद्धान्त, आदर्शों और दर्शन का इतना पक्का और सच्चा था, एक हिन्दू के ही हाथ से मारा जाय। वास्तव मे यह हिन्दू-धर्म के लिए एक समाधि-लेख जैसी बात है कि एक हिन्दू के हाथ से, हिन्दू-अधिकारो और हिन्दू-ससार के नाम पर उस हिन्दू का बलिदान हो, जो उन सबमे सबसे महान् था। लेकिन यह कोई खास बात नही। हममे से कई के लिए, जो उन्हे भूल नही सकते, यह एक व्यक्तिगत दु ख है, जो हर दिन और हर बरस खटकेगा, क्योकि तीस साल से भी ज्यादा समय से हममे

से कुछ उनके इतने निकट रहे है कि हमारा जीवन और उनका जीवन एक-दूसरे का अविभाज्य अग बन गया था। वास्तव में हममें से बहुतो की निष्ठा मर चुकी है। उनकी मौत ने हममें से कुछ के अग भी काटकर अलग कर दिए है, क्योकि हमारे जीवन-तन्तु, हमारे पुट्ठे, शिरा, हृदय और रक्त—सब उनके जीवन से जुड़े हुए थे।

लेकिन, जैसा कि मै कहती हू, यदि हम हतोत्साह हो जाय तो यह कृतघ्न भगोडो का-सा काम होगा। अगर हम सचमुच ही यह विश्वास कर ले कि वह नही रहे, अगर हम मान लें कि क्योंकि वह चले गए है, इसलिए सबकुछ खत्म हो गया है, तो हमारा प्यार और विश्वास किस काम आयगा? अगर हम यह समझ ले कि क्योकि उनका शरीर हमारे बीच नही रहा है, इसलिए अब क्या बचा है तो उनके प्रति हमारी निष्ठा किस काम आयगी? क्या हम उनके वारिस, उनके आत्मिक उत्तराधिकारी, उनके महान् आदर्शो के रखवाले, उनके बड़े कार्य को चलाने वाले नहीं है? क्या हम उस काम को पूरा करने के लिए, उसे बढाने के लिए और अपने सयुक्त प्रयासो से उनके अकेले से जो हो सकता था उससे अधिक सफल बनाने वाले नही है? इसीलिए मै कहती हू कि निजी शोक का समय बीत गया।

छाती पीटने और 'हाय-हाय' का वक्त बीत गया। यह समय है कि हम उठें और महात्मा गाधी का विरोध करनेवालो से कहे, "हम चुनौती स्वीकार करते है।" हम उनके जीवित प्रतीक है। हम उनके सिपाही है। हम रणोन्मत्त ससार के आगे उनके ध्वजवाहक है। हमारा ध्वज सत्य है। हमारी ढाल अहिंसा है। हमारी तलवार आत्मा की वह तलवार है, जो बिना खून बहाये जीत जाती है। भारत की जनता उठे और अपने आसू पोछे, उठे और अपनी सिसकिया खत्म करे, उठे और आशा और उत्साह से भरे। आइए, हम उनके व्यक्तित्व के ओज, उनके साहस के शौर्य और उनके चरित्र की महानता उनसे ग्रहण करे। और ग्रहण क्यो करें? वे तो स्वय हमे दे गए है। क्या हम अपने नेता के पद-चिह्नो पर नही चलेंगे? क्या हम अपने पिता के निर्देश को नही मानेगे? क्या हम, उनके सिपाही, उनके युद्ध को सफल नही बनायगे? क्या हम ससार को महात्मा गाधी का परिपूरित सन्देश नही देंगे? यद्यपि उनका स्वर अब नही निकलेगा, तथापि ससार को—केवल ससार और अपने समकालीनो को ही क्यो, बल्कि ससार की युग-युग तक आनेवाली सन्तानो तक—उनका सन्देश पहुचाने के लिए क्या हमारे पास लाखो-करोडो कण्ठ नही है? क्या उनका बलिदान व्यर्थ जायगा? क्या उनका रक्त शोक के व्यर्थ कार्य

के लिए ही बहाया जायगा ? क्या हम उस खून से ससार को बचाने के लिए उनके शाति-सैनिको के चिह्न की तरह अपने माथे पर तिलक नही लगायगे ? इसी वक्त और इसी जगह पर, मै सारे ससार के आगे, जो मेरी कम्पित वाणी सुन रहा है, अपनी तरफ से और आपकी तरफ से, जिस प्रकार मैने ३० साल से भी पहले शपथ ली थी, अमर महात्मा की सेवा का व्रत ग्रहण करती हू ।

मृत्यु क्या है ? मेरे पिता ने, अपनी मृत्यु के ठीक पहले, जब वे मरणोन्मुख थे और मौत की छाया उनपर गिर रही थी, कहा था, "न जन्म होता है, न मृत्यु होती है । केवल आत्मा सत्य की उच्चतर अवस्थाओ को खोजती रहती है ।" महात्मा गाधी, जो इस ससार मे सत्य के लिए ही रहते थे, उस सत्य की उच्चतर अवस्था मे परिवर्तित हो गए है, जिसे वे खोजते थे, यद्यपि यह कृत्य हत्यारे के हाथो हुआ। क्या हम उनका स्थान नही लेगे ? क्या हमारी सम्मिलित शक्ति इतनी नही होगी कि हम ससार को दिए उनके महान् सन्देश को फैला सके तथा उसका अनुकरण कर सके ? यहापर मै उनके सबसे साधारण सैनिको मे से एक हू । लेकिन मै जानती हू कि मेरे साथ जवाहरलाल नेहरू जैसे उनके प्रिय शिष्य, उनके विश्वासपात्र अनुगामी और मित्र वल्लभभाई पटेल, मसीह के हृदय मे सन्त जॉन की भाति राजेद्र बाबू, तथा वे सहयोगी भी है, जो घडी भर की सूचना पर उनके चरणो मे अन्तिम श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिए भारत के कोने-कोने से दौड आये है । क्या हम सब उनके सन्देश को पूरा नही करेगे ? उनके अनेक उपवासो के समय, जिनमे मुझे उनकी सेवा करने का, उन्हे सात्वना देने का, उन्हे हँसाने का—क्योकि उन्हे अपने मित्रो की हास्योपधि की सबसे अधिक आवश्यकता थी—सौभाग्य प्राप्त हुआ । मै इस बात पर आश्चर्य किया करती थी कि अगर कही सेवाग्राम मे उनके प्राण निकले, नोआखाली मे उनकी देह छूटे, कही किसी दूर जगह पर उनकी जीवन-लीला समाप्त हो तो हम उन तक कैसे पहुच सकेगे ? इसलिए यह ठीक और उचित ही है कि वे राजाओ की नगरी मे, हिन्दू साम्राज्यो की प्राचीन स्थली मे, जिस स्थल पर मुगलो की भव्यता का निर्माण हुआ, उस स्थल मे, जिसको विदेशी हाथो मे छीनकर उन्होने भारत की राजधानी बनाया, उसी स्थल मे, वह स्वर्गवासी हुए । यह ठीक ही है कि उनका शरीरान्त दिल्ली मे हुआ । यह भी ठीक है कि उनकी अन्तिम क्रिया मृत सम्राटो के बीच, जो दिल्ली मे दफनाए गए थे, हुई, क्योकि वे राजाओ के राजाधिराज थे । और यह भी ठीक ही है कि वे, जो शान्ति के अवतार थे, एक महान् योद्धा के आदर और सम्मान के साथ श्मशान भूमि मे ले जाए गए

क्योंकि उन सभी योद्धाओं में, जो युद्ध-भूमि में अपनी सेनाएं लेकर गए थे, यह छोटा-सा व्यक्ति कहीं अधिक बड़ा बहादुर और विजेता था। दिल्ली आज सात साम्राज्यों की ऐतिहासिक दिल्ली नहीं है। यह सबसे महान् क्रान्तिकारी था, जिसने अपने पराभूत देश का उद्धार किया और उसे उसकी स्वतन्त्रता और उसकी ध्वजा दी, केन्द्र और विश्राम-भूमि दी। भगवान्! मेरे स्वामी, मेरे नेता, मेरे बापू की आत्मा शान्ति में विश्राम न करे, बल्कि उनकी अस्थियों में जबरदस्त जीवन जागे और चन्दन की जली लकड़ियों की गन्ध और उनकी अस्थियों के चूर्ण में वह जीवन और उत्प्रेरणा उत्पन्न हो कि उनकी मृत्यु के बाद सारा भारत स्वतन्त्रता की यथार्थता में पुनर्जीवित हो उठे।

मेरे बापू, सोओ मत! हमें मत सोने दो। हमें अपने व्रत से मत डिगने दो। हमें—अपने उत्तराधिकारियों को, अपनी सन्तानों को, अपने सेवकों को, अपने स्वप्नों के अभिरक्षकों को, भारत के भाग्य-विधाताओं को—अपना प्रण पूरा करने की शक्ति दो। तुम, जिनका जीवन इतना शक्तिशाली था, अपनी मृत्यु से भी हमें ऐसा ही शक्तिशाली बनाओ, जो उद्देश्य तुम्हें सबसे अधिक प्रिय था और उसके लिए महानतम् शहादत में तुमने नश्वरता को पीछे छोड़ दिया है।

: ४१ :

एक महान् मानवतावादी

सी० वी० रमन

तनाव के दिनों में मानवी व्यवहार मौसम-विज्ञान के कई दृष्टांत उपस्थित करता है। सचेत प्रत्यावलोकक घाटी में बनते अवनमन[1] को देखकर यह चेतावनी दे देता है कि तूफान उठ रहा है और किनारे की तरफ बढ़ रहा है। लेकिन स्थान और समय के बारे में प्रत्यावलोकक की चेतावनी चाहे कितनी ही सही क्यों न हो, उत्पात को रोकने या टालने और उससे होनेवाली हानि को कम करने के लिए विशेष कुछ नहीं किया जा सकता। पिछले कतिपय महीनों में घटनेवाली घटनाएं भी वास्तव में हमारे देश की छाती पर चलने वाले अन्धड़ की तरह है, जो अपने पीछे इन्सानी जिंदगी और बरबाद खुशहाली के खंडहर छोड़ गये हैं। इस खेदजनक दौर की चरम

१ डिप्रेशन—वायुमंडल के दाब में कमी।

सीमा हमारे वीच से कुछ दिन पहले एक ऐसे व्यक्ति का चला जाना है, जिसने अपने महान् मानवी गुणो से और मानव-कल्याण के निमित्त अपनी अपूर्व निष्ठा से अपने समकालीनो की दृष्टि मे अपने लिए एक अनुपम स्थान वना लिया था। मेरी समझ मे इतिहास के फैसले की पूर्व कल्पना करने और महात्मा गाधी के जीवन तथा शिक्षाओ का स्वय हमारे देश या एशिया या विश्व के भविष्य पर प्रभाव आकने की कोशिश करने मे कोई सगति नही है। यह सव भविष्य की ओट मे है। लेकिन यदि हमे, जो उनके द्वारा स्वतत्र कराये गये भारत के निवासी है, अपने भाग्य पर कोई भी विश्वास है, यदि हममे वर्त्तमान उथल-पुथलो पर विजय पाने की क्षमता है और यदि हममें अपने लिए एक महान् भविष्य का निर्माण करने की शक्ति है, तो निस्सदेह महात्मा गाधी के जीवन-कार्य और भारत के एक वार फिर स्वतत्र देश के रूप मे सामने आने मे उनके भाग को हम कभी नही भुला सकते।

स्वय मेरे सक्रिय जीवन के गत चालीस वर्ष एक ऐसे कार्यक्षेत्र मे लगे रहे है, जो स्वाधीनता-सग्राम से, जो भारत मे उस समय पूरे जोर पर था, खासा कटा हुआ था। मैने उस सघर्ष मे कोई सक्रिय भाग नही लिया और न मैने उसमे सलग्न नेताओ से सवध ही स्थापित करने की कोशिश की। लेकिन महात्माजी उन सव व्यक्तियो से, जिनमे मेरा कभी भी परिचय हुआ, स्पष्ट रूप से इतने भिन्न थे कि जव कभी मैने इनके दर्शन किए, उनसे मुलाकात की, या उनकी वाणी सुनी, वह अवसर मेरे मस्तिष्क पर अच्छी तरह से अकित हो गया और ऐसा अनेक वार हुआ। पहला अवसर था १९१४ का नाटकीय दृश्य, जव हिन्दू विश्वविद्यालय के शिला-न्यास-समारोह के अवसर पर उन्होने वनारस मे एकत्र विराट सभा मे भाषण दिया था। उस विराट समुदाय ने वडे ध्यान से उनकी उस भर्त्सना को सुना जो उन्होने रजवाडो की खुली फिजूलखर्ची की जिन्दगी और अपने इलाको मे रहने वाली जनता की अवहेलना के लिए की। इस प्रकार झाडे जानेवाले रजवाडो मे से कई वही मौजूद भी थे। उनमे से सभी इस भर्त्सना के लायक थे या नही, यह विवाद का विषय हो सकता है, लेकिन उनमे से प्रत्येक ने स्वाभाविक रूप से उनके कथन का वुरा माना और वे सभा-भवन से उठकर चले गए। उनके पीछे-पीछे डाक्टर एनी वीसेण्ट भी, जिन्होने उनकी हत भावनाओ को शात करने की व्यर्थ चेष्टा की, चली गई। जैसे-जैसे समय गुजरता गया और जीवन और उसकी समस्याओ पर गाधीजी की शिक्षाए अधिक प्रचलित होती गई, देशवासियो पर उनका प्रभाव तेजी के साथ वढने लगा, और शीघ्र ही यह हर किसीको साफ हो गया कि स्वतत्रता के इस महान्

सघर्ष में वे भारत के सबसे बडे नेता थे। यह भी ज्यादा-से-ज्यादा साफ होता गया कि उनके प्रभाव का रहस्य यह था कि उनका दृष्टिकोण मूलत मानवतावादी और व्यावहारिक था। दूसरे शब्दो में वे मानव-जीवन और मनुष्य के सुख के अभिलाषी थे और विज्ञान या अर्थशास्त्र या राजनीति जैसे मानव-स्पन्दनरहित माने जाने वाले विषयो में उनकी कोई दिलचस्पी नही थी। उनके इस दृष्टिकोण ने स्वाभाविकतया उन्हे जन-साधारण का प्रिय बना दिया, चाहे यह बात उन लोगो को, जिनके दिमागो में ये विषय सामान्य व्यक्तियो की अपेक्षा अधिक ऊचा स्थान रखते है, बहुत अच्छी न लगी हो। इसमें कोई सदेह नही कि गाधीजी के उत्सर्ग पर ससार के हर कोने से जो स्वेच्छित श्रद्धाजलिया उन्हे अर्पित की गई है, वे वास्तव में महात्मा गाधी के अपने मूलभूत मानवतावाद की स्वीकारोक्ति है, जिसने देश, विचार और जाति की सीमाओ को लाघ दिया था। भूतकाल मे एशिया ने ऐसे अन्य महान् मानवतावादियो को जन्म दिया है, जिनका जीवन मानवता के जीवन और मस्तिष्क पर अमिट छाप छोड गया है। मै इस बात को दुहराता हू कि कोई व्यक्ति इतिहास के फैसले की पूर्व-कल्पना नही कर सकता। फिर भी यह सत्य है कि इतिहास कभी-कभी अपनेको दुहराता है और इस सबध में भी यह बात सत्य हो सकती है।

: ४२ :

गांधीजी की देन

गणेश वासुदेव मावलकर

गत शुक्रवार को हत्यारे के हाथो गाधीजी पर हुआ वार अप्रत्याशित था और हम सब उससे स्तब्ध रह गए। जब कुछ मिनटो के बाद बिडला-भवन में मैंने उनके शात और गतिहीन नश्वर अवशेष देखे तो मै अपनी आखो पर विश्वास न कर सका। उस समय भी यह मेरी आतरिक इच्छा थी कि वे अपनी अतिम निद्रा से जग जाय, और सदा हमारे साथ रहें, सदा की भाति प्यार करें, प्रेरणा देते रहें, पथ-प्रदर्शन करते रहें और मुस्कराते रहें। लेकिन अपने प्रिय और निकट व्यक्तियो के बारे में इस प्रकार की इच्छाए कभी पूरी नही होती। हमे काया की नश्वरता के दर्शन का आसरा लेना और दैवी इच्छा के आगे अपनेको छोड देना पडता है।

लेकिन क्या बापू सचमुच मर गए ? ऐसा कौन कहता है ? इस समय, बात करते हुए भी मुझे उनके सजीव स्पर्श का अनुभव हो रहा है। वह मरे नही, वह कभी मर नही सकते। वे हमारे हृदय मे जीवित है और हमे हमारी आकाक्षाओ को प्राप्त करने के लिए प्रेरित कर रहे है।

भारत मे वे जिस काल मे रहे, उन लगभग चौतीस वर्षो मे हमारे देश मे वे कोरी क्राति ही क्यो, कितना आश्चर्यजनक परिवर्तन भी लाए। उन्होने हमे आदमी बनाया और जीवन के हर क्षेत्र मे उन्होने हमे सचेत किया। हमारे जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नही है, जिसमे हम उनके हाथ या प्रभाव का अनुभव न कर सके। उन्होने हमारी राजनीति, हमारे अर्थशास्त्र और हमारी शिक्षा को नया दृष्टिकोण प्रदान किया और हमारे सार्वजनिक जीवन मे प्रत्येक वस्तु को आध्यात्मिक रूप देने की चेष्टा की। उन्होने, जो सत्य और अहिंसा के मूर्त रूप थे, अपने उद्देश्य मे अडिग विश्वास के साथ अपने सर्वस्व का बलिदान कर दिया। वे, जो इस युग के सबसे बडे, सबसे महान् व्यक्ति थे अनादि काल तक हमारे मानवी दिलो मे जीवित रहेगे। मेरे पास उनके प्रति अपना आदर, प्रेम, अनुभव और शोक प्रकट करने के लिए शब्द नही है।

गाधीजी जाति, विचार, वर्ण, धर्म या रग के भेद-भाव के बिना सम्पूर्ण मानवता के वास्तविक "बापू"—पिता थे। हमे उनके योग्य बनकर उनका आदर करना चाहिए। उनके लिए हम जो सर्वोत्तम स्मारक बना सकते है, वह है अपने जीवन और आचरण को उन आदर्शो के अनुसार ढालना, जिनके लिए वे जिये और मरे।

मेरी प्रार्थना है कि उनकी आत्मा हमेशा हमारे साथ रहे और हमे हमारे लक्ष्य तक ले जाय।

: ४३ :

सर्वश्रेष्ठ मानव

नरेन्द्रदेव

संसार के सर्वश्रेष्ठ मानव तथा भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गाधी के प्रति उनके निधन पर अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करने का अवसर उस व्यवस्थापिका

सभा को आज ही प्राप्त हुआ है। अपने देश की प्रथा के अनुसार तथा लोकाचार के अनुसार हमने तेरह दिन तक शोक मनाया। यह शोक महात्माजी के लिए नहीं था, क्योंकि जो सर्वभूतहित में रत है और जो मानव-जाति की एकता का अनुभव अपने जीवन में करता रहा हो, उसको शोक कहाँ, मोह कहाँ? यदि हम रोते हैं, बिलखते हैं तो अपने स्वार्थ के लिए बिलखते हैं, क्योंकि आज हम उस बात का अनुभव कर रहे हैं कि हमने अपनी अक्षय निधि खो दी है, अपनी चरम-सम्पत्ति को गवा दिया है।

महात्माजी इस देश के सर्वश्रेष्ठ मानव थे, इसीलिए हम उनको राष्ट्रपिता कहते हैं। हमारे देश में समय-समय पर महापुरुषों ने जन्म लिया है और इस जाति को पुनरुज्जीवित करने के लिए नूतन संदेश का संचार किया है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि अन्य देशों में महापुरुष उत्पन्न हुए हैं, लेकिन मेरी अल्प बुद्धि में महात्मा गाधी जैसा अद्वितीय बेजोड़ महापुरुष केवल भारतवर्ष में ही जन्म ले सकता था और वह भी बीसवीं शताब्दी में, अन्यत्र कहीं नहीं, क्योंकि महात्मा गाधी ने भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति को, उसकी पुरातन शिक्षा को परिष्कृत कर युग-धर्म के अनुरूप उसको नवीन रूप प्रदानकर, उसमें वर्तमान युग के नवीन सामाजिक एवं आध्यात्मिक मूल्य का पुट देकर एक अद्भुत एवं अनन्यतम सामञ्जस्य स्थापित किया। उन्होंने इस नवयुग की जो अभिलाषाएँ हैं, जो आशाएँ हैं, जो उसके महान् उद्देश्य हैं, उनका सच्चा प्रतिनिधित्व किया है। इसलिए वे भारतवर्ष के ही महापुरुष नहीं थे, अपितु समस्त संसार के महापुरुष थे। यदि कोई यह कहे कि उनकी राष्ट्रीयता संकुचित थी, तो वह गलत रहेगा। यद्यपि महात्मा गाधी स्वदेशी के व्रती थे, भारतीय संस्कृति के पुजारी थे तथा भारतीय राष्ट्रीयता के प्रबल समर्थक थे, किन्तु उनकी राष्ट्रीयता उदारता से पूर्ण थी, ओतप्रोत थी। वह संकुचित नहीं थी। संकुचित राष्ट्रीयता वर्तमान समाज का एक बड़ा अभिशाप है, किन्तु महात्माजी का हृदय विशाल था। जिस प्रकार भूकम्प-मापक यंत्र पृथ्वी के मृदु-से-मृदु कम्प को भी अपने में अंकित कर लेता है, उसी प्रकार मानव-जाति की पीड़ा की क्षीण-से-क्षीण रेखा भी उनके हृदय-पटल पर अंकित हो जाती थी। हमारा देश समय-समय पर महापुरुषों को जन्म देता रहा है और मैं समझता हूँ कि इस व्यवसाय में भारत सदा से कुशल रहा है, अग्रणी रहा है। पतितावस्था में भी, गुलामी की हालत में भी, भारतवर्ष ही अकेला ऐसा देश रहा है, जो जगद्वन्द्य महापुरुषों को जन्म दे सका है। हमारे देश में भगवान् बुद्ध हुए तथा अन्य धर्मों के प्रवर्तक हुए, किन्तु सामान्य

जनता के जीवन के स्तर को ऊचा करने मे कोई भी समर्थ नही हो सका। यह यथार्थ है कि पीडित मानवता के उद्धार के लिए नूतन धार्मिक सदेश उन्होने दिये थे, समाज के कठोर भार को वहन करने की समर्थता प्रदान करने के लिए उन्होने नए-नए आश्वासन दिये थे, विक्षुब्ध हृदयो को शान्त करने के लिए पारलौकिक सुखो की आशाए दिलाई थी, लेकिन सामान्य जीवन के जो कठोर सामाजिक वधन है, जो जनता के ऊपर कठोर शासन चल रहा है, जो सामाजिक और आर्थिक विषमताए है, दीनो और अकिचनजनो को भाति-भाति के जो तिरस्कार और अवहेलनाए सहनी पडती है, इन सब समस्याओ का हल करने वाला यदि कोई व्यक्ति हुआ तो वह महात्मा गाधी है। उन्होने ही सामान्य जीवन मे लोगो के जीवन के स्तर को ऊचा किया। उन्होने जनता मे मानवोचित स्वाभिमान उत्पन्न किया। उन्होने ही भारतीय जनता को इस बात के लिए सन्मति प्रदान की कि वह साम्राज्यशाही के भी विरुद्ध विद्रोह करे और यह भी पाशविक शक्तियो का प्रयोग करके नही, वल्कि आध्यात्मिक वल का प्रयोग करके हुआ। उनकी अहिंसा वेजोड थी। भगवान् वुद्ध ने कहा था, "अक्रोधेन जयेत् क्रोधम्।" अर्थात् अक्रोध से क्रोध को जीतना चाहिए। उनकी अहिंसा का सिद्धान्त केवल व्यक्तिगत आचरण का उपदेशमात्र न था, किन्तु सामाजिक समस्याओ को हल करने के लिए अहिंसा को एक उपकरण वनाना और राजनैतिक क्षेत्र मे अपने महान् ध्येय की प्राप्ति के लिए उसका सफल प्रयोग करना महात्मा गाधी का ही काम था और चूकि वे ससार मे अहिंसा को प्रतिष्ठित करना चाहते थे, इसलिए उनकी अहिंसा की व्याख्या भी अद्भुत, वेजोड और निराली थी। उनकी अहिंसा की शिक्षा केवल व्यक्तिगत आचरण की शिक्षा नही है। उनकी अहिंसा की व्याख्या वह महान् अस्त्र है जो समाज की आज की विषमताओ का, जो वैमनस्य और विद्वेष के कारण है, उन्मूलन करना चाहती है। अहिंसा के ऐसे व्यापक प्रयोग से ही अहिंसा प्रतिष्ठित हो सकती है।

सामाजिक और आर्थिक विषमता को दूरकर, मनुष्य को मानवता से विभूषित कर, आत्मोन्नति के लिए सबको ऊचा उठाकर जाति-पाति और सम्प्रदायो को तोडकर ही हम अहिंसा की सच्चे अर्थो में प्रतिष्ठा कर सकते है। यदि किसीने यह शिक्षा दी तो गाधीजी ने। इसलिए यदि हम उनके सच्चे अनुयायी होना चाहते है तो समाज से इस विषमता को, इस ऊच-नीच के भेद-भाव को, इस अस्पृश्यता को, समाज के नीचे-से-नीचे स्तर के लोगो की दरिद्रता को और आर्थिक विषमता को, समाज से सदा के लिए उन्मूलित करें। तभी हम सच्चे अहिंसक

कहला सकते है। यह महात्मा गाधी की ही विशेषता थी।

हमारे देश की यह प्रथा रही है कि महापुरुष के निधन के बाद हमने उसको देवता की पदवी से विभूषित किया, समाधि और मन्दिर बनाए। उसकी मूर्ति को मन्दिरो मे प्रतिष्ठित किया, या मजार बनाकर उसकी समाधि या मजार पर प्रेम और श्रद्धा के फूल चढाकर हम सन्तुष्ट हो गए। इसी प्रकार से भारतवासियो ने अनेक महापुरुषो की केवल उपासना और आराधना करके उनके मूल उपदेशो को भुला दिया। मै चाहता हू कि हम आज महात्मा गाधी को देवत्व की उपाधि न दें, क्योंकि देवत्व से भी ऊचा स्थान मानवता का है। मानव की आराधना और उपासना समाधि-गृह और मजार बनाकर, उनपर फूल चढा कर, नही होती। दीपक, नैवेद्य से उसकी पूजा नही होती। मानव की आराधना और उपासना का प्रकार भिन्न है। अपने हृदयो को निर्मल कर उसके बताए हुए मार्ग पर चलकर ही उसकी सच्ची उपासना होती है। यदि हम चाहते है कि हम महात्मा गाधी के अनुयायी कहलाए तो हमारा यह पुनीत कर्तव्य है कि जनता मे अपने प्रेम और श्रद्धा के भावो का प्रदर्शन करने के साथ-साथ हम उनका जो अमर सन्देश है, उसपर अमल करे। उनका सन्देश भारतवर्ष के लिए ही नही, वरन् वर्तमान ससार के लिए है, क्योंकि आज ससार का हृदय व्यथित है, दु खी है। ऐसे अवसर पर ससार को एक आदेश और उपदेश की आवश्यकता है। महात्माजी का बताया हुआ उपदेश जीवन का उपदेश है, मृत्यु का सन्देश नही है। और जो पश्चिम के राष्ट्र आज सकुचित राष्ट्रीयता के नाम पर मानव-जाति का बलिदान करना चाहते है, जो सभ्यता और स्वाधीनता का विनाश करना चाहते है वे मृत्यु के पथ पर अग्रसर हो रहे है, वे मृत्यु के अग्रदूत है। यदि वास्तव में हम समझते है कि हम महात्माजी के अनुयायी है तो हमारी सबकी सच्ची श्रद्धाजलि यही हो सकती है कि हम इस अवसर पर शपथ ले, प्रतिज्ञा करे कि हम आजीवन उनके बताए हुए मार्ग पर चलेंगे, जो जनतन्त्र का मार्ग, समाज में समता लाने का मार्ग, विविध धर्मों और सम्प्रदायो मे सामजस्य स्थापित करने का मार्ग है, जो छोटे-से-छोटे मानव को भी समान अधिकार देता है, जो किसी मानव का पक्ष नही करता, जो सबको समान रूप से उठाना चाहता है। यदि महात्माजी के बताए हुए मार्ग का हम अनुसरण करते तो एशिया का नेतृत्व हमारे हाथो मे होता और हमारा देश भी दो भूखण्डो में विभाजित न हुआ होता। हम एशिया का नेतृत्व करेंगे, किन्तु इस गृह-कलह के कारण हमारा आदर विदेशो में बहुत घट गया है। इसलिए यदि हम उस नेतृत्व को

ग्रहण करना चाहते है तो हमको अपने देश मे उस सन्देश को कार्यान्वित करना होगा। भारतवर्ष मे बसनेवाली विविध जातियो मे एकता की स्थापना करके हम को ससार को दिखा देना चाहिए कि हम सच्चे मार्ग पर चल रहे है। तभी सारा ससार हमारा अनुसरण करेगा।

महात्माजी के लिए जो सोचते है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्ति नही थे, उनका काम भारतवर्ष तक ही सीमित था, यह उनकी भूल है। भारतवर्ष तो उनकी प्रयोगशाला मात्र था। वह समझते थे कि यदि सत्य, अहिसा से वह देश मे सफलता प्राप्त कर सकेगे, तो उनका सदेश सारे ससार मे फैलेगा।

मै महात्माजी को अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हू और प्रार्थना करता हू कि मुझमे शक्ति पैदा हो कि मै उनके बताए हुए मार्ग का अनुसरण किसी-न-किसी अश मे कर सकू।

: ४४ :

अकल्पनीय घटना

कन्हैयालाल माणेकलाल मुनशी

गाधीजी के बारे मे कुछ कहने की मेरी इच्छा नही होती। उन्हे उनके अतिम क्षणो मे देखने के बाद मेरी पहली मूर्च्छा के समय मे मेरे मस्तिष्क ने सदमे के विरुद्ध एक रक्षात्मक कवच-सा तैयार कर लिया है। उनका देहावसान अभी भी अस्वाभाविक-सा लगता है। मै जानता हू कि उनका देहात हो गया है, फिर भी मै इसकी कल्पना भी नही कर सकता कि वे अब नही रहे। मुझमे कुछ ऐसी सतत अचेतन चेतना व्याप्त है कि यदि मै बिडला-भवन मे अपने कमरे की सीढी पार कर बापू के कमरे मे चला जाऊ तो मुझे वही प्रेमभरी मुस्कान मिलेगी, जो बृहस्पतिवार की शाम को, जब मै उनके कमरे मे गया, तब उन्होने प्रदान की थी। कई बार उन्होने मुझे इस बात का गौरव भी प्रदान किया था कि मै सत्य और अहिसा पर अपने विचार उनके सामने रख सकू, क्योकि मै उनके जीवन को योगसूत्र और भगवद्गीता की साक्षात् व्याख्या मानता था। मैने बृहस्पतिवार को मिले अवसर का उपयोग १९४५ मे अधूरी छूटी एक वार्ता को फिर से प्रारम्भ करके किया।

"बापू" मैने कहा, "मै अपनी बात आपको एक विनम्र बधाई देने के साथ

शुरु करूगा।"

"वधाई किसलिए ?" उन्होने पूछा।

इसपर मैंने योगसूत्र और टाल्स्टाय विषयक अहिंसासवधी हमारी वार्ता की उन्हें याद दिलाई। मैंने १९४५ मे उनसे जो कहा था, उसका उन्हें स्मरण कराया कि १९४२ का अहिसात्मक आदोलन अहिंसा की कसौटी पर खरा नही उतरा, क्योकि इससे शत्रु मे क्रोध उत्पन्न हुआ, प्रेम नही, और पातजलि ने तो कहा था कि यदि कोई व्यक्ति अहिंसा की सिद्धि कर ले तो अन्य व्यक्ति उससे प्रेम करने लगते है।

"इस वार तो कसौटी खरी उतरी।" मैंने वात जारी रखते हुए कहा। "इस वार जव आपने अनशन किया तो मुसलमान, जो इतने वरसो मे आपसे घृणा करते थे, आपसे प्रेम करने लगे। हिन्दुओ ने, जो आपसे प्रेम तो करते ही थे, आत्म-सयम सीखा।" फिर मैंने उनके आगे हैदरावाद के मामले का चित्र खीचा। इसी समय राजकुमारी अमृतकौर भी हमारी वातचीत में शामिल हो गई।

अगले दिन मिलने की आशा के साथ मै उनके पास से ७ वजे उठ आया। लेकिन अगले दिन मै राज्य-मत्रालय मे था, जव शाम को ५-२५ पर विडलाजी का एक ड्राइवर यह सदेश लेकर आया कि गाधीजी पर गोली चलाई गई है। मै इसपर विश्वास न कर सका—शाति-पुरुष को कौन मार सकता है ?

मै टेलीफोन करने के लिए दौडा। सूचना की पुष्टि हो गई। मै अवाक् हो कार मे वैठ विडला-भवन भागा। मेरा दिमाग चकरा रहा था।

मै सीधा अदर उनके कमरे मे जा घुसा। वे अपने रोजाना के विस्तर पर लेटे हुए थे। मनु, आभा तथा अन्य लडकिया उनके सिर के पास थी। शोकाकुल, पर मजवूत सरदार, पडितजी पर, जो रोकते थे, हाथ रक्खे वैठे थे। मै कर्नल भार्गव की ओर जो वगल में ही खडे हुए थे, आकृष्ट हुआ, मूक उत्तर मे उन्होने अपना सिर हिलाया। निर्दय, भयावह मृत्यु ने गाधीजी को अपने कडे शिकजे मे कस लिया था। मै फूट पडा। गाधीजी जा चुके थे। मै अनाथ था।

एक और डाक्टर आए और चादर हटाकर उन्होने अपना स्टेथसकोप लगाया। मैंने रुधिर वहते तीन घाव देखे। मेरी दुखी अतरात्मा से सिसकियाँ फूट पडी।

मनु ने भगवद्गीता का पाठ आरभ कर दिया। हर शब्द के वाद उसकी आवाज टूट जाती थी। मणि वहन, प्यारेलाल और मै भी पाठ मे शामिल हो गए। गीता का पाठ करते समय मेरे सामने एक झलकी आई। श्रीकृष्ण एक पथ-विमुख

तीर से मारे गए थे। सुकरात की मौत जहर से हुई थी। मसीह को सूली पर चढाया गया था। गाधीजी गोलियो से मरे। चारो शिक्षको का अत अस्वाभाविक रूप से हुआ। पर शायद यह एक महान् जीवन का समुचित अत ही था। फिर, इनमे से भी सुकरात ओर ईसा मसीह की मोत एक विरोधी समाज के हाथो अपराधियो के रूप मे हुई थी। श्रीकृष्ण एक अज्ञात शिकारी द्वारा मारे गए। गाधीजी का अत शाति के और इसलिए धरती पर मनुष्य की नियति के एक शत्रु के हाथो हुआ।

उन्होने भारत को एक राष्ट्र के रूप मे सगठित किया। उन्होने भारत को एक राष्ट्रीय भाषा दी। उन्होने भारत के लिए एक नई परपरा कायम की। उन्होने एक शासनिक निगम प्रस्थापित किया। उन्होने राष्ट्र के स्वाधीनता-सग्राम का नेतृत्व किया। उन्होने उसके स्वतत्रता-जन्म की अध्यक्षता की। जव वे मरे तो राष्ट्र ने उनकी एक स्वर से वदना की। मरते समय वे सम्राटो के समान थे। उनकी वाणी से भारत की भारी भरकम सरकार हिल जाती थी। और यह सब उन्होने अपने शत्रु का वाल भी वाका किये विना अक्षरश एक सच्चे लोकतत्रवादी के रूप मे प्राप्त किया।

लेकिन उनकी ये राजनैतिक सिद्धिया, जो उन्हे ससार के समस्त राजनैतिक उद्धारको के आगे खडा कर देती है, उनकी नैतिक विजयो के आगे कुछ भी नही। उन्होने दासो को मनुष्य वनाया। उन्होने भारतीय नारी समाज को स्वतत्र किया। उन्होने समाज से अस्पृश्यता का विनाश किया। उन्होने उन फौलादी दीवारो को तोड दिया, जिनमे हमारा समाज वधा हुआ था। उन्होने 'पारलौकिकता' को, जिसका भूत भारत पर सवार था, समाप्त कर दिया। उन्होने हीन भावना के शाप को, जो हमारी सामूहिक चैतन्यता पर गत ९०० वर्ष के विदेशी आधिपत्य से हावी हो गया था, समाप्त किया। उन्होने भारतीयो का अपनी सास्कृति मे अभिमान और अपनी शक्ति मे विश्वास पुन जाग्रत किया—जिसे और जिसके अतिरिक्त अपनी आत्मा को भी वे खो चुके थे। उन्होने भारत की अविनाशी सस्कृति को पुन प्रतिष्ठित किया और उसे विश्व-विजय के पथ पर फिर से आरूढ किया। वे नव-जीवन के दूत थे।

लेकिन यही सवकुछ नही था। उन्होने स्वय अपने भीतर आर्य-सस्कृति के तत्त्वो की सिद्धि करने और उन्हें नव-प्राण देने की चेष्टा की। मोह, भय और क्रोध पर श्रेष्ठता प्राप्त कर अपने व्यक्तित्व को सुगठित करने के लिए उनका प्रयास जीवन भर चलता रहा। इस तथ्य के वे साक्षात् प्रमाण थे कि नैतिक व्यवस्था

एक सजीव शक्ति है। उन्होंने स्वयं अपने में अहिंसा की सिद्धि की और शत्रु उनके पास अपना प्यार लिये आए। उन्होंने सत्य की सिद्धि की और उनके कार्यों का परिणाम चिरस्थायी हुआ। उन्होंने यौन-संबंधों का त्याग कर दिया और वे अक्षुण्ण स्फूर्तिवान् रहे। उन्होंने धन का मोह छोड़ दिया और उनके महान् कार्यों के लिए धन बिन-मांगे ही आता गया। उन्होंने सम्पत्ति से नाता तोड़ दिया था और वे जीवन का अर्थ जान गए थे। वे ईश्वर में लीन थे और ईश्वर उनमें लीन था।

वे ईश्वर के एक उपकरण के रूप में ही आए, जिये और मरे। उनका जीवन और उसका प्रत्येक क्षण उसकी प्रार्थना में गया। उनका देहांत तो अपना कर्त्तव्य पूरा करने के बाद उसकी आज्ञा के पालन में तत्क्षण प्रस्थान मात्र था। और उनका अंत भी अद्भुत था। क्योंकि एक पूरा राष्ट्र दुःखी था और सारा संसार शोकग्रस्त और सारा जमाना उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा था।

राजाधिराज, दूत, योगी, और स्वयं मेरे लिए मेरे पिता और पथ-प्रदर्शक! हजारों और लोगों के समान उनके बिना मेरा जीवन सूना है।

: ४५ :

सबसे बड़ा काम

जे० बी० कृपालानी

आज हमारे दिल भरे हुए हैं और अपने इतिहास की सबसे बड़ी ट्रेजेडी के अवसर पर हमारे लिए अधिक कहना कठिन है। शारीरिक रूप से महात्माजी हमारे बीच नहीं रहे, लेकिन अगर हम लोग उनका अनुसरण ही करते रहें और उस रोशनी में, जिससे उन्होंने हमारे पथ को प्रकाशित कर दिया है, काम करते रहें तो वे आत्मिक रूप से हमारे साथ रहेंगे। उनकी मृत्यु से यही बात सिद्ध होती है कि संसार अभी उनके सत्य और अहिंसा के सिद्धांत के लिए और जिस प्रकार उसे उन्होंने वैयक्तिक और सामूहिक जीवन पर लागू किया है, उसके लिए तैयार नहीं है। सत्य और अहिंसा का रास्ता अभी भी, जैसाकि वह इतिहास में सदा रहा है, शहादत का रास्ता है।

नैतिक कानून में उनके विश्वास की सबसे बड़ी परीक्षा हाल की घटनाओं द्वारा हुई थी, फिर भी वे परीक्षा में खरे उतरे। जीवन की सबसे काली घड़ी में भी उनका विश्वास नहीं डिगा। जो लोग उनके समझे जाते हैं, उनको चाहे कुछ भी क्यों

न हो जाय, उसका वदला नही लिया जाना चाहिए। कोई प्रत्याक्रमण नही होना चाहिए। मानसिक हिंसा तक नही होनी चाहिए। हिन्दू और सिख घरो को चाहे कुछ हो जाय, भय या हिंसा के भय से खाली किये किसी मुस्लिम मकान पर कब्जा नही किया जाना चाहिए। खाली किये गए मुस्लिम गाव तक विना कब्जा किये खाली रहने चाहिए। पाकिस्तान से अपहृत मुस्लिम महिलाओ को सुरक्षा और आदर के साथ वापस लौटा देना चाहिए। चाहे पाकिस्तान हिन्दू और सिख महिलाओ के साथ ऐसा न करे। गाधीजी का सदा से यह मत रहा कि नैतिक कानून की वदिश यही है कि व्यक्ति अपने और अपनी जाति के अपराधो को वडा माने और दूसरो और दूसरी जातियो के अपराधो को छोटा। इसी प्रकार नैतिक कानून को पूर्णत अमल मे लाया जा सकता है, और इस प्रकार अमल मे लाने का परिणाम सदा अच्छा ही होगा। नैतिक कानून के अनुसार कार्य करनेवाले व्यक्ति और जाति कभी दु ख से नही रह सकते। धर्म की विजय अवश्यम्भावी है—'यतो धर्मस्ततो जय'।

उन्होने ससार को दिखा दिया कि अपनी जाति के प्रति प्रेम मानवता के प्रति प्रेम से कभी असगत नही हो सकता। उन्होने कभी किसी हिन्दू या मुसलमान या किसी अन्य जाति के सदस्य या भारतीय व अभारतीय मे भेद नही किया। वे केवल मानवता को मानते थे, एक ही कानून को मानते थे और वह कानून नैतिक कानून था, जिसके साथ विश्व वँधा तथा सम्बद्ध है।

आज हमारे सामने, जो उन्हे अपना शिक्षक मानते थे, और उनसे जो थोडी-वहुत अच्छाइया हम लोगो मे है, उन्हे ग्रहण करते थे, सबसे वडा काम अपनी कतारें वाँधने, सुसगठित होने और उनकी भावना के अनुसार काम करने और उनके सपने के स्वराज्य को लाने का है, जिसकी मोटी रूप-रेखा वनाने का ही उन्हे समय मिल पाया था। उनके आशीर्वाद हमारे साथ रहे और भगवान् हमे वह शक्ति और ईमानदारी प्रदान करे कि हम उनके मिशन को, जिसका सवध किसी खास विचार, सम्प्रदाय या देश से न होकर समस्त मानवता से था, आगे ले जा सकें।

: ४६ :

हम अनुयायियों का कर्त्तव्य

राजकुमारी अमृतकौर

पलक झपकते-झपकते ही हमारे सबमे बडे तथा सबसे प्रिय नेता, हमारे मित्र, दार्शनिक और पथ-प्रदर्शक, हमसे अलग कर दिये गए। नेता मे अधिक वे हम मबके पिता-से थे। हम उन्हे बापू यो ही नही कहते थे। आज सचमुच हम अनाथ है।

हमारे इतिहास के इस नाजुक दौर के समय उनकी मृत्यु का मूल्याकन करना असभव है। मुझे विश्वास है कि दिन-प्रति-दिन हम उनके मार्ग-दर्शन के अभाव का अनुभव करेगे। उनके दोष-रहित नेतृत्व मे हमने राजनैतिक स्वतत्रता का अपना लक्ष्य प्राप्त किया। १५ अगस्त के लगभग एकदम आरम्भ होनेवाले मम्प्रदायिक दगो से उन्हे मानसिक आघात लगा। मार-काट में लिप्त भारत उनके लिए असह्य था। उन्होने हमारे नैतिक पतन को समझा और एक स्नेही पिता की भाति फिर अथक रूप से मही मार्ग दिखाया। अपने असीम प्रेम मे वे अनेक मीनो मे क्रोध की धधकती आग को शात करने की चेष्टा कर रहे थे। वे ही हमारे और विनाश के बीच खडी हस्ती थे, क्योकि अराजकता और अव्यवस्था, घृणा और हिंमा हमे कही भी ले जा सकते है।

एक पागल आदमी के क्रोध ने उनकी निर्बल काया हमसे दूर कर दी है, लेकिन उनकी आत्मा को कौन मार सकता है? इस लिहाज से तो वे हमें छोड गए कि उनके प्रिय स्वरूप का दर्शन हम फिर कभी न कर सकेगे, उनकी मीठी वाणी फिर कभी न सुन पायगे, उनके हाथ के स्नेह-स्पर्श का फिर कभी अनुभव न कर सकेंगे, उनमे प्राप्त होनेवाली सात्वना फिर कभी नही पा सकेंगे, लेकिन वे कभी नही जा मकते, और हम अपने पास उनकी उपस्थिति का आभास निरतर पाते रहेगे और मेरी आशा है कि अब हम उनके प्रति उनके हमारे साथ होने के समय से अधिक मच्चे होगे।

उन्होने शहादत का ताज पहन लिया है। उनकी आत्मा विश्राम कर रही है। लेकिन हमारे लिए उन्हे सर्वोच्च बलिदान करना पडा। हमें अपना अपराध नही भूल जाना चाहिए। प्रत्येक सच्चे भारतीय को अपना मस्तक घोर लज्जा मे इसलिए नत कर लेना चाहिए कि हममें से ही एक इतना गिर गया था कि उसने उनके अमूल्य जीवन का अन्त कर दिया। भगवान् उसे क्षमा करे और हम हत्यारे को भुला सकें,

क्योकि वापू ने अवश्य ही उसे क्षमा कर दिया होगा और उस समय भी उसे प्यार किया होगा, जव वह उनपर गोली चला रहा था।

कल से हम सव शोक की मार खाये हुए निराशा मे ग्रस्त है, फिर भी हममें से प्रत्येक को यह सकल्प करना चाहिए कि वह इनमे से किसीके आगे नही झुकेगा। हममे इतनी शक्ति होनी चाहिए कि हम सत्य और प्रेम के पथ का, जिसपर वे हमें अवश्य चलाते, अनुगमन कर सकें और इस प्रकार समय रहते अपने देश के नाम को कलकित करने वाले इस दाग को मिटा सकें। भगवान हम सवपर दया करें और हमें वापू के प्रति सच्चे होने और इस प्रकार उनके स्वप्नो का भारत वनाने की शक्ति दे।

: ४७ :

इतिहास के अमर व्यक्ति

डाक्टर सय्यद हुसेन

महात्मा गाधी की मृत्यु से शोक और प्रशसा की जमाने भर मे जो लहर उठी हैं, इतिहास मे उसकी और कोई मिसाल नही मिलती। प्रेसीडेंट रूजवेल्ट की असामयिक और अचानक मौत के समय मैं खुद अमरीका में मौजूद था। उस महान् राजनीतिज्ञ और उदारता के दूत के लिए व्यापक और वास्तविक शोक मनाया गया था, लेकिन उसकी गाधीजी की मृत्यु पर विश्व-व्यापी शोक-प्रदर्शन से कोई तुलना नहीं की जा सकती। इनके जीवन, कार्य और व्यक्तित्व की जन-चेतना पर अमिट छाप पड़ी है और इनकी याद और प्रेरणा इनकी स्थायी विरासत के रूप में मौजूद रहेगी।

खुद गाधी-साहित्य मे इस समय लाखो प्रकाशित पुस्तके है। अव से इतिहासकार और जीवन-चरित-लेखक उनके अद्भुत, श्रेष्ठ और वहुमुखी जीवन की कथा-वस्तु लेना शुरू कर देगे। इन सवके अतिरिक्त धार्मिक तथा वौद्धिक मान्यताओ का सग्राहक उनके जीवन के अध्ययन से वहुमूल्य और अपरिमित सामग्री एकत्र कर सकता है। सीधा-सादा तथ्य यह है कि महात्मा गाधी मानव-इतिहास के सवसे वडे व्यक्तियो में से एक हो गए है।

यह न तो उनके महान् व्यक्तित्व का अकन करने का अवसर है, और न उनका

कोई प्रयास ही है। हम उनकी स्मृति मे अपनी व्यक्तिगत श्रद्धाजलि ही अर्पित कर सकते है। खुद मेरा उनसे १९१४ मे सबध है, जब मैं उनसे उनके दक्षिण-अफ्रीका से भारत लौटते समय लदन मे मिला था। वे जनवरी १९१५ मे भारत लौट गए और बम्बई प्रेसीडेंसी मे बस गए। १९१६ मे मैं भी 'बाम्बे क्रॉनिकल' के कार्यकर्ताओं मे सम्मिलित होने के लिए भारत लौट आया और इस प्रकार आने वाले तीन वर्षों में मुझे समय-समय पर उनसे मिलने और उन्हे जानने का अवसर मिला। लेकिन खिलाफत और सविनय अवज्ञा आन्दोलन के अवसर पर मैं वास्तव मे गाधीजी के निकट आया और हिन्दू-मुस्लिम एकता के महान् आन्दोलन के सबसे पहले समर्थको मे से एक बन गया, जिसके कि वे सबसे बडे प्रचारक और नेता थे। यद्यपि खिलाफत का प्रश्न मुसलमानो के लिए बडे धार्मिक महत्त्व का था, तथापि वह केवल उन्हीसे सबधित नही था और महात्मा गाधी की व्याख्या के अनुसार ही वह सर्वोच्च राष्ट्रीय महत्त्व का प्रश्न बन गया था। गाधीजी की मान्यता थी कि मुसलमानो के अग्रेजो के प्रति दावे जायज थे और इसलिए अपने मुसलमान देशवासियो का साथ देना सभी भारतीयो का कर्तव्य था। अत खिलाफत का प्रश्न एक राष्ट्रीय प्रश्न बन गया और भारत के मुसलमान उनके महान् नेतृत्व को मानने लगे। तीस साल की बात है कि गाधीजी ने अग्रेज तथा अन्य यूरोपीय राजनीतिज्ञो के सामने हमारा दृष्टिकोण पेश करने के लिए भारतीय खिलाफत शिष्टमडल के तीन प्रतिनिधियो मे से एक के लिए दिल्ली नगर मे मेरा नाम प्रस्तावित किया। मुझे याद है कि महात्मा गाधी के प्रस्ताव का अनुमोदन हकीम अजमल खा ने और समर्थन स्वामी श्रद्धानन्द ने किया था। इन नामो से कैसी अजीब स्मृतिया ताजा होती है! वे हिन्दू-मुस्लिम-एकता के दौर के प्रतीक थे—जो अभाग्यवशात् बडी अल्पकालीन थी—जिसकी अकबर महान के समय से भारतीय इतिहास मे कोई मिसाल नही मिलती है। यह एक अजीब-सी बात है कि राष्ट्रीय एकता के महान् अभियान मे मेरा महात्मा गाधी के साथ सबध रहा, और फिर कोई चौथाई शताब्दी के विदेश-प्रवास के बाद भारत वापस आने पर उस महात्मा के महान् सघर्ष के अन्तिम दौर को देखा और उसमे भाग लिया। महात्मा गाधी का सर्वोच्च बलिदान हिन्दू-मुस्लिम-एकता की वेदी पर हुआ। मैं इस बात को नही मान सकता कि ऐसा बलिदान व्यर्थ जायगा। उन्होने अपने रक्त से भारतीय एकता के आदर्श तथा धारणा को पवित्र किया, जिसके बिना न राष्ट्रीय शाति, न आदर और न वास्तविक स्वतन्त्रता हो सकती है। हम सबको राष्ट्रीय सहयोग के उस उद्देश्य को पूरा करने मे अपने आपको पुन अर्पित कर देना चाहिए,

जिसके वे वीर नेता और उत्प्रेरक थे। उनकी स्मृति का सम्मान हम उनके आदर्शों के प्रति सच्चे होकर ही कर सकते है।

गाधीजी सुकरात, ईसा और इमाम हुसैन जैसे इतिहास के सबसे वडे शहीदो में भी स्थान पा चुके है। गाधीजी पर अपनी पुस्तक मे मने वताया था कि इस्लाम के चौथे खलीफा हजरत अली के चरित्र की उन्होंने मुझसे वडी प्रशसा की थी। मेरे लिए शायद यह वात वहुत अप्रासगिक न होगी कि मै हजरत अली और महात्मा गाधी की शहादत की विचित्र समता सामने रखू। हजरत अली की हत्या उस समय हुई, जव वे सचमुच प्रार्थना मे लीन थे। गाधीजी की हत्या प्रार्थना-सभा मे जाते हुए हुई।

महात्मा गाधी और हजरत मूसा मे भी एक वडा विचित्र साम्य है। जिस समय उनकी अपनी ही जाति वालो द्वारा हत्या की गई, तव इजरायल के पैगम्वर (मूसा) अपने जातिभाइयो को अज्ञात भूमि की लम्वी और अप्रिय तकलीफो से निकाल कर वाछित भूमि तक ले जा चुके थे। इसी प्रकार महात्मा गाधी अपने देशवासियो को उनके लवे वधन से मुक्त कराकर स्वतत्रता की वाछित भूमि तक लाने के वाद अपने ही एक देशवासी के हाथो मारे गए।

मुझे गाधीजी की एक और महान् पैगम्वर से समता नजर आती है। गुरु नानक का देहान्त होने पर हिन्दू, मुसलमान और सिख सभी ने उन्हे अपना वताया, और कहा जाता है कि तीनो धर्मो की प्रथाओ के अनुसार उनकी तीन अन्तिम क्रियाए की गईं। महात्मा गाधी को भी अपनी मत्यु पर यही आश्चर्यजनक श्रद्धाजलि अर्पित की गई है। सचमुच यह दोनो हस्तिया भारत की आत्मिक एकता की सवसे वडी दूत थी।

इस प्रकार चाहे हम उन्हे एक पैगम्वर, या मसीह या शहीद—कुछ भी माने और यह तीनो वाते उनके महान् चरित्र मे मिलती भी है—वे इतिहास के अमर व्यक्तियो मे से एक हो गए हैं। उनके वलिदान से उनके देशवासी जागें तथा शुद्ध हो और उनकी महान् आत्मा हमें भारत की सेवा के लिए प्रेरित तथा पथ-प्रदर्शित करती रहे, जो उन्हे इतना प्रिय था और जिसके लिए उन्होने अपना सर्वस्व त्याग दिया।

: ४८ :

गांधीवाद अमर है

पट्टाभि सीतारामैया

मनुष्य मरने के लिए ही पैदा होता है और अन्य लोगो की भांति महापुरुष भी अपना दिन आने पर शरीर छोड देते है, पर वास्तव मे अपने पीछे छोटे कार्य के द्वारा वे सदा के लिए अमर हो जाते है। ये कार्य चिरस्थायी होते है और समय के साथ परिमाण और बल में बढते जाते है। ऐसे कार्य के पीछे जो उच्च आदर्श होते है, वे स्थायी होते है और बदली परिस्थितियो में नये वातावरण के अनुसार अपने को ढाल लेते है। संसार ने पिछली पच्चीस शताब्दियो से भी अधिक में जितने भी महापुरुषो को जन्म दिया है उनमे गांधीजी को—यदि आज नही माना जाता तोभी—सबसे बड़ा माना जायगा, क्योकि उन्होने अपने जीवन की गतिविधियो और अंगो को विभिन्न भागो मे बांटा नही, बल्कि जीवन-धारा को सदा एक और अविभाज्य माना। जिन्हे हम सामाजिक, आर्थिक और नैतिक के नाम से पुकारते है, वे वास्तव में उसी धारा की उपधाराए है, उसी भवन के अलग-अलग पहलू है। गांधीजी ने मानव-जीवन के उस नवकथानक की व्याख्या न किसी हृदयस्पर्शी वीर काव्य की भांति और न किसी दार्शनिक महाकाव्य की भांति की है, बल्कि उसे उन्होने मनुष्य की आत्मा मे अपने निम्नतम रूप में आत्म-स्वार्थ तथा उचित कार्य के प्रति निष्ठा, किसी ध्येय की सेवा और किसी विचार के प्रति स्वार्पण के बीच सतत चलनेवाले संघर्ष के नाटक की भांति माना है।

दक्षिण-अफ्रीका से वापस आने पर उन्होने देखा कि राष्ट्रीय जीवन कितना भ्रष्ट हो गया है, आर्थिक दवाव गांवो को किस प्रकार गरीब बना रहा है, सामाजिक असमानताओ ने मनुष्य-मनुष्य के बीच न्याय और ईमानदारी की सभी सीमाओ को किस प्रकार तोड डाला है और सरकार द्वारा एकत्रित पाप के धन के कारण देश का कैसा नैतिक पतन हो गया है। इसलिए उन्होने खद्दर और ग्राम-उद्योग के द्वारा एक स्वावलंबी और स्वयपूरित, अस्पृश्यता-निवारण के द्वारा आत्मप्रतिष्ठा और शराब, अफीम तथा भंग की बुराइयो से मुक्त आत्मशुद्ध समाज की बात रखी। रचनात्मक कार्यक्रम तथा सत्य और अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह के द्वारा विदेशी बंधन से भारत की मुक्ति के साथ-साथ भारत का पुनर्निर्माण करने

की चेष्टा की । इस प्रकार भारत के दासत्व को नष्ट कर और भारतीय राष्ट्रीयता की सही मायनो मे वुनियाद रखकर उन्होने अपने द्विमुखी उद्देश्य की पूर्ति की है ।

अपना कार्य पूरा करके वे हमे छोड गये है और आज भौतिक वृत्तियो मे लीन हम उनकी मृत्यु पर शोक प्रकट कर रहे है, जो किसी भी प्रकार असामयिक नही है किन्तु एकदम अस्वाभाविक है । हमे यह वात मान लेनी चाहिए कि अपना कार्य समाप्त करने के वाद अवतार की अपने कार्यक्षेत्र मे कोई जगह नही रह जाती। वास्तव मे गत जून मास से वे यह महसूस कर रहे थे कि अपनी आवश्यकता से अधिक वे जी रहे है और उनकी धारणा के समाज और नीति तथा उनके चारो ओर मान्य धारणाओ के वीच अन्तर वढता जा रहा है। अपने निर्वाण के अवसर पर भूतकाल मे भी अवतारो के सामने ऐसी ही जटिल परिस्थितिया आई। कुरुक्षेत्र की रणभूमि मे पाडवो की सफलता के वाद द्वारिका वापस लौटने पर श्रीकृष्ण ने देखा कि उनके कुल-वन्धु शराव और ऐयाशी में लीन थे, इसलिए वे जगल मे चले गये, जहा एक शिकारी ने श्याम हरिण समझकर उनपर तीर चला दिया, जिसके फलस्वरूप वे मारे गये। श्रीराम ने अपना कार्य पूरा करने के वाद सरयू के गहरे जल मे समाधि ले अपने जीवन का अत कर डाला। पश्चिम मे ब्रूनो को जीवित जलाया गया, सुकरात को जहर का प्याला पीना पडा, गैलीलियो को कारागृह मे वदी कर दिया गया और धमकियो मे उसकी जान गई, अब्राहीम लिकन को गोली मारी गई। गाधीजी को भी गोली मारी गई, लेकिन जिस प्रकार वे दसवें अवतार है, उसी प्रकार वे दशम् चिरजीवी भी है। गाधीजी का देहान्त अपने अन्तिम उपवास में ही हो गया होता, लेकिन हत्यारे के हाथो मरने के लिए वे उससे वच गये। इससे अधिक वुरी वात और कुछ नही होगी कि उनकी मृत्यु पर हम शोक करें, क्योकि उन्होने अपने जीवन भर हमे सिखाया था कि कोई भी व्यक्ति ससार के लिए ऐसा नही होना चाहिए कि उसके विना दुनिया का कार्य रुक जाय। उनका जीवन एक खुली पुस्तक के समान है, जो उनके वाद भी उनकी भावी सतान को प्राप्य है। हजारो साल तक उनकी शिक्षाओ का अनुसरण करना और उनसे रास्ता पाना अच्छी ही वात है। उनकी अतिम शिक्षा यह थी कि भारत स्वाधीन तो हो गया है, पर अभी स्वतत्र नही हुआ है। हिन्दू और मुसलमानो को सगठित करना उन तीन सवसे वडे कार्यों मे से एक था, जिनके साथ उन्होने राष्ट्र का नेतृत्व आरम्भ किया था और इसी काम के लिए उन्होने अपने प्राण भी दे दिये। क्या हम यह आशा नही

कर सकते कि उनके परिश्रम का फल, जिसे वह स्वयं नहीं देख पाये, उनके अनुगामियों के परिश्रम को फलीभूत करेगा और वे लोग इस महान आत्मा के प्रति अपनी तुच्छ श्रद्धांजलि के रूप में पहले की अपेक्षा अधिक देव और सुधार पायगे ?

इस विश्व-प्रसिद्ध व्यक्ति से, जिसकी शिक्षाएं अनिवार्यतः दोनों भू-गोलार्द्धों में राष्ट्रों के भविष्य का निर्माण करेंगी, हमारे सामने त्याग के लिए बुद्ध, पीड़ा के लिए ईसा, सत्यवादिता के लिए हरिश्चन्द्र, सम्पूर्णता के लिए श्रीराम और रणनीति के लिए श्रीकृष्ण की याद ताजा हो जाती है। गांधी ने—जिस व्यक्ति को नियति ने अपने देश का उद्धार करने के लिए जन्म दिया—पहले इच्छा और भय पर विजय पाकर स्वयं अपना उद्धार किया। वे अपने जीवन में एक नायक और मृत्यु में शहीद हो जाने वाले सत हैं। युद्ध और हिंसा से पीड़ित इस ससार के वे वर्तमान मसीहा हैं। यदि यह कथन, जो बार-बार दुहराया गया है, सत्य है कि "सच्चा ईसाई तो एक ही था और वह सूली पर चढाया गया"—तो इतनी ही सचाई के साथ यह भी कहा जा सकता है कि "सच्चा ईसाई एक ही था और उसे गोली मार दी गई।" आधी शताब्दी तक गांधीजी ने ससार की सेवा की और अपना स्थान छोड़ते समय वे अपनी सतति पर अपने खुद के और राष्ट्र के प्रति दुहरे कर्त्तव्य का भार छोड़ गये हैं। कम लोगों को यह गौरव प्राप्त हुआ है कि वे अपना स्मरण-लेख स्वयं लिख सकें। लेकिन ३० मार्च १९३१ को जब कराची में उन्होंने यह घोषित किया कि "गांधी मर सकता है, पर गांधीवाद अमर है" तो अनजाने ही उन्होंने अपना स्मरण-लेख लिख दिया।

वास्तव में गांधीवाद है क्या और कहां पर है ? वह न तो मनुष्य की जिह्वा, न वस्त्रों और न बदलती सामाजिक व्यवस्थाओं में निहित है, जो मानव-जीवन के स्वरूप को बनाती-बिगाड़ती रहती है। गांधीवाद एक जीवन-प्रणाली है। इस पर आश्रम का कोई एकाधिकार नहीं, और न कांग्रेस के भव्य मडप का ही इसपर कोई एकाधिकार है। इसका स्थान घने जगलों में नहीं है और न बहते पानी के किनारे है। इसका स्थान हृदय है। गांधीवाद जीवन की प्रणाली है। इसकी भाषाएं बीसियों हो सकती है, पर जबान एक है। यह एक ही ध्येय के लिए सैकड़ों मार्ग निर्धारित करता है। एक ही आदर्श की निष्ठा में यह हजारों प्रकार की सेवाएं करता है। गांधीजी चाहे मर जायं, पर गांधीवाद अमर है।

: ४६ :

गांधीजी : मानव के रूप में

घनश्यामदास विडला

गाधीजी का मेरा प्रथम सपर्क १९१५ के जाडो मे हुआ। वे दक्षिण-अफ्रीका से नये-नये ही आये थे और हम लोगो ने उनका एक वृहत् स्वागत करने का आयोजन किया था। मै उस समय केवल २२ साल का था। गाधीजी की उस समय की शक्ल यह थी सिर पर काठियावाडी साफा, एक लम्वा अगरखा, गुजराती ढग की धोती और पाव विलकुल नगे। वह तस्वीर आज भी मेरी आखो के सामने ज्यो-की-त्यो नाचती है। हमने कई जगह उनका स्वागत किया। उनके वोल का ढग, भापा और भाव विलकुल ही अनोखे मालूम दिये। न वोलने मे जोश, न कोई अतिशयोक्ति, न कोई नमक-मिर्च। सीधी-सादी भापा।

१९१५ मे जो सपर्क वना वह अन्त तक चलता ही रहा और इस तरह ३२ साल का गाधीजी के साथ का यह अमूल्य सपर्क मुझपर एक पवित्र छाप छोड गया है, जो मुझे तमाम आयु स्मरण रहेगा। उनका सत्य, उनका सीधापन, उनकी अहिंसा, उनका शिष्टाचार, उनकी आत्मीयता, उनकी व्यवहार-कुशलता इन सव चीजो का मुझपर दिन-प्रति-दिन असर पडता गया और धीरे-धीरे मै उनका भक्त वन गया। जव समालोचक था तव भी मेरी उनमे श्रद्धा थी। जव भक्त वना तो श्रद्धा और भी वढ गई। ईश्वर की दया है कि ३२ साल का मेरा एक महान् आत्मा का सपर्क अन्त तक निभ गया। मेरा यह सद्‌भाग्य है।

गाधीजी को मैने सन्त के रूप मे देखा, राजनैतिक नेता के रूप में देखा और मनुष्य के रूप मे भी देखा। मेरा यह भी खयाल है कि अधिक लोग उन्हे सन्त या नेता के रूप मे ही पहचानते है। लेकिन जिस रूप ने मुझे मोहित किया वह तो उनका एक मनुष्य का रूप था, न नेता का और न सन्त का। उनकी मृत्यु पर अनेक लोगो ने उनकी दु ख-गाथाएँ गाई है और उनके अद्‌भुत गुणो का वर्णन किया है। मै उनके क्या गुण गाऊ? पर वे किस तरह के मनुष्य थे यह मै वता सकता हू।

मनुष्य क्या थे वे कमाल के आदमी थे। राजनैतिक नेता की हैसियत से वे अत्यन्त व्यवहार-कुशल तो थे ही। किसीसे मैत्री वना लेना यह उनके लिए कुछ चन्द मिनटो का काम था। द्वितीय राउन्ड टेविल कार्फ्रेंस में जव वे इग्लैंड गये

थे तव उनके कट्टर दुश्मन सैम्युल होर से मैत्री हुई तो इतनी कि अन्त तक दोनो मित्र रहे । लिनलियगो से उनकी न निभी, पर यह दोप सारा लिनलियगो का ही था । गाधीजी ने मैत्री रखने में कोई कसर न रखी। जिनसे गाधीजी मैत्री रखते, छोटी चीजो में वे उनके गुलाम वन जाते थे। पर जहा सिद्धात की वात आती थी वहा डट के लडाई होती थी । पर उसमें भी वे कटुता न लाते थे। लन्दन में जितने रोज रहे विना सैम्युल होर की आज्ञा के कोई वक्तव्य या व्याख्यान देना उन्होने स्वीकार नही किया । लिनलियगो मे भी कई वातो मे ऐसा ही सवध था।

निर्णय करने में वे न केवल दक्ष थे, पर साहसी भी थे। चौरीचौरा के काड को लेकर सत्याग्रह का स्थगित करना और हिमगिरि जितनी अपनी वडी भूल मान लेना इसमें काफी साहस की जरूरत थी। सत्याग्रह स्थगित करने पर वे लोगो के रोप के शिकार वने, गालिया खाईं, मित्रो को काफी निराश किया, पर अपना दृढ निश्चय उन्होंने नही छोडा। १९३७ में काग्रेस ने जब गवर्नमेंट वनाना स्वीकार किया तव गाधीजी के निर्णय से ही प्रभावान्वित होकर काग्रेस ने ऐसा किया। गाधीजी ने जहा कदम वढाया, सव पीछे चल पडे। काग्रेस-नायको में उस समय झिझक थी, वे शकाशील थे। १९४२ मे जबकि क्रिप्स आये तव हाल इसके विपरीत था। काग्रेस के कुछ नेता चाहते थे कि क्रिप्स की सलाह मान ली जाय और क्रिप्स-प्रस्ताव स्वीकार किया जाय । पर गाधीजी टस-से-मस न हुए, वल्कि उन्होने 'हिन्दुस्तान छोडो' की धुन छेडी और लड पडे । इस समय भी उन्होने निर्णय करने में काफी साहस का परिचय दिया।

मुझे याद आता है कि राजनीति में उस समय करीव-करीव सन्नाटा था। लोगो में एक तरह की थकान थी। नेताओ मे प्राय एकमत था कि जनता लडने के लिए उत्सुक नही है ।

विहार से एक नेता आये । गाधीजी ने उनसे पूछा—जनता में क्या हाल है ? क्या जनता लडने को तैयार है ? विहारी नेता ने कहा—जनता मे कोई तैयारी नही है, कोई उत्साह नही है। पीछे रुककर उन्होंने कहा कि मुझे एक कथा स्मरण आती है। एक मर्तवा नारद विष्णु के पास गए। विष्णु ने नारद से पूछा—नारद, ज्योतिप के अनुसार वर्षा का कोई ढग दीखता है। नारद ने पचाग देखकर कहा कि वर्षा होने की कोई सभावना नही है। नारद ने इतना कहा तो सही, पर विष्णु के घर से वाहर निकले तो वर्षा से सुरक्षित होने के लिए अपनी कमली ओढ ली।

विष्णु ने पूछा—नारद, कम्वल क्यो ओढते हो ? नारद ने कहा—मैने ज्योतिप की वात वताई है, पर आपकी इच्छा क्या है, यह तो मै नही जानता। अन्त मे जो आप चाहेगे वही होने वाला है। इतना कहकर उन विहारी नेता ने कहा—वापू, जनता मे तो कोई जान नही है, पर आप चाहेगे तो जान भी आ ही जायगी। यह विहारी नेता थे सत्यनारायण वावू, जो अव सरकार की असेम्वली मे मुख्य सचेतक है। जो उन्होने सोचा था वही हुआ। जनता मे लडने की कोई उत्सुकता न थी, पर विगुल वजते ही लडाई ठनी तो ऐसी कि अत्यन्त भयकर।

पर यह तो मैने उनकी नेतागिरी और राजकौशल की वात वताई। इतने महान् होते हुए भी किस तरह छोटो की भी उन्हे चिन्ता थी, यह आत्मीयता उनकी देखने लायक थी। यही चीज उनके पास एक ऐसे रूप मे थी कि जिसके कारण लोग उनके वेदाम गुलाम वन जाते थे। उनके पास रहनेवाले को यह डर रहता था कि वापू किसी भी कारण अप्रसन्न न हो और यह भय इसलिए नही था कि वे महान व्यक्ति थे, पर इसलिए था कि मनुष्य मे जो सहृदयता और आत्मीयता होनी चाहिए वह उनमे कूट-कूट कर भरी थी।

वहुत वर्षो की वात है। करीव २२ साल हो गये। जाडे का मौसम था। कडाके का जाडा पड रहा था। गाधीजी दिल्ली आये थे। उनकी गाडी सुवह चार वजे स्टेशन पर पहुची। मै उन्हे लेने गया। पता चला कि एक घटे वाद ही जाने वाली गाडी से वे अहमदावाद जा रहे है। उनके गाडी से उतरते ही मैने पूछा—एक दिन ठहरकर नही जा सकते ? उन्होने कहा—क्यो, मुझे जाना आवश्यक है ? मै निराश हो गया। उन्होने फिर पूछा—क्यो ? मैने कहा—घर मे कोई वीमार है। मृत्यु-शय्या पर है। आपके दर्शन करना चाहती है। गाधीजी ने कहा—मै अभी चलूगा। मैने कहा—मै इस जाडे मे ले जाकर आपको कष्ट नही दे सकता। उन दिनो मोटरे भी खुली होती थी। जाडा और ऊपर से जोर की हवा, पर उनके आग्रह के वाद मै लाचार हो गया। मै उन्हे ले गया, दिल्ली मे कोई १५ मील की दूरी पर। वहा उन्होने रोगी से वात कर उसे सान्त्वना दे दिल्ली केंटोनमेंट पर अपनी गाडी पकडी। मुझे आश्चर्य हुआ कि इतना वडा व्यक्ति मेरी जरा-सी प्रार्थना पर सुवह के कडाके के जाडे मे इतना परिश्रम कर सकता है और कष्ट उठा सकता है। पर यह उनकी आत्मीयता थी जो लोगो को पानी-पानी कर देती थी। मृत्यु-शय्या पर सोने वाली यह मेरी धर्मपत्नी थी।

परचुरे शास्त्री एक साधारण ब्राह्मण थे। उन्हें कुष्ट था। उनको गाधीजी ने अपने आश्रम मे रखा सो तो रखा, पर रोजमर्रा उनकी तेल की मालिश भी स्वय अपने हाथो करते थे। लोगो को डर था कि कही कुष्ट गाधीजी को न लग जाय। पर गाधीजी को इसका कोई भय न था। उनको ऐसी चीजो मे अत्यन्त सुख मिलता था।

४२ के शुरु मे मै वर्धा गया। कुछ दिन बाद उन्होने मुझसे कहा—तुम्हारा स्वास्थ्य गिरा मालूम देता है। इसलिए मेरे पास सेवाग्राम आ जाओ और यहा कुछ दिन रहो। मै तुम्हारा उपचार करना चाहता हू। मैने कहा—वर्धा ठीक है। सेवाग्राम मे क्यो आपको कष्ट दू। मुझे सकोच तो यह था कि सेवाग्राम मे पाखाना साफ करने के लिए कोई मेहतर नही होता। वहापर टट्टी की सफाई आश्रम के लोग करते है। जहा मुझे ठहराना निश्चित किया गया था, वहा की टट्टी महादेव भाई साफ किया करते थे। मैने उन्हे अपना सकोच बताया कि क्यो मै सेवाग्राम नही आना चाहता था। मै स्वय अपनी टट्टी साफ नही कर सकता और यह बर्दाश्त नही कर सकता कि महादेव भाई जैसा विद्वान् और एक तपस्वी ब्राह्मण उसको साफ करे। गाधीजी को मेरा सकोच निरा वहम लगा। पाखाना उठाना क्या कोई नीच काम है? महादेव भाई ने भी मजाक किया, परन्तु मेरे आग्रह पर मेहतर रखना स्वीकार कर लिया गया। आगाखा पैलेस मे जब उनका उपवास चलता था तो मै गया। बडे बेचैन थे। बोलने की शक्ति करीब-करीब नही के बराबर थी। मैने सोचा कि कुछ राजनैतिक बातें करुगा, पर आश्चर्य हुआ। पहुचते ही हम सबका कुशल-मगल, छोटे-मोटे बच्चो के बारे में सवाल और घर-गृहस्थी की बाते। इसी मे काफी समय लगा दिया। मै उनको रोकता जाता था कि आपमे शक्ति नही है, मत बोलिये, पर उनको इसकी कोई परवाह नही थी।

इस तरह की उनकी आत्मीयता थी, जिसने हजारो को उनका दास बनाया। नेता बहुत देखे, सन्त भी बहुत देखे, मनुष्य भी देखे, पर एक ही मनुष्य मे सन्त, नेता और मनुष्य की ऊचे दर्जे की आत्मीयता मैने और कही नही देखी। मै अगर गाधीजी का कायल हुआ तो उनकी आत्मीयता का। यह सबक है जो हर मनुष्य के सीखने के लायक है। यह एक मिठास है, जो कम लोगो मे पाई जाती है।

गाधीजी करीब पौने पाच महीने के बाद इस मर्तबा हमारे घर मे रहे। जैसा-कि उनका नियम था, उनके साथ एक बडी बरात आती थी। नये-नये लोग आते थे और पुराने जाते थे। भीड बनी रहती थी। घर तो उनके ही सुपुर्द था। जितने

मेहमान उनके ऐसे भी आते थे जो मुझे पसन्द नही थे, जो उनके पासवालो को भी पसन्द नही थे। वम गिरने के वाद वहुतो ने उन्हे वेरोक-टोक भीड में घुस जाने से मना किया। सरदार वल्लभभाई ने उनके लिए करीव ३० मिलिटरी पुलिस और १५-२० खुफिया विडला-हाउस मे तैनात कर रक्ख थे, जो भीड में इवर-उघर फिरते रहते थे, पर मै जानता था इस तरह से उनकी रक्षा हो ही नही सकती। जो लोग आते थे उनकी झडती लेने का विचार पुलिस ने किया मगर गाधीजी ने रोक दिया। हर सवाल का एक ही जवाव उनके पास था—"मेरा रक्षक तो राम है।"

उपवास के वाद उनका हाजमा विगडा। मैने कहा—कुछ दवा लीजिये। फिर वही उत्तर। मेरा वैद्य राम है। मेरी दवा राम है। कुछ अदरक, नीवू, घृतकुमारी का रस, नमक और हीग साथ मिलाकर उनको देना निश्चित किया। आग्रह के वाद साधारण खान-पान की चीज समझकर उन्होने इसे लेना स्वीकार किया। पर वह भी कितने दिन ? अन्त मे तो राम ही उन्हे अपने मदिर में ले गये।

उनके अन्तिम उपवास ने उनके निकटस्थ लोगो मे काफी चिन्ता पैदा की। उपवास के समय मैने काफी वहस की। मैने कहा—"मेरा आपका ३२ साल का सपर्क है। अपके अनेक उपवासो मे मै आपके पास रहा हू। मुझे लगता है कि आप का यह उपवास सही नही है", पर गाधीजी अटल थे। यह कहना भी गलत है कि गाधीजी आस-पास के लोगो से प्रभावान्वित नही होते थे। वुद्धि का द्वार उनका सदा खुला रहता था। वहस करनेवाले को प्रोत्साहन देते थे और उसमें जो सार होता उसे ले लेते थे, चाहे वह कितने ही छोटे व्यक्ति से क्यो न मिलता हो। वार-वार वहस करते-करते मुझे लगा कि उनके उपवास के टूटने के लिए काफी सामग्री पैदा हो गई है। मुझे ववई जाना था। जरूरी काम था। मैने उनसे कहा, "मै ववई जाना चाहता हू। मुझे लगता है कि अव आपका उपवास टूटेगा। न टूटनेवाला हो तो मै न जाऊ।" मैने यह प्रश्न जान-वूझकर उन्हे टटोलने के लिए किया। उन्होने मजाक शुरू किया। कहा—"जव तुम्हे लगता है कि उपवास का अन्त होगा तो फिर जाने में क्या रुकावट है ? अवश्य जाओ, मुझसे क्या पूछना है ?" मैने कहा—मुझे तो उपवाम का अन्त लगता है, पर आपको लगता है या नही, यह कहिये। उन्होने मजाक जारी रखा और साफ उत्तर न देकर फदे में फमने मे इकार किया। मैने कहा—नचिकेता यम के घर पर भूखा रहा तो यम को क्लेश हुआ, क्योकि ब्राह्मण घर मे भूखा रहे तो पाप लगता है। आप यहा उपवास करते है तो मुझपर पाप

चढता है। इसलिए अब इसका अन्त होना चाहिए। गांधीजी ने कहा—मैं ब्राह्मण कहा हू। पर आप तो महाब्राह्मण है। इसपर बडा मजाक रहा। मैंने कहा—अच्छा, आप यह आशीर्वाद दीजिए कि मैं शीघ्र-से-शीघ्र आपके उपवास टूटने की खबर बबई में सुनू। फिर भी उनका मजाक तो जारी ही रहा। मैंने कहा—अच्छा यह बताइये कि आप जिन्दा रहना चाहते है या नही। उन्होंने कहा—हा, यह कह सकता हू कि मैं जिन्दा रहना चाहता हू। बाकी तो मैं राम के हाथ में हू। उपवास तो समाप्त हुआ, लेकिन राम ने उन्हें छोडा नही।

शुक्र को करीब सवा पाच बजे गांधीजी को गोली लगी और उसी दम उनका देहात हो गया। मैं उस समय पिलानी था। करीब ६ बजे कालेज के छात्र दौडते हुए आए और उन्होंने रेडियो की खबर बताई कि किस तरह गांधीजी चल बसे। सन्नाटा छा गया।

मैंने रात को ही वापस आने की ठानी, पर मालूम हुआ कि सुबह वायुयान से जाने से हम जल्दी पहुच सकेगे। सोया, पर रात भर बेचैनी रही। स्वप्न आने लगे। मानो मैं दिल्ली पहुच गया। पहुचते ही बापू के कमरे में गया तो देखता हू, जहा बापू लेटते थे वही मृतक अवस्था मे लेटे पडे है। पास मे प्यारेलाल और सुशीला बैठे है। मैंने जाकर प्रणाम किया। मुझे देखते ही गांधीजी उठ बैठे। कहने लगे—"अच्छा हुआ तुम आ गए। यह कोई नादान का काम नही है। यह तो गहरा षड्यन्त्र था। पर मैं तो प्रसन्नता के मारे अब नाचूगा, क्योंकि मेरा काम तो अब समाप्त हो गया।" फिर कुछ इधर-उधर की बात करते रहे। अन्त में घडी निकालकर कहने लगे, "अब तो ११ बज गये है। तुम लोग अब तो मुझे श्मशान घाट ले जाओगे इसलिए लेट जाता हू।" इतना कहकर फिर लेट गये।

बस इसके बाद मैंने बापू को चैतन्य रूप मे नही देखा न उनकी जबान सुनी। यह भी तो सपना ही था, पर सपने मे भी प्रत्यक्ष-का-सा अनुभव किया। दिल्ली पहुचा तो बापू को पडा पाया। चेहरे पर उनके कोई विकृति नही थी। वही प्रसन्न मुद्रा, वही क्षमा-भाव और वही मुस्कान। पर अब तो वह भी देखने में नही आयगी।

एक दीपक बुझ गया, पर हमारे लिए रोशनी छोड गया।

: ५० :

महाप्रस्थान

बी० के० मल्लिक

किसी भी हिन्दुस्तानी के लिए, गाधीजी का इस नाटकीय ढग से उठ जाना निश्चय ही एक ऐहिक बात थी। स्पष्टरूप से यह उस प्राचीन परपरा के अत की सूचक है जो बुद्ध और महावीर से आरम्भ हुई थी, और जो समय-समय पर नानक, कबीर, चैतन्य एव बहुत-से दूसरे सतो से वाणी लेकर विभिन्न स्वरो में लहराती रही। गाधीजी का अत करनेवाले इस कार्य को समझ सकना या इतिहास मे क्रोध मे उन लपटी जडो का पता लगाना, जिनसे यह कार्य इतने निर्दयतापूर्ण ढग से सपन्न हुआ, बडा कठिन काम है। हमारे विश्वास का एक-एक तार टूट जायगा यदि क्रोध के आवेश मे या लज्जा से इस काम को एक चेतावनी के रूप मे स्वीकार करने के बजाय हम सारा दोष किन्ही विशेष दलो या आन्दोलनो के मत्थे मढने लगे। खास सवाल यह है कि उनकी मौत के कारण अधूरे रह गये काम को हम पूरा करे। और किसी बात का इतना महत्व नही है।

तब, बापू अपनी मौत से क्या सबक हमारे लिए छोड गए है? उनके इस एकाएक चले जाने का क्या अर्थ हो सकता है, और क्यो उन्होने इतिहास के ऐसे नाजुक और सकटापन्न क्षणो मे हमे छोड दिया? पाये हुए वरदान को छोड सकना किसीके लिए भी बडा कठिन होता है। नष्ट हो जाना मानवीय है, लेकिन चोट को सहकर वे ही जिन्दा रह सकते है, जोकि अनुशासन और प्रायश्चित्त के अन्दर भी अच्छाई को देखने के लिए तैयार है। उनकी चिता के धुएँ से उठते हुए सदेश में मुझे सिर्फ चेतावनी के कुछ अक्षर पढने को मिले और कुछ नही।

वह चेतावनी यह है कि किसीका कैसा ही ऊचा आदर्श क्यो न हो, और कितने ही अलौकिक साधनो से कोई अपनेको क्यो न सावधान रखे, फिर भी उद्देश्य की सफलता की कोई गारन्टी नही। कोई भी उद्देश्य कितना ही पुण्यमय क्यो न हो, सुरक्षित नही है। आप पृथ्वी के तमाम मनुष्यो और प्राणिमात्र के प्रति प्रेम, शाति और सद्भावना का दावा कर सकते है और उनके लिए अपनी जिन्दगी भी खपा सकते है, लेकिन फिर भी इस बात की पूरी सभावनाएँ मौजूद है कि आपका पडोसी ही, जिसे आप यह सब देने को तैयार है, इसे ठुकरा दे और आपके

प्राण ही ले ले। दूमरी बात यह है कि क्या पता, जिमे आप ईमानदारी और दृढता के साथ प्रेम और शाति का नाम दे रहे है, जो जिन्दगी का सार है, वही आपके पडोमी की जिन्दगी को मुग्वा दे और उमकी मृत्यु का कारण वन जाय, जिस तरह कि गर्म सूर्य कोमल पौधो को मुरझा देता है।

ऐमे वहुत-मे मौके आये जव स्वय वापू ने अपने द्वारा की गई गलतियो पर पञ्चाताप किया। परन्तु उनकी मृत्यु इम वात को अतिम रूप मे अगीकार करती है कि सत्य तक पहुँचना वडा दुर्लभ है और कोई भी प्रायश्चित कितना ही गहरा क्यो न हो, यात्रा की आखिरी मजिल तक पहुँचने की गारन्टी नही दे मकता। सफलता या जीवन-योजना की पूर्ति कोई न्यायमगत या उचित उद्देश्य नही है, हो मकता है निराशा मे किसीको इस तरह का मार्ग-दर्शक मिद्धान्त मिल जाय।

चेतावनी के चार स्पष्ट परिणाम जीवन की पूर्ण रचना के लिए एक आधार तैयार करते है, और वापू की यही अतिम देन है, जो उन्होने हमारे लिए अपनी मौत के द्वारा छोडी है। जो अनुशामन जीवन के औपचारिक वलिदान मे समाप्त हुआ, उसके फलीभूत होने का यह मकेत है। उन्होने अपनी जिन्दगी मे जो कुछ कर दिखाया वह हमारे लिए सपने से भी वाहर की वात थी। वापू के अनवरत वलिदान और कप्टो ने ही हमे गुलामी मे ऊपर उठाया है। उन्हीके कारण आज आजादी की ताजी और माफ हवा हमारे मैदानो और पहाडो के ऊपर वह रही है। फिर भी यह काम उनकी मपूर्ण योजना का एक अशमात्र था। योजना का मूल उद्देश्य मानव जाति मे इस तरह शाति की प्रतिष्ठा करना था जिममे कि वे अनवरत कलह और मघर्ष के जीवन के स्थान पर शातिपूर्वक रहने के योग्य वन मकें।

इम चेतावनी के गर्भ मे वह भविष्यवाणी छिपी है, वह मदेश छिपा है, जिसका कि अमल जीवन मे वे अपनी जाँच के कठिनतम क्षणो तक वरावर करते रहे और जिसके प्रति उनका भरोमा कभी डिगा नही। उसी विश्वाम या भरोमे को हम उनसे आज प्राप्त कर मकते है, विशेषकर ऐमे समय मे जव उनकी मृत्यु के शोक ने हमारी आत्मा के मारे मैल को धो दिया है।

और आज जिन टीकाओ को मै श्रद्धापूर्वक मुन रहा हूँ, उनमे चार वाते स्पष्ट प्रकट होती है।

पहली वात यह है कि अपने उद्देश्य या योजना की मफलता के लिए निश्चित किये गए कितने भी साधनो की कोई कीमत नही, और न मफलता के विषय मे हमारा भरोमा कभी खरा उतरता है, जवतक कि उसके पीछे जनता की स्वीकृति से

प्रोत्साहित मान्यता की पवित्रता का वल न हो। भेट देनेवाले व्यक्तियो को दान-स्थल पर खडे होकर अपनी मान्यता की कसौटी पर उन्हे कसना पडता है। भेट उस समय तक नही दी जा सकती जवतक कि उसे प्राप्त करने का अवसर न हो, ठीक उसी तरह से जैसे यदि कोई देनेवाला ही न हो तो प्राप्त कैसे किया जाय। देने वाला और पाने वाला एक साथ प्रकट होते है और एक-दूसरे मे प्रतीति करते है और उस समाज के कोई मानी नही, जहाँ दोनो की व्यवस्था न हो। दान या उपहार का देने वाला कोई स्त्री-पुरुष पहले उसके लिए एक आदर्श की रूप-रेखा तैयार करता है और उसके अनुसार एक योजना वनाता है। जवकि दूसरी ओर उपहार या भेट को प्राप्त करने वाला व्यक्ति उस आदर्श को पहले अपने मे पचाता है अथवा हमारी सामाजिक योजना की रचना के अनुरूप उस नक्शे को कार्यान्वित करता है। ये दो कार्य दो विभिन्न क्षेत्रो मे समाज के प्रधान हितो का ढाँचा तैयार करते है। तर्क-दृष्टि से दोनो यह प्रमाणित करते है कि दुनिया की प्रत्येक रीति या कार्य प्रकृति से ही इस अर्थ मे दोहरे है कि उसके कृतपात्र और कर्मपात्र दोनो उसमे शुरू से मौजूद रहते है। उद्देश्य या लक्ष्य एक ही होता है, परतु उद्देश्य की पूर्ति मे दुहरे कार्य की आवश्यकता रहती है। इसलिए उपहार के देने वाले उपदेशक या दार्शनिक को समुदाय के निर्णय और स्वीकृति पर निर्भर रहना ही पडता है, चाहे यह निर्णय उन्हे मान्य हो अथवा नही, चाहे यह निर्णय अपने को जीवित सिद्धान्त के रूप मे वदलने की क्षमता रखता हो या नही।

इससे दो नतीजे निकलते है—प्रथम, गाधीजी के प्रेमोपहार को उन लोगो की स्वीकृति और रजामन्दी की प्रतीक्षा करनी पडी, जिनको यह समर्पित किया गया था। उदाहरण के तौर पर अपने प्रेम को उन सामाजिक योजनाओ की रचना के अनुरूप खपा देने के लिए महात्माजी को विन्सटन चर्चिल जैसे अग्रेज, मुहम्मद अली जिन्ना जैसे मुसलमान और महाराष्ट्रियन ब्राह्मण जैसे हिन्दू पर निर्भर रहना पडा था। द्वितीय—स्वीकृति के इस सिद्धान्त का महात्मा गाधी के अपने अहिसा के सिद्धान्त से सीधा सम्वन्ध है।

क्या हम यह नही सोच सकते कि ये दोनो सिद्धान्त एक ही है ? यदि "स्वीकृति" "अधिकार" से भिन्न है तो हिसा को "अधिकार" एव "स्वीकृति" को अहिसा के समरूप माना जा सकता है। जिन लोगो का यह दावा है कि सिद्धान्त पूर्णतया कारण से परिणाम तक साक्षी के आधार पर मान्य किया जा सकता है, और जो प्रमाण की आवश्यकता का खडन करते है, उन्हे हिसा का समर्थक माना

जा सकता है, और उन लोगों को, जो "स्वीकृति" को प्रामाणिकता की प्रथम शर्त मानते हैं, अहिंसा की श्रेणी में रखा जा सकता है।

मैं आज भी इस प्रश्न पर विवाद नहीं कर सकता कि अहिंसा का उसूल इस विशिष्ट रूप में ही गांधीजी द्वारा व्यवहृत हुआ था। ऐसा सोचते समय मैं उनके उस समय के विचारों को प्रसंग में बिल्कुल अछूता रख कर ही कह रहा हूँ जबकि वे पार्थिव रूप में हमारे साथ थे। मैं उनके विषय में कोई संस्मरण भी लिखने नहीं जा रहा हूँ वरन् केवल उसी बात का उल्लेख कर रहा हूँ, जिसे वे मेरे मस्तिष्क को आदेश-सा प्रतीत होते हैं।

मृत्यु की घटना से कोई इन्कार नहीं कर सकता, लेकिन इसके यही अर्थ है कि हम मृत्यु से उसी तरह जगेंगे जिस तरह नींद से, और पुनः विश्व के जीवन-सागर के बीच अपने को पायंगे। यदि मृत्यु का अर्थ पूर्ण विनाश है तो एक भी जीवन का विनाश संसार में संकट बरपा कर सकता है, क्योंकि कभी-भी कोई जीवन बिल्कुल एकान्त अवस्था में अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सकता। इसके विपरीत दूसरे जीवन से उसका पारस्परिक संबंध कायम रहता है। कम-से-कम यही एक तथ्य ऐसा है जो मेरे इस दावे की पुष्टि करेगा कि बापू आज भी जिन्दा हैं और वे इतिहास पर अपनी टीका लिखवा रहे हैं। यह निर्विवाद है कि पिछले १० वर्षों में बापू द्वारा किये गए प्रयोगों में मानव-जाति की अत्यधिक रक्षित उच्च परंपरा की अंतिम अवस्था का समावेश हुआ है। जिस नाटक के वे प्रधान अभिनेता थे उस नाटक में हमारे किसी भी खलीफा या धर्मगुरु ने कभी कोई भाग नहीं लिया था, यहाँतक कि कुछ समय पूर्व जब उसी मार्ग पर स्वयं रामकृष्ण परमहंस चले तो उसी परंपरा का उनका वह प्रयोग बड़ी सफलतापूर्वक संपन्न हुआ था, जिसके द्वारा लोगों के हृदय में यह विश्वास उत्पन्न किया गया था कि हम अंधकार में पुनः गिरे बिना सत्य और प्रकाश की ओर बढ़ सकते हैं। परन्तु जब महात्मा गांधी की ५० वर्ष की तपस्या पूरी हुई तो केवल धुआं उठा और वह आग जिसमें यह प्रयोग खप गया, एक गुजरती हवा से सिर्फ थोड़ी देर के लिए आग भड़की। श्रेष्ठ सत्यों और बुद्धि के साथ विलुप्त हो गए, और इसके बाद जो घना अंधेरा चारों ओर फैला, उसने सबको घबड़ा दिया। इतिहास की किसी हस्ती की अपेक्षा यदि व्यग्रता का यह नाटक महात्माजी में सबसे अधिक समाविष्ट था तो मैं यह दावा कर सकता हूँ कि जो कुछ होने वाला है, उसके एक मात्र उत्तराधिकारी गांधीजी ही हैं।

अब मैं दूसरी टीका को लेता हूँ। दुनिया में या स्वर्ग में ऐसी कोई ताकत

नही जो अन्य लोगो द्वारा हमारे कामो का विरोध होने पर उस निराशा से हमारी रक्षा कर सके। विरोध का पूर्ण अभाव ही निश्चित सफलता की एकमात्र शर्त है। एकता मे विभिन्न कार्य एक-दूसरे से मिल जाते है और जो उन्हे पसद करते है वे सहयोग देते है। इसके विपरीत सघर्ष विरोध और प्रतिकूलताओ की विभिन्न अवस्थाओ से गुजरता है और इस कारण सघर्ष मे पडे हुए उद्देश्य को प्रतिकूलताओ और भिन्नताओ द्वारा उत्पन्न निराशा के अटल भाग्य का शिकार होना पडता है।

उदाहरण के तौर पर यदि एकता ओर स्वतत्रता दो परस्पर विरोधी तत्त्वो की हैसियत से टकराते है तो निश्चय ही उन्हे निराशा का सामना करना पडता है। यदि महात्मा गाधी ओर मुहम्मद अली जिन्ना आजादी और एकता के समर्थक की हैसियत से सामने आते तो उन दोनो को सीधे सघर्ष मे पडने से कोई नही रोक सकता था और उस दशा मे दोनो उद्देश्यो की असफलता का पहले से ही अदाज लगाया जा सकता था। हिन्दुस्तान का विभाजन भी इस वात का सवूत नही है कि आजादी का उद्देश्य हमेशा के लिए निराशा के चगुल से मुक्त हो गया। इसने यह प्रमाणित कर दिया कि एकता के उद्देश्य को घोर निराशा का सामना करना पडा, बटवारे के वाद यह वात सावित नही होती कि श्री जिन्ना ने आजादी हासिल की या कभी कर सकते थे। उन्होने जो कुछ प्राप्त किया वह थी कुछ वधनो से आजादी। इस प्रकार की आजादी से क्षणिक विश्राम है और महात्मा गाधी एव प जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रतिपादित एकता के आदर्श को निराशा मे वदलने के लिए ही समर्थ हो सकती है। परिणाम की दूसरी मजिल भी तैयार हो चुकी है, जो आजादी के उद्देश्य को घोर निराशा मे वदल देगी। विपरीतताओ के नियम के अनुसार ऐहिक जगत-सवधी विधान के अनुसार यही होना चाहिए। मैं प्रतिकार के विधान की वात नही कह रहा हूं, और न भाग्यचक्र की , इतिहास की भावना मे या विश्व मे ऐसी कोई ईर्ष्या नही है, जो इतने कठोर नियमो का अभिनय करके न्याय के काम पर लोगो से वसूल करने का आग्रह करे। क्या हमारे विरोवी इस तीर्थ-यात्रा में हमारे साथ होकर शोक क्या होता है इसका अनुभव नही कर सकते ? प्रेम का सदेश आज छिन्न-भिन्न होकर स्वटित शौर्य की अवस्था मे पडा है और उसके स्थान पर सघर्ष का विधान शासन कर रहा है।

तीसरी टीका यह है कि कष्ट मे वचने का हम कोई भी उपाय क्यों न करे, उससे वचने का कोई रास्ता नही है। जैसा कि हम जानते है, जीवन के एक स्थायी

अग की तरह अक्षर रूप मे उसकी मुहर हमारे ऊपर लगा दी गई है। स्वेच्छा से अथवा लाचारी से हम या तो दूसरे के लिए क्लेश पैदा करते है या स्वय उसके शिकार बन जाते है। ऐसा कोई व्यक्ति या समुदाय नही मिलेगा जिसे क्लेश के इन दोनो पहलुओं का अनुभव न हो। इस आलोचना के पीछे यह रहस्य छिपा है कि जिन मूल्यो और दृश्य पदार्थों को हम चाहते है, वे सभी अपने स्वरूप में दोहरे होते है। दार्शनिक परिभाषा के अनुसार हम उन्हे रहस्यपूर्ण और मानवी या स्वतत्रवादी या अविकारवादी कह सकते है। इस विभागवादी तर्कशास्त्र के भीतर भी एक अक्षमता का दोष छिपा है। दो विपरीत मूल्यों में हमेशा सघर्ष होता है और वे एक-दूसरे के खिलाफ मैदान मे डटे रहते है।

चौथी टीका यह है कि हम कुछ भी क्यो न करें इस दुनिया से छुटकारा पाना मुश्किल है, जिसने क्लेशो की इस जिन्दगी को सभव किया है। दूसरी कोई दुनिया ऐसी है नही, जो इस दुनिया की यातनाओ से रक्षा कर हमें शरण दे सके।

इतिहास की इन्ही टीकाओ को बापूजी ने हमारे समुख रखा है। किसी दूसरे व्यक्ति को यह करने का अधिकार या अवसर नही है। इस दुनिया में उनकी जिन्दगी का रास्ता और परम शाति को पाने का तरीका—ये दो ऐसी गवाहियाँ है, जिनपर उपरोक्त टीकाए अवलम्बित है।

ये अद्‌भुत परीक्षा के दिन है। आज सत्य के दावे की रक्षा करनी है, उसे प्रमाणित करना है। आधुनिक युग में यदि कोई चीज मजबूती से खडी रह सकती है तो वह है प्रमाण। आधुनिक भावना किसी भी ऊचाई तक ऊपर चढ सकती है, परन्तु उत्कर्ष की वेदी पर शोभित होकर यात्रियो को आशीर्वाद देने वाले देवता को पहले अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करनी होगी। यह बात गुप्त मन्दिरो को अपवित्र भले मालूम पडे, परन्तु मनुष्य आज अपनी महत्ता को देवत्व के शौर्य से आच्छादित नही देख सकता। ईश्वरी उपस्थिति का दावा केवल मानव-गौरव के अन्तर से ही उत्पन्न हो सकता है। कोई भी देवता यो ही मानव पर अपना प्रभुत्व कायम नही कर सकता, उसी तरह जिस तरह कि मनुष्य अपनी आन्तरिक दिव्यता की उपेक्षा नही कर सकता। जो भी हमारी मान्यताए है, उनकी प्रामाणिकता को कसौटी पर कसना ही होगा।

यदि ईश्वर सचमुच स्वर्ग मे है और दुनिया में रहनेवाली अपनी सृष्टि की देखभाल करता है तो उसके लिए यह अवसर है कि वह अपने उस दावे को सिद्ध करे। दैवी विशेषता की अभिव्यक्ति के लिए जो विधान ईश्वर ने बनाया,

उसका वडी कडाई के साथ पालन किया गया। वकाया रकम को पूरी तरह अदा किया गया। मनुष्य की ओर से इतना करने के वाद भी यदि सदेश का प्रसार न किया जा सका और दुनिया मे शाति की स्थापना न हुई तो केवल मनुष्य ही नही, वरन् उसके साथ-साथ ईश्वरीय नियम और ईश्वर तक को धक्का लगेगा।

मेरे विचार से गाधीजी का जीवन आधुनिक युग की प्रधान कसोटी है। इस प्रयोग का उद्देश्य स्वय परपरा थी—पृथ्वी पर जीवन का अर्थ।

: ५१ :

श्रद्धांजलि

देवदास गाधी

यह सव लिखने को तैयार मै इसलिए हुआ हू कि मै चाहता हू कि मेरे ही समान जो दूसरे लोग अनाथ हुए है, उन्हे भी अपने शोक और चिन्तन मे भागीदार वना सकू। जो अन्धकार हमपर छाया है, उसने सवको समान रूप से निगल लिया है और मै जानता हू कि पिछले शुक्रवार की शाम से एकाएक मै अपने चारो ओर अधकार-ही-अधकार का जो अनुभव कर रहा हू, वह अकेला मेरा ही अनुभव नही है।

मुझमे और वापू मे पिता-पुत्र का जो स्वाभाविक प्रेम था, उसका साक्षी ईश्वर है। वह दिन मुझे आज याद है जवकि लगभग २० वर्प की आयु मे मै व.पू से अलग होकर विशेप अध्ययन के लिए काशी जा रहा था और वापू ने झट आगे वढ-कर वडे प्रेम से मेरा माथा चूम लिया था। पिछले कुछ महीनो से, जवसे वापू दिल्ली मे थे, मेरे तीन वर्प के पुत्र को उनका लाड-प्यार पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अभी कुछ दिन हुए, एक वार मुझसे वापू ने कहा भी था कि जिस दिन तुम लोग विडला-हाउस नही आते, उस दिन तुमसे भी ज्यादा मुझे गोपू की याद आती है। अव यह छोटा वालक जव वैसा मुह वनाता है, जैसा उसके दादा उसका स्वागत करते समय वनाया करते थे, तो हमारी आखो मे आसू निकल पडते है। इन वातो के वावजूद भी मै इस वात पर जोर देना चाहता हू कि गाधीजी की गणना पारिवारिक व्यक्तियो मे नही हो सकती। मैने वहुत पहले ही यह खयाल छोड दिया था कि वह अकेले मेरे ही पिता है। मेरे लिए वह वैसे ही रूपि थे जैसे आप

में से किसीके लिए। मेरी आवाज सुन रहे है और मैं आपकी ही तरह उनका अभाव महसूस कर रहा हूं। मैं उस भयंकर विपत्ति को ऐसे प्राणी की तटस्थ भावना से देखता हूं जो मानो उसकी छाया में रहता हो और जिसका उस महा-पुरुष के साथ खून या जाति का कोई सम्बन्ध न हो। उनकी हानि का तो हमको अभी धुंधला-सा ही आभास हो रहा है।

हमदर्दी के जो हार्दिक सन्देश मुझे और मेरे परिवारवालो को मिल रहे है, उनसे हमको बडी सान्त्वना मिल रही है। लेकिन हम मानते हैं कि सन्देश भेजने वाले शायद हमसे भी कही अधिक दुखी और सतप्त है। कौन किसको दिलासा दे?

आखिरी सास छोडने के करीब ३० मिनिट बाद मैं वहा पहुचा। उस समय तक बापू का शरीर गरम था। उनकी चमडी हमेशा कोमल और स्वभावत सुन्दर थी। जब मैंने उनके हाथ को धीरे से अपने हाथो में लिया तो ऐसा लगा मानो कुछ हुआ ही नही है। किन्तु नाडी का पता न था। जिस तरह वह हमेशा सोया करते थे, उसी तरह तख्त पर लेटे हुए थे। उनका सिर आभा की गोद मे रखा हुआ था। सरदार पटेल और नेहरूजी उनके निकट गुम-सुम बैठे थे और दूसरे बहुत-से लोग श्लोक और भजन बोलते हुए सिसकियां भर रहे थे। मैं देर से पहुचा था। उस बात के लिए मैंने बापू के कान में रोते हुए क्षमा मागी, किन्तु निष्फल रहा। भूत-काल में न जाने कितनी बार उन्होने मेरी भूलो को क्षमा किया था। मैंने कोशिश की कि इस आखिरी बार वह मुझे फिर क्षमा कर दें और एक नजर मेरी ओर डालें। लेकिन उनके होठ बिल्कुल बन्द थे और उनकी आकृति में शात दृढता थी। ऐसा मालूम पडता था मानो वह स्वभाव से ही समय की पाबदी न करनेवाले अपने पुत्र से बिना क्रोध लेकिन दृढता के साथ कह रहे हैं—अब मेरी शाति को तुम भग नहीं कर सकते।

हम सारी रात जागते रहे। उनका चेहरा इतना शात और स्थिर था और उनके शरीर के चारो ओर फैला हुआ दैवी प्रकाश इतना मधुर था कि मृत्यु का शोक करना या उससे डरना मुझे पाप मालूम हुआ। उन्होंने १३ जनवरी को अपना उपवास शुरू करते हुए जिस परम मित्र का जिक्र किया था, उसने उन्हे बुला लिया था।

हम लोगो के लिए सबसे अधिक असह्य वेदना का क्षण वह था, जब हमने उस शालवान को उतारा जिसे वह ओढे हुए थे और जिसमे वह प्रार्थना-सभा में गये थे, और जब हमने शरीर को नहलाने के लिए उनके कपडो को उतारा। बापू अपने थोडे-से कपडो के बारे में हमेशा बहुत साफ-सुथरे होते थे।

उस दिन वह और भी स्वच्छ और साफ सुथरे मालूम हुए। प्रार्थना-भूमि पर गोली खाकर गिर पडने के कारण ऊपर की चादर मे मिट्टी और घास के तिनके लग गये थे। हमने उसे वगैर झाडे उसी रूप मे धीरे-धीरे समेट लिया। चादर मे हमको एक गोली का खोल मिला, जिससे यह जाहिर होता है कि गोली वहुत निकट से चलाई गई थी। वह छोटा दुपट्टा, जिसे वह छाती और कधे पर डाले रहते थे, कई जगह खून से भरा हुआ था। जव सव कपडे हटा लिये गये और उनकी छोटी-सी धोती के अलावा कुछ न वचा तो हम लोग अपने आपको अधिक न सभाल सके। वापू के वे घुटने, वे हाथ, वे खास तरह की अगुलिया, वे पाव सव पहले जैसे ही थे। कल्पना कीजिये कि उस शरीर को मसाला लगाकर ज्यो-का-त्यो कायम रखने के सुझाव को न मानने मे हमे कितनी कठिनाई हुई होगी। लेकिन हिन्दू-भावना उसकी इजाजत नही देती और अगर हम उस सुझाव को मान लेते तो वापू ने हमको कभी क्षमा न किया होता।

हालाकि अखवारो मे सही-सही विस्तृत विवरण छप चुका है, फिर भी मुझसे वहुत लोगो ने पूछा है कि क्या मृत्यु तुरन्त हो गई? वापू उस दिन कमरे से प्रार्थना मैदान मे जाने के लिए शाम को पाच वजकर दस मिनट पर रवाना हुए थे। उनके सदा के विश्वस्त साथी उनके साथ थे, जिनका सहारा लेकर वह चला करते थे। आभा दाई ओर थी और मनु वाई ओर। ज्यो ही वापू वगीचे की सीढियो पर चढे, उन्होने कहा कि मुझे देर हो गई है। वह पाच वजे के वाद तक सरदार पटेल से वाते करते रहे थे और एक मिनट भी आराम किये विना प्रार्थना के लिए चल पडे थे। ठीक उसी समय वह आदमी कही से आगे आया और उनके निकट वढा। मनु ने यह समझकर कि वह दूसरो की तरह सामने लेटना या गाधीजी के पाँव छूना चाहता है, उसे हटाने की कोशिश की। लेकिन उसने मनु का हाथ झटक दिया। और तीन वार गोली चलाई। सभी गोलिया गाधीजी की छाती पर और छाती के नीचे दाहिनी ओर लगी। ज्यो ही वह नीचे गिरे, आभा भी गिर पडी और उसने उनका सिर अपनी गोद मे रख लिया। दोनो लडकियो ने गाधीजी को "राम, राम" कहते सुना। स्त्री-पुरुप शोक मे अपना सिर धुनने लगे और उसी समय वापू के प्राण पखेरू उड गये। वापस मकान मे ले जाने मे पाच मिनट लग गये होगे। तव अधेरा हो गया था।

जव हम उस विषाद-भरे कमरे मे उस रात वापू के चारो ओर वैठे हुए थे मै प्रार्थना-पूर्ण होकर वालको की तरह आशा लगाये रहा कि तीन घातक गोलियो

के जख्मों के बाद भी वह बच जायंगे और सूर्योदय से पहले-पहले जीवन किसी-न-किसी तरह लौट आयगा। लेकिन जब समय आगे बढ़ता गया और दुनिया की किसी भी बात से उनकी निद्रा भंग न हुई तो मैं यह कामना करने लगा कि सूर्य कभी उदय ही न हो। लेकिन फूल भीतर लाये गये और हमने अन्तिम यात्रा के लिए शरीर को सजाना शुरू किया। मैंने चाहा कि छाती खुली ही रहने दी जाये। बापू जैसी विशाल और सुन्दर छाती किसी सैनिक की भी नहीं रही होगी। तब हम उनके चारों ओर बैठ गये और वे भजन और श्लोक बोलने लगे, जो बापू को बड़े प्रिय थे। लोगों की भीड़ रात भर आती रही और अगले दिन बड़े सवेरे बापू ने हरिजन-फण्ड के लिए आखिरी बार पैसा इकट्ठा किया। लोग बारी-बारी से उनके दर्शन करते हुए गुजर रहे थे और फूलों के साथ बापू पर सिक्कों और नोटों की वर्षा करते जाते थे। विदेशी राजदूतों ने अपनी पत्नियों तथा कर्मचारियों के साथ आदर प्रकट किया। यह सब शिष्टाचार से बहुत परे था। वह उनसे विदा ले रहे थे, जिनसे वह पहले मिल चुके थे और जिन्हें वह खूब मानते थे।

पिछली ही रात मुझे एक अत्यन्त दुर्लभ अवसर मिला था। वह यह कि कुछ देर के लिए मैं अकेला बापू के पास रह पाया। मैं हमेशा की भांति रात के साढ़े नौ बजे उनसे मिलने गया था। वह बिस्तरे में थे और एक आश्रमवासी को वर्धा की पहली गाड़ी पकड़ने के बारे में हिदायतें देकर ही निपटे थे। मैं अन्दर गया और उन्होंने पूछा, "क्या खबर है?" उनका यह मुझे याद दिलाने का हमेशा का तरीका था, क्योंकि मैं अखबारनवीस हूं। मैं भलीभांति जानता था कि इसमें मेरे लिए एक चेतावनी है, लेकिन उन्होंने मुझसे कभी कुछ छिपाया नहीं। मैंने जिस बारे में उनसे पूछा, उसका सार वह मुझको बता दिया करते थे। कभी-कभी तो बिना पूछे खुद ही बता दिया करते थे। लेकिन आमतौर पर वह तभी बताते थे, जब मैं उनसे पूछता था, यह मानकर कि मैं तभी पूछूंगा, जब बहुत जरूरी होगा, और वह भी ऐसे काम के लिए जिसका अखबार की खबर के साथ कोई सबंध नहीं होगा। इन मामलों में वह मुझपर उतना ही विश्वास करते थे, जितना स्वयं अपने पर।

स्वभावतः मेरे पास कोई खबर देने को नहीं थी, इसलिए मैंने पूछा, "हमारी सरकार की नौका का क्या हाल है?" उन्होंने कहा—"मेरा यकीन है कि जो थोड़ा मतभेद है, वह मिट जायगा। किन्तु मेरे वर्धा से लौटने तक ठहरना होगा। इसमें ज्यादा समय नहीं लगेगा। सरकार में देशभक्त लोग हैं। और कोई ऐसी बात नहीं करेगा, जो देश के हितों के विरुद्ध हो। मुझे यकीन है कि उन्हें हर हालत में

साथ-साथ रहना है और वे रहेगे। उनके बीच कोई ठोस मतभेद नही है। इसी तरह की और भी बातचीत हुई और अगर मै कुछ देर और ठहर जाता तो उस समय भी वहा भीड जमा हो गई होती। इसलिए विदा होते-होते मैने कहा—"बापू, क्या अब आप सोयेंगे ?" वह बोले, "नही, कोई जल्दी नही है। अगर तुम चाहो तो कुछ देर और बात कर सकते हो।" लेकिन जैसा कि मै कह चुका हू, बातचीत जारी रखने की इजाजत फिर दूसरे रोज नही मिल सकी।

कुछ दिन पहले जब मै रात को उनसे विदा ले रहा था, मैने उनसे कहा कि मै प्यारेलाल को अपने साथ खाना खाने के लिए ले जा रहा हू। "हा, हा जरूर, लेकिन तुम मुझे तो कभी खाने को बुलाते ही नही!"—हमेशा की भाति खिल-खिलाकर हँसते हुए उन्होने कहा।

मै बापू को मारनेवाले उस आदमी को कोसता हू, ठीक उसी तरह जैसे मै अपने भाई या पुत्र को कोसता, क्योकि बापू के साथ उसका यही रिश्ता था। मैने उसे मूर्ख माना है। सचमुच वह कितना भयकर मूर्ख सिद्ध हुआ है! उसे बदमाशो का प्रोत्साहन और समर्थन प्राप्त था। किन्तु वे भी असह्य मूर्ख है। याद रखिये कि मूर्ख की मूर्खता की कोई सीमा नही होती। और इसलिए जिस तरह हम चोर से साव-धान रहते है, उसी प्रकार हमको मूर्ख से भी सावधान रहना चाहिए। राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के काम एक समय ऐसे थे कि उनसे मेरे दिल मे सघ के प्रति प्रशसा की भावना उत्पन्न हो गई थी। जब वह शुरू हुआ तब शारीरिक व्यायाम, कवायद, बडे सवेरे उठना और अनुशासित जीवन उसका आधार था। किन्तु शीघ्र ही कुछ दुस्साहसी बीच मे कूद पडे। कुछ को उसमे निजी उत्कर्ष और राजनैतिक मौका नजर आया। गिरावट तेजी से शुरू हुई। उसके कुछ नेताओ ने पहले तो खानगी में और बाद मे सार्वजनिक रूप मे भयकर बाते कहनी शुरू की और आखिर किसी ने अपने दिल में बुरे-से-बुरे विचारो को भी धारण करना आरम्भ कर दिया। लेकिन हम अपना लक्ष्य आखो से ओझल न करे। हिन्दू महासभा और राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ मे ऐसे लोग है, जो अगर उन्हे मालूम होता तो गाधीजी को बचाने के लिए अपने प्राण दे देते और प्रकट रूप में यह बात उनमें से अधिकाश पर लागू होती है। केवल मुट्ठीभर आदमी है, जिनका बम्बई और उसके आसपास जमघट है और जिनका इस गुनाह के साथ सम्बन्ध है। हमको सारे महाराष्ट्र को उन मुट्ठी-भर महाराष्ट्रियो के साथ शामिल नही कर लेना चाहिए, जिनके अपराधी साथी दूसरी जगहो में भी है। मै इस गिरोह के बारे में कुछ कहने का अपनेको अधिकारी

नही मानता । उनको दभ, असन्तोष और मानव के सबसे अधिक शक्तिशाली विकार ईर्ष्या के सयोग से प्रेरणा मिली है ।

कहा जाता है कि कुछ लोगो ने मिठाई बाटकर इस घटना पर खुशी मनाई। यह इतना हास्यास्पद है कि जिसका वर्णन नही किया जा सकता। जिन्होने ऐसा किया है, परिणामो की उन्हे कोई चिन्ता नही है और उनके सामने कोई मकसद भी नही है । कुछ बदनाम अखबार उनकी पीठ पर है, जिनपर कोई अकुश नहीं रहा । सरकार को यह देखना है कि इन शरारतियो के साथ कैसा बर्ताव किया जाय, जिनमे से कुछ खुले और कुछ गुप्त रूप मे काम करते है । शरारती इतने थोडे और इतने बिखरे हुए है कि आप लोगो को उनकी कोई खास चिन्ता करने की जरूरत नही है। सरकार को उनके साथ निपटने के लिए छोड देना चाहिए ।

किसी भी रूप मे बदला लेने का सवाल ही नहीं उठता। क्या उससे बापू लौट आ सकते है ? क्या वह यह पसन्द करेगे कि हम खून की होली खेलने लग जाय? कभी भी नही ।

पीछे की ओर नजर दौडाने पर मालूम होगा कि हम बापू की रक्षा न कर सके। लेकिन बापू जैसे भी थे, उसको देखते हुए क्या उनकी पूरी रक्षा करने का प्रबन्ध सम्भव था ? उन्हे अपनी ७८ वर्ष की उम्र में सिवाय भगवान के और क्या सरक्षण प्राप्त था। और क्या उनको हमेशा ही खतरो के बीच नही रहना पडा ? इसलिए हम अपने शोक मे उन लोगो पर कर्त्तव्य की उपेक्षा करने का आरोप न लगायें, जो हमारी ही तरह इस विपत्ति पर भारी वेदना महसूस कर रहे है ।

मै नही मानता कि भविष्य अधकारपूर्ण है । पैगम्बर के अलावा कौन भविष्य के बारे में आत्म-विश्वास के साथ बोल सकता है ? वर्तमान निश्चय ही अधकार-पूर्ण है लेकिन अगर हम उन आदर्शो के लिए काम करें, जिनके लिए बापू जिये और मरे तो भविष्य उज्ज्वल ही होना चाहिए। इसलिए मै निराश नही हू । अगर हम यह इच्छा करते कि बापू को हमेशा हमारे बीच रहना चाहिए तो बापू हमको लोभी कह सकते थे । अब हमे अपने ही साधनो और उद्योग पर निर्भर करना होगा। परमात्मा की मर्जी पर मै व्यर्थ शोक प्रकट करने में समय नष्ट नही करूगा और न भावना का ही अपव्यय करूगा । बापू परम निर्वाण पा गये । उनका शरीर तो नही रह गया, किन्तु उनकी आत्मा सदा हमारी रहनुमाई करेगी और हमें सहायता देगी। पिछले चार महीने के दैनिक प्रवचनो मे हमे उनसे सतुलित आदेश मिले है। उनमे वह सब कुछ मौजूद है, जो वह हमको कह सकते थे। हम

चाहे तो झगड सकते हैं और एक-दूसरे का साथ छोड सकते हैं । लेकिन इसके विपरीत मेल-मिलाप की थोडी कोशिश से ही हम काले बादलो को हटा सकते हैं। तब हम देखेगे कि सुनहरा प्रभात अधिक दूर नही है ।

: ५२ :

बापू !

सुशीला नैयर

कहते हैं, समुद्र-मन्थन से अमृत निकला, हीरे-जवाहरात निकले और हलाहल-जहर निकला । जहर इतना घातक था कि सारे जगत् का नाश कर सकता था। उसका क्या किया जाय ? सब इस बारे मे चिन्तित थे । शिवजी आगे बढे और उन्होने वह जहर पी लिया । हिन्दुस्तान के समुद्र-मन्थन मे से आजादी का अमृत निकला । साथ ही आपस की मारकाट का, दुश्मनी का, वैर का, हिसा का जहर भी निकला । गाधीजी ने इसके सामने अपनी आवाज बुलद की । लोग अपनी मूर्च्छा मे चौके, लेकिन जागे नही । पाकिस्तान के लोगो के कानो मे भी आवाज पहुची । बापू की आवाज गगन मे गूज रही थी, "इस आग को बुझाओ, नही तो दोनो इसमे भस्म हो जाओगे ।" उनका हृदय दिन-रात पुकारता था, "हे ईश्वर, इस ज्वाला को शात कर, नही तो मुझे इसमे भस्म होने दे ।" बापू अनेक उपवासो से, अनेक हमलो से बच निकले थे, पर अपने ही एक गुमराह पुत्र की गोली से न बच सके । पुत्र के हाथ से हलाहल का प्याला लेकर वे पी गये, ताकि हिन्दुस्तान जीवित रह सके । किसीने कहा, "जगत् ने दूसरी बार ईसा का सूली पर चढना देखा है ।"

मुझे जब यह खबर मिली तब मैं मुलतान मे थी । बहावलपुरियो को बापू की इतनी चिन्ता थी कि उन्होने मुझे लेसली क्रास साहब के साथ बहावलपुर भेजा था । वहा डिप्टी कमिश्नर की पत्नी ने बहुत प्यार से पूछा, "गाधीजी अब कैसे हैं ? हमारे पास कब आयेगे ?" मैने कहा, "जब आपकी हुकूमत चाहेगी ।"

शाम को ६ बजे के करीब डिप्टी कमिश्नर साहब की पत्नी हाफती-हाफती आई और बोली, "दुनिया किधर जा रही है ? गाधीजी को गोली से मार दिया ।" सुनते ही मेरे हाथ-पाव ठडे पड गये । मैं सुन्न बैठ गई । किसी दूसरे ने कहा—"नही नही, यह तो अफवाह है । हम दिल्ली को फोन करके पक्की खबर कर लेंगे । घबराइये

नहीं।" मैंने कहा,—"नहीं, मुझे अभी लाहौर जाना है। कोई गाड़ी दिलाइये। सच्ची खबर हो या झूठी, मैं जल्दी-से-जल्दी पहुंचना चाहती हूं।"

गाड़ी बिड़ला-भवन के पिछले दरवाजे से दाखिल हुई। उधर भी बहुत भीड़ थी। दूर से एक ऊंचा फूलों का ढेर दिखाई पड़ा। मैं भीड़ को पूरे जोर से चीरती हुई हांफती-हांफती वहां पहुंची, जहां पालकी रवाना होने के लिए तैयार थी। वहां सरदार अपने दिवंगत स्वामी के कदमों के पास गम्भीर बैठे थे। उन्होंने मुझे ऊपर चढ़ाया। फूलों में से बापू का चेहरा ही दीखता था। हमेशा की तरह मैंने अपना सिर उनकी छाती पर रख दिया। बिना सोचे अन्दर से भावना उठी, अभी बापू एक प्यार की चपत लगा देंगे, पीठ पर एक जोर की थपकी लगा देंगे। मगर मैंने तो उनकी आखिरी थपकी बहावलपुर जाते समय ही ले ली थी।

सिर के पास मनु और आभा खड़ी थीं। "सुशीला बहन! सुशीला बहन!" पुकारकर वे फूट-फूट कर रोने लगीं। आंसुओं में से मैंने देखा, बापू का चेहरा पीला था, पर हमेशा की तरह शांत। वे गहरी नींद में सोये दीखते थे। अपने आप मेरा हाथ उनके माथे पर चला गया। उनके चेहरे को छुआ। वह अभी भी मुझे गरम लगा, जीवित लगा। मेरा सिर फिर से उनके चेहरे पर झुक गया। माथा उनके गाल को जा लगा। किसी ने पुकारा, "अब सब नीचे उतरो।"

नीचे सिर की तरफ पण्डितजी खड़े थे। दुःख और गम की रेखाएं उनके चेहरे पर थीं। मुंह सूखा हुआ था। उन्होंने प्यार से हम तीनों को नीचे उतारा। पुराने जमाने में महादेव भाई, देवदास भाई और प्यारेलालजी तीनों बापू के साथ हुआ करते थे—त्रिमूर्ति कहलाते थे। उसी तरह कुछ महीनों से आभा, मनु और मैं बापू के साथ त्रिमूर्ति-सी बन गई थीं। उन तीनों में महादेवभाई बड़े थे, इन तीनों में मैं। दोनों लड़कियां दोनों तरफ से मुझसे लिपट गईं। एक-दूसरी को सहारा देते हुए हम आगे बढ़ीं। बापू चाहेंगे, रामधुन चले, सो रामधुन शुरू की, लेकिन बहुत चल न सकी। मणि बहन बार-बार ध्यान खींचती थी, रोना नहीं चाहिए। सिख भाइयों ने गुरुग्रन्थ साहब के शब्द बोलने शुरू किये। हम सब उनके पीछे राम-नाम बोलने लगे।

कुछ देर बाद हम लोग पीछे बापू की गाड़ी के पास आ गये। उस गाड़ी के रथ में बापू का स्पर्श था। दोनों तरफ लाखों जनता खड़ी थी। हर दरख्त की हर टहनी पर लोग बैठे थे। 'महात्मा गांधी की जय' के नाद से गगन गूंज रहा था।

जैसे जीवन में, वैसे मृत्यु में, निन्दा और स्तुति से अलिप्त बापू सो रहे थे। जीवन में हम लोगों को चुप कराते थे। जयनाद से भी उनके कानों को तकलीफ

पहुचती थी। वे कानो को उगलियो से वन्द कर लिया करते थे। कान वन्द करने को हमे साथ मे रुई रखनी पडती थी। मगर आज उसकी जरूरत नही थी। मन मे आया, क्या अपनी भावनाए हम आसू वहाकर धो डालेगे ? क्या जयघोप करके ही वैठ जायगे ? या क्या ये भावनाए कार्यरूप मे भी परिणत होगी ?

शाम को जलूस यमुनाजी के किनारे पहुचा। ईटो के एक छोटे-से चवूतरे पर लकडिया रखी थी। जिस तख्त पर वापू वैठा करते थे, उसीपर उनका शव था। उसे लाकर लकडियो पर रखा गया। ब्राह्मणो ने कुछ मन्त्र पढे। हम लोगो ने छोटी-सी प्रार्थना की। देवदास भाई ने वापू के पाव पर सिर रखकर प्रणाम किया। हृदय से एक ही पुकार निकल रही थी। "वापू मेरे अपराध क्षमा करना। मेरी भूल-चूक त्रुटिया क्षमा करना। जीवन मे कितनी वार आपको सताया, आपको मानवी पिता मानकर आपसे झगडा किया। आपके साथ दलीले की। वापू, क्षमा करना। क्षमा करना। क्षमा !" मै चिता से दूर हटकर वैठ गई। मै ज्यादा देख न सकी। मन मे मै गीता का यह श्लोक दोहराती रही

सखेति मत्वा प्रसभ यदुक्तं, हे कृष्ण, हे यादव, हे सखेति।
अजानता महिमान तवेद, मया प्रमादात् प्रणयेन वापि॥

"वापू ! आपने जो अगाध प्रेम मुझपर वरसाया, जो अगाध विश्वास वताया, भूल-पर-भूल क्षमा की, तुच्छ, अज्ञान, मतिहीन को अपनाया, सिखाया, अपनी वेटी वनाया, उसको लायक वनाया !" एक वार वापू ने महादेवभाई से वातें करते हुए कहा था, "सुशीला ने सवसे आखिर मे मेरे जीवन मे प्रवेश किया, मगर वह सवसे निकट आई। मुझमे समा गई है।" हे प्रभु ! उसी समय तूने मुझे क्यो न उठा लिया। उसके वाद सुशीला उनसे दूर चली गई।

वापू की वात पर उसके मन मे शका आने लगी, मगर वापू ने धीरज से उसकी शकाओ का निवारण करने का प्रयास किया। उसे अपने से दूर न जाने दिया। एक वार कहने लगे—"तूने 'हाउण्ड ऑफ हेविन' की कविता पढी है। तू मुझसे भाग कैसे सकती है ? मै भागने दू तव न ?" इस नालायक वेटी के प्रति इतना प्रेम ! हे प्रभो, जो योग्यता उनके जीवनकाल मे न थी, वह उनके जाने के वाद दोगे ?

शव पर चन्दन की लकडिया रखने लगे। सुगन्धित सामग्री डालने लगे। मै जाकर सरदार काका के पास वैठ गई। घुटनो मे सिर रख लिया और देख न सकी। सारा जगत् चक्कर खा रहा था। भीड का जोर से धक्का आया। मनु, आभा, मै और मणि-वहन पास वैठी थी। सरदार ने हमें साथ लेकर उस भीड में से निकलने

की कोशिश की। धक्के-पर धक्का आता था, हम गिरते-पड़ते बाहर निकले। एक मिलिटरी ट्रक में बैठे। सरदार काका और सरदार बलदेवसिंहजी साथ थे। ट्रक चली। आभा ने मेरा हाथ खीचा। चिता की ज्वाला की लपटे आकाश को जा रही थी। हृदय पुकार उठा, "हे प्रभो, इस अग्नि मे हमारे दोष, हमारी कमजोरिया भस्म हो जाय, ताकि हम बापू के बताये मार्ग पर दृढता से आगे बढ सके। जिस अग्नि को शात करने मे उनके प्राण गये, वह इस अग्नि के साथ शान्त हो।" रात को बिडला-भवन में जिस गद्दी पर बैठकर बापू काम किया करते थे, उसपर रखी बापू की फोटो के सामने बैठे मन मे विचार आने लगा—कल सारी रात मोटर में बैठ हृदय से जो ध्वनि निकल रही थी, "बापू जीवित है। बापू जीवित है," वह क्या गलत थी ? वह ध्वनि इतनी स्पष्ट थी, मगर क्या सब कल्पना का ही खेल था ? उत्तर मिला—"नही, बापू जीवित है। सचमुच जीवित है। तुम्हारे एक-एक विचार को, एक-एक आचार को देख रहे है।" दूसरे दिन काम साहब अंग्रेजी कविता की कुछ लाइनें लिखकर दे गये। उनमे आखिरी लाइनो का भाव कुछ ऐसा था।

"याद रखो, अब उनके हथियार सिर्फ तुम्हारे हाथ और पाव है। वे देखते है। सभालना कि किस चीज को तुम छूते हो, कहापर कदम रखते हो।"

एक दफा बापू से किसी ने कहा था—"आपके अनुयायियो, और रचनात्मक कार्य करनेवालो मे कुछ बेबसी पाई जाती है। उनमे वह तेजी नही, जिससे वे आपका सन्देश घर-घर, गाव-गाव, देश भर मे पहुचावे।" बापू गम्भीर हो गये। कहने लगे, "हा, आज वे बेबस से लगते है। मेरे जीवन मे दूसरा हो नही सकता। उन सबका व्यक्तित्व मेरे व्यक्तित्व के नीचे दबा पडा हुआ है। वे बात-बात मे मुझसे पूछते है। मगर मेरे बाद, मैं आशा रखता हू, उनमें वह तेज और शक्ति अपने आप आ जायगी। अगर मेरे सन्देश मे कुछ है, तो वह मेरे जाने के बाद मर नही जायगा।"

हमलोगो से एक बार कहने लगे कि वे हमसे क्या-क्या आशाए रखते है। आगाखा महल मे उपवास की बाते चल रही थी। वे न रहे, तो हमारा क्या धर्म होगा, हमे क्या करना होगा, वे हमे समझा रहे थे। हमसे वह चर्चा सहन नही हुई। मै बोल उठी, "नही बापू, यह सब न सुनाइये। हमारी तो यही प्रार्थना है कि आपके देखते-देखते महादेवभाई की तरह हमे भी ईश्वर उठा ले। आपके बाद कुछ भी करने की हमारी शक्ति नही।" बापू और ज्यादा गम्भीर हो बोले, "महादेव की तरह तुम सब मुझे छोडने जाओगे, तो मै कहा जाऊगा ? ऐसा विचार करना तुम्हे शोभा नही देता। और तुम लोगो की आज शक्ति नही मगर ईसा के मृत्यु के समय उनके शिष्य।

में शक्ति थी क्या ? दृढ विश्वास से सच्चे हृदय से, जो ईश्वरपरायण होकर कार्य करता है, शक्ति उसे ईश्वर अपने आप दे देता है। जो अपने आपको शून्यवत् करके सत्य की आराधना करता है, उसका मार्ग-प्रदर्शन प्रभु अपने आप करता है।"

क्या हम अपने आपको शून्यवत् कर सकेंगे ?

परिशिष्ट

: १ :

बापू का अन्तिम दिन

प्यारेलाल

२९ जनवरी को सारे दिन गांधीजी को इतना ज्यादा काम रहा कि दिन के आखिर में उन्हें खूब थकान मालूम होने लगी। कांग्रेस-विधान के मसविदे की तरफ इशारा करते हुए, जिसे तैयार करने की जिम्मेदारी उन्होंने ली थी, उन्होंने आभा से कहा, "मेरा सिर घूम रहा है। फिर भी मुझे इसे पूरा करना ही होगा। मुझे डर है कि रात को देर तक जागना होगा।"

आखिरकार वे ९। बजे रात को सोने के लिए उठे। एक लड़की ने उन्हें याद दिलाया कि आपने हमेशा की कसरत नहीं की है। "अच्छा, तुम कहती हो तो मैं कसरत करूंगा"—गांधीजी ने कहा और वे दोनों लड़कियों के कंधों पर, जिम्नास्टिक के "पैरलल बार की" तरह, शरीर को तीन बार उठाने की कसरत करने के लिए बढ़े।

बिस्तर में लेटने के बाद गांधीजी आमतौर पर अपने हाथ-पांव और दूसरे अंग सेवा करने वालों से दबवाते थे—ऐसा करवाने में उन्हें अपना नहीं, बल्कि सेवा करनेवालों की भावनाओं का ही ज्यादा खयाल रहता था। वैसे तो उन्होंने अपने आपको इस बात से एक अरसे से उदासीन बना लिया था, हालांकि मैं जानता हूं कि उनके शरीर को इन छोटी-मोटी सेवाओं की जरूरत थी। इससे उन्हें दिन-भर के कुचल डालनेवाले काम के बोझ के बाद मन को हल्का करनेवाली बातचीत और हँसी-मजाक का थोड़ा मौका मिलता था। अपने मजाक में भी वे हिदायत जोड़ देते। गुरुवार की रात को वे आश्रम की एक महिला से बातचीत करने लगे, जो संयोग से मिलने आ गई थी। उन्होंने उसकी तन्दुरुस्ती अच्छी न होने के कारण उसे डांटा और कहा कि अगर रामनाम तुम्हारे मन-मन्दिर में प्रतिष्ठित होता तो

तुम बीमार नही पडती। उन्होने आगे कहा, "लेकिन उसके लिए श्रद्धा की जरूरत है।"

उसी शाम को प्रार्थना के बाद प्रार्थना-सभा मे आये हुए लोगो मे से एक भाई उनके पास दौडता हुआ आया और कहने लगा कि आप २ फरवरी को वर्धा जा रहे है, इसलिए मुझे अपने हस्ताक्षर दे दीजिये। गाधीजी ने पूछा, "यह कौन कहता है ?" हस्ताक्षर मागनेवाले हठी भाई ने कहा, "अखबारो मे यह छपा है।" गाधीजी ने हँसते हुए कहा, "मैने भी गाधी के बारे मे वह खबर देखी है। लेकिन मै नही जानता, वह 'गाधी' कौन है ?"

एक दूसरे आश्रमवासी भाई से बात करते हुए गाधीजी ने वह राय फिर दोहराई जो उन्होने प्रार्थना के बाद अपने भाषण मे जाहिर की थी—"मुझे गडबडी के बीच शाति, अधेरे मे प्रकाश ओर निराशा मे आशा पैदा करनी होगी।" बात-चीत के दौरान मे 'चलती लकडियो' का जिक्र आने पर गाधीजी ने कहा, "मै लडकियो को अपनी 'चलती लकडिया' बनने देता हू, लेकिन दरअसल मुझे उनकी जरूरत नही है। मैने लम्बे समय मे अपने आपको इस बात का आदी बना लिया है कि किसी बात के लिए किसी पर निर्भर न रहा जाय। लडकिया अपना पिता समझ-कर मेरे पास आती है और मुझे घेर लेती है। मुझे यह अच्छा लगता है। लेकिन सच पूछा जाय तो मै इस बात मे बिलकुल उदासीन हू।" इस तरह यह छोटी-सी बातचीत तबतक चलती रही जबतक गाधीजी सो न गये।

आठ बजे उनकी मालिश का वक्त था। मेरे कमरे मे गुजरते हुए उन्होने काग्रेस के नये विधान का मसविदा मुझे दिया, जो देश के लिए उनका 'आखिरी वसीयतनामा' था। इसका कुछ हिस्सा उन्होने पिछली रात को तैयार किया था। मुझसे उन्होने कहा कि इसे 'पूरी तरह' दोहरा लो। इसमे कोई विचार छूट गया हो तो उसे लिख डालो, क्योकि मैने इसे बहुत थकावट की हालत मे लिखा है।

मालिश के बाद मेरे कमरे मे निकलते हुए उन्होने पूछा, "उसे पूरा पढ लिया या नही।" और मुझसे कहा कि नोआखाली के अपने अनुभव और प्रयोग के आधार पर मै इस विषय मे एक टिप्पणी लिखू कि मद्रास के सिर पर झूमते हुए अन्न-सकट का किस तरह सामना किया जा सकता है। उन्होने कहा—"वहा का खाद्य-विभाग हिम्मत छोड रहा है। मगर मेरा ख्याल है कि मद्रास ऐसे प्रान्त मे, जिसे कुदरत ने नारियल, ताड, मूगफली और केला इतनी ज्यादा तादाद मे दिये है—कई किस्म की जडो और कन्दो की बात ही जाने दो—अगर लोग सिर्फ अपनी

खाद्य-सामग्री का सम्हालकर उपयोग करना जाने, तो उन्हें भूखो मरने की जरूरत नही।" मैने उनकी इच्छा के अनुसार टिप्पणी तैयार करने का वचन दिया। इसके बाद वे नहाने चले गये। जब वे नहाकर लौटे तब उनके वदन पर काफी ताजगी नजर आती थी। पिछली रात की थकावट मिट गई थी और हमेशा की तरह प्रसन्नता उनके चेहरे पर चमक रही थी। उन्होने आश्रम की लडकियो को उनकी कमजोर शारीरिक बनावट के लिए डाटा। जब किसीने उनसे कहा कि वाहन न मिलने के कारण अमुक जगह नही गई, तो उन्होने कडाई से कहा—"वह पैदल क्यो न चली गई?" गाधीजी की यह कडाई कोरी कडाई ही नही थी, क्योकि मुझे याद है कि एक वार जब आबू के अपने एक दौरे मे हमे ले जानेवाली मोटरो का पेट्रोल खत्म हो गया तो उन्होने सारे कागजात और लकडी की हल्की पेटी लेकर वहा से १३ मील दूर दूसरे स्टेशन तक पैदल जाने के लिए तैयार होने को हमसे कहा था।

वगाली लिखने के अपने रोजाना के अभ्यास को पूरा करने के बाद गाधीजी ने साढे नौ बजे अपना सवेरे का भोजन किया। अपनी पार्टी को तितर-बितर करने के बाद वे पूर्व वगाल के गावो मे अपनी 'करो या मरो' की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए नगे पाव श्रीरामपुर गये तबसे वे नियमित रूप से वगाली का अभ्यास करते रहे है। जब मै विधान के मसविदे को दोहराने के बाद उनके पास ले गया, तब वे भोजन कर रहे थे। उनके भोजन मे ये-ये चीजे शामिल थी—बकरी का दूध, पकाई हुई और कच्ची भाजिया, सतरे और अदरक का काढा, खट्टे नीबू और घृत-कुमारी। उन्होने अपनी विशेष सतर्कता से मसविदे मे बढाई हुई और बदली हुई बातो को एक-एक करके देखा और पचायती नेताओ की सख्या के बारे मे जो गलती रह गई थी, उसे सुधारा।

इसके बाद मैने गाधीजी को डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद से हुई अपनी मुलाकात की विस्तृत रिपोर्ट दी। डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद की तबीयत अच्छी न थी। इसीलिए गाधीजी ने कल उनके स्वास्थ्य के बारे मे पूछने के लिए उनके पास भेजा था। मैने गाधीजी को पूर्वी वगाल के बारे मे ताजी-से-ताजी खबर भी सुनाई, जो मुझे डाक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने कल शाम को बताई थी। इसपर से नोआखाली के बारे मे चर्चा चली। मैने उनके सामने व्यवस्थित रीति से नोआखाली छोडने की बात रखी। लेकिन गाधीजी का दृष्टिकोण साफ और मजबूत था। उन्होने कहा, "जैसे हम कार्यकर्ताओ को 'करना या मरना' है उसी तरह हमे अपने लोगो को भी आत्म-

सम्मान, इज्जत और मजहवी हक को वचाने के लिए 'करने या मरने' को तैयार करना है। हो सकता है कि आखिर मे थोडे ही लोग वचे, लेकिन कमजोरी से ताकत पैदा करने का इसके सिवा दूसरा कोई रास्ता नही है। क्या हथियारो की लडाई मे भी वलवा करनेवाले या कमजोर सिपाहियो की कतारे मार नही दी जाती ? तव अहिसक लडाई मे इससे दूसरा कैसे हो सकता है ?" उन्होने आगे कहा, "तुम नोआखाली मे जो कुछ कर रहे हो, वही सही रास्ता है। तुमने मौत का डर भगा दिया है और लोगो के दिलो मे अपना स्थान वनाकर उनका प्यार पा लिया है। प्यार और परिश्रम के साथ ज्ञान जोडना जरूरी है। तुमने यही किया है। अगर तुम अकेले भी अपना काम पूरी तरह और अच्छी तरह करो, तो तुम्ही सवके लिए काफी हो। तुम जानते हो कि यहा मुझे तुम्हारी वडी जरूरत है। मुझपर काम का इतना वोझ है और मै वहुत-कुछ दुनिया को भी देना चाहता हू, तुम्हारे वाहर रहने मे मै ऐसा नही कर सकता। लेकिन मैने अपने आपको इसके लिए कडा वना लिया है। नोआखाली का तुम्हारा काम इससे ज्यादा महत्व का है।" इसके वाद उन्होने मुझे वताया कि अगर सरकार अपना फर्ज पूरा करने मे चूके, तो गुण्डो के साथ कैसे निपटना चाहिए।

दोपहर को थोडी झपकी लेने के वाद गाधीजी श्री सुधीर घोष से मिले। श्री घोष ने और वातो के अलावा 'लन्दन टाइम्स' की कतरन और एक अग्रेज दोस्त के खत के कुछ हिस्से पढकर उन्हे सुनाये। इनमे लिखा था कि किस तरह कुछ लोग वडी तत्परता के साथ पण्डित नेहरू और सरदार पटेल के वीच फूट डालने की कोशिश कर रहे है। वे सरदार पटेल पर फिरकापरस्त होने का दोष लगाते है और पण्डित नेहरूजी की तारीफ करने का ढोग रचते है। गाधीजी ने कहा कि वे इस तरह की हलचल से वाकिफ है और उसपर गहराई से विचार कर रहे है। वे वोले कि अपने एक प्रार्थना-सभा के भाषण मे पहले ही इसके वारे मे कह चुका हू, जो 'हरिजन' मे छप गया है। मगर मुझे लगता है कि इसके लिए कुछ और ज्यादा करने की जरूरत है। मै सोच रहा हू कि मुझे क्या करना चाहिए।

सारे दिन लोग लगातार मुलाकात करने के लिए आते रहे। उनमे दिल्ली के मौलाना लोग भी थे। उन्होने गाधीजी के वर्धा जाने के वारे मे अपनी सम्मति दे दी। गाधीजी ने उनसे कहा कि मै सिर्फ थोडे दिनो के लिए ही यहा से गैरहाजिर रहूगा और अगर भगवान की कुछ और ही मर्जी न हुई और कोई आकस्मिक घटना न घटी तो ११ तारीख को वर्धा मे स्वर्गीय सेठ जमनालालजी की पुण्यतिथि मनाने के

बाद १४वी तारीख को मैं लौट जाऊगा।

एक बात और थी, जिसके बारे मे मुझे गाधीजी से सलाह लेनी थी। मैंने उनसे पूछा, "बापू, मुसलमान औरतो मे अपने काम को आसानी से चलाने के लिए अगर ज्यादा नही तो थोडे ही वक्त के लिए मै को नोआखाली ले जाऊ? जरूरी छुट्टी के लिए मे प्रार्थना करूगा।" "खुशी से'—उन्होने जवाब दिया। आखिरी शब्द ये थे जो मुझे सुनने थे।

साढे चार बजे आभा उनका शाम का खाना लाई। इस धरती पर उनका यह आखिरी भोजन था, जिसमे करीब-करीब सवेरे की ही सब चीजे शामिल थी। उनकी आखिरी बैठक सरदार पटेल के साथ हुई। जिन विषयो पर चर्चा हुई, उनमे से एक मन्त्रि-मडल की एकता को तोडने के लिए सरदार के खिलाफ किया जाने-वाला गन्दा प्रचार था। गाधीजी की यह साफ राय थी कि हिन्दुस्तान के इतिहास मे ऐसे नाजुक मौके पर मन्त्रिमडल मे किसी तरह की फूट पैदा होना बडी दु खपूर्ण बात होगी। सरदार से उन्होने कहा कि आज मैं इसीको अपनी प्रार्थना-सभा के भाषण का विषय बनाऊगा। प्रार्थना के बाद पण्डितजी मुझसे मिलेगे, उनसे भी इसके बारे मे चर्चा करूगा। आगे चलकर उन्होने कहा, "अगर जरूरी हुआ तो मैं २ तारीख को वर्धा जाना मुल्तवी कर दूगा और तबतक दिल्ली नही छोडूगा जबतक दोनो के बीच फूट डालने की कोशिश के इस भूत का पूरी तरह खात्मा न कर दू।"

इस तरह चर्चा चलती रही। बेचारी आभा भी बाधा देने का साहस नही कर रही थी। इस बात को जानते हुए कि बापू वक्त की पाबन्दी को और खासकर प्रार्थना के बारे मे उसकी पाबन्दी को, कितना महत्व देते है, उसने आखिर में निराश होकर उनकी घडी उठाई और जैसे इस बात का इशारा करते हुए उनके सामने रख दी कि प्रार्थना मे देर हो रही है।

प्रार्थना के मैदान मे जाने के पहले ज्योही गाधीजी गुसलखाने मे जाने के लिए उठे, वे बोले, "अब मुझे आपसे अलग होना पडेगा।" रास्ते मे वे उस शाम को अपनी 'चलती लकडियो'—आभा और मनु—के साथ तबतक हँसते और मजाक करते रहे जबतक कि वे प्रार्थना के मैदान की सीढियो पर नही पहुच गये।

दिन मे जब दोपहर के पहले आभा गाधीजी के लिए कच्ची गाजरो का रस लाई, तब उन्होने उलाहना देते हुए कहा, "तो तुम मुझे ढोरो का खाना खिलाती हो!" आभा ने जवाब दिया, "बा तो इसे 'घोडे की खुराक' कहती थी।" उन्होने पूछा, "जिस चीज को दूसरा पूछेगा भी नही, उसे स्वाद से खाना क्या कम चीज

है ?" और हंसने लगे ।

आभा ने कहा—"बापू, आपकी घडी को जरूर यह लगता होगा कि आप उसकी परवाह नही करते । आप उसकी तरफ देखते नही ।" गाधीजी ने तुरन्त जवाब दिया —"मै क्यो देखू, जब तुम दोनो मुझे ठीक समय बता देती हो ?" लडकियो मे से एक ने पूछा, "लेकिन आप तो समय बतानेवाली लडकियो की तरफ नही देखते !"

बापू फिर हंसने लगे । पाव साफ करते हुए उन्होने आखिरी बात कही, "मै आज १० मिनट देर से पहुचा हू । देर से आने मे मुझे नफरत होती है । मै प्रार्थना की जगह पर ठीक पाच बजे पहुचना पसद करता हू ।" यहा बातचीत खतम हो गई । क्योकि—'चलती लकडियो' के साथ गाधीजी की यह शर्त थी कि प्रार्थना के मैदान के अहाते मे पहुचते ही सारा मजाक और बातचीत बन्द हो जानी चाहिए—मन मे प्रार्थना के विचारो के सिवा दूसरी कोई चीज नही होनी चाहिए । मन प्रार्थनामय हो जाना चाहिए ।

अब गाधीजी प्रार्थना-सभा के बीच रस्सियो से घिरे रास्ते मे चलने लगे । उन्होने प्रार्थना मे शामिल होने वाले लोगो के नमस्कारो का जवाब देने के लिए लडकियो के कन्धो से अपने हाथ उठा लिये । एकाएक भीड मे से कोई दाहिनी ओर से भीड को चीरता हुआ उस रास्ते पर आया । मनु ने यह सोचा कि वह आदमी बापू के पाव छूने को आगे बढ रहा है । इसलिए उसने उसको ऐसा करने के लिए झिडका, क्योकि प्रार्थना मे पहले ही देर हो चुकी थी । उसने रास्ते मे आने वाले आदमी का हाथ पकडकर उसे रोकने की कोशिश की । लेकिन उसने जोर से मनु को धक्का दिया, जिससे उसके हाथ की आश्रम-भजनावली, माला और बापू का पीकदान नीचे गिर गये । ज्योही वह बिखरी हुई चीजो को उठाने के लिए झुकी, वह आदमी बापू के सामने खडा हो गया—इतना नजदीक खडा था कि पिस्तौल से निकली हुई गोली का खोल बाद मे बापू के कपडे की पर्त मे उलझा हुआ मिला । सात कारतूसोंवाले आटोमेटिक पिस्तौल से जल्दी-जल्दी तीन गोलिया छूटी । पहली गोली नाभी से ढाई इच ऊपर और मध्य रेखा से साढे तीन इच दाहिनी तरफ पेट की बाजू मे लगी । दूसरी गोली, मध्य-रेखा से एक इच की दूरी पर दाहिनी तरफ घुसी और तीसरी गोली छाती की दाहिनी तरफ लगी । पहली और दूसरी गोली शरीर को पारकर पीठ से बाहर निकल आई । तीसरी गोली उनके फेफडे में ही रुकी रही । पहले वार मे उनका पाव, जो गोली लगने के वक्त आगे बढ रहा था, नीचे

आ गया। दूसरी गोली छोडी गई तबतक वे अपने पावो पर ही खडे थे, उसके बाद वे गिर गये। उनके मुह मे आखिरी शब्द "हे राम" निकले। उनका चेहरा राख की तरह सफेद पड गया। उनके सफेद कपडो पर गहरा सुर्ख धब्बा फैलता हुआ दिखाई पडा। उनके हाथ, जो सभा को नमस्कार करने के लिए उठे थे, धीरे-धीरे नीचे आ गये, एक हाथ आभा के गले मे अपनी स्वाभाविक जगह पर गिरा। उनका लड-खडाता हुआ शरीर धीरे से ढुलक गया। घबराई हुई मनु और आभा ने महसूस किया कि क्या हो गया है।

मै दूसरे दिन नोआखाली जाने की अपनी तैयारी पूरी करने के लिए शहर गया था और वहा से हाल मे ही लौटा था। प्रार्थना-सभा के मैदान तक बनी हुई पत्थर की कमानी के नीचे भी मै न पहुच पाया कि श्री चन्द्रावत सामने से दौडते हुए आये। उन्होने चिल्लाकर कहा, "डाक्टर को फोन करो। बापू को गोली मार दी गई है।" मै पत्थर की तरह जहा-का-तहा खडा रह गया, जैसे बुरा सपना देखा हो। मशीन की तरह मैने किसीके द्वारा डाक्टर को फोन करवाया।

हरएक को इस घटना से धक्का लगा। डा० राज सब्बरवाल ने, जो उनके पीछे आई, गाधीजी के सिर को धीरे से अपनी गोद मे रख लिया। उनका कापता हुआ शरीर डाक्टर के सामने आधा लेटा हुआ था और आखे अधमुदी थी। हत्यारे को बिडला-भवन के माली ने मजबूती से पकड लिया था। दूसरो ने भी उसका साथ दिया और थोडी खीचतान के बाद उसे काबू मे कर लिया। बापू का शात और ढीला पडा हुआ शरीर दोस्तो के द्वारा अन्दर ले जाया गया और उस चटाई पर उसे रखा गया, जिसपर बैठकर वे काम किया करते थे। मगर कुछ इलाज करने से पहले ही घडी की आवाज बन्द हो चुकी थी। उन्हे भीतर लाने के बाद उनको जो छोटा चम्मच भर शहद और गरम पानी पिलाया गया उसे भी वे पूरी तरह निगल न सके। करीब-करीब फौरन ही उनका अवसान हो गया।

डा० सुशीला बहावलपुर गई थी, जहा बापू ने उन्हे दया के मिशन पर भेजा था। डा० भार्गव, जिन्हे बुलावा भेजा था, आये और 'एड्रेनलिन' के लिए डा० सुशीला की सकट के समय काम मे आने वाली दवाइयो का सदूक पागल की तरह तलाश करने लगे। मैने उनसे दलील की कि वे उस दवाई को ढूढने की मेहनत न उठाये, क्योकि गाधीजी ने कई बार हमसे कहा है कि उनकी जान बचाने के लिए भी कोई निषिद्ध दवाई उनको न दी जाय। जैसे-जैसे बरस बीतते गये, उन्हे ज्यादा-ज्यादा विश्वास होता गया कि सिर्फ रामनाम ही उनकी और दूसरो की सारी बीमारियो

को दूर कर सकता है। थोड़े ही दिनो पहले अपने उपवास के दरमियान उन्होने यह सवाल पूछकर साइस की कमियो के बारे मे अपने मत को पक्का कर दिया था कि गीता मे जो यह कहा गया है 'एकाशेन स्थितो जगत्'—उसके एक अंग से सारा ससार टिका हुआ है—उसका क्या मतलब है ? रामनाम की सब बीमारियो को दूर करने की शक्ति पर अपने विश्वास के बारे मे बोलते हुए एक आह के साथ गांधीजी ने घनश्यामदासजी से कहा था, "अगर मै इसे अपने जीते-जी साबित नही कर सकता, तो वह मौत के साथ ही खत्म हो जायगा।" जैसाकि आखिर मे हुआ, डा० सुशीला की सकटकालीन दवाइयो मे एड्रेनलिन नही मिला। सयोग से एड्रेनलिन की जो एक मात्र शीशी सुशीला ने कभी ली थी वह नोआखाली के काजिर-खिल कैम्प मे टूट गई थी। गांधीजी उसकी इतनी कम परवाह करते थे।

उनके साथियो मे सबसे पहले सरदार वल्लभभाई पटेल आये। वे गांधीजी के पास बैठे और नाडी देखकर उन्होने खयाल कर लिया कि वह अब भी धीरे-धीरे चल रही है। डा० जीवराज मेहता कुछ मिनट बाद पहुचे। उन्होने नाडी और आखो की परीक्षा की और उदास और दुखी होकर सिर हिलाया। लडकिया सिसक उठी। लेकिन उन्होने तुरन्त दिल को कडा किया और रामनाम बोलने लगी। मृत शरीर के पास सरदार चट्टान की तरह अचल बैठे थे। उनका चेहरा उदास और पीला पड गया था। इसके बाद पडित नेहरू आये और बापू के कपडो मे अपना मुह छिपाकर बच्चे की तरह सिसकने लगे। इसके बाद देवदास आये। तब बापू के पुराने रक्षको मे से बचे हुए श्री जयरामदास, राजकुमारी अमृतकौर, आचार्य कृपलानी आये। कुछ देर बाद लार्ड माउण्टबेटन आये, तबतक बाहर लोगो की भीड इतनी बढ गई थी कि वे बडी मुश्किल से अन्दर आ सके। कडे दिल के योद्धा होने के कारण उन्होने एक पल भी नही गवाया और वे पडित नेहरू और मौलाना आजाद को दूसरे कमरे मे ले गये और महान् दुर्घटना से पैदा होनेवाले समस्याओ पर अपने राजनैतिक दिमाग से विचार करने लगे। एक सुझाव यह रक्खा गया कि मृत शरीर को मसाला देकर कुछ समय के लिए सुरक्षित रखा जाय, लेकिन इस बारे मे गांधीजी के विचार इतने साफ और मजबूत थे कि बीच मे पडना मेरे लिए जरूरी और पवित्र कर्त्तव्य हो गया। मैने उनसे कहा कि बापू मरने के बाद पार्थिव शरीर को पूजने का कडा विरोध करते थे। उन्होने मुझे कई बार कहा था, "अगर तुम मेरे बारे में ऐसा होने दोगे तो मै मौत में भी कोसूगा। मै जहा कही मरू, मेरी यह इच्छा है कि बिना किसी दिखावे या झमेले के मेरा दाह-सस्कार किया जाय।" डा० राजेन्द्र प्रसाद,

श्री जयरामदास और डा० जीवराज मेहता ने मेरी बात का समर्थन किया। इस-लिए मृत शरीर को ममाला देकर रखने का विचार छोड़ दिया गया। बाकी रात गीता के श्लोक और सुखमणि साहब के भजन मीठे राग में गाये जाते रहे और बाहर दुःख से पागल बने लोगों की भीड़ दर्शन के लिए कमरे के चारों तरफ इकट्ठी होती रही। आखिरकार मृत शरीर को ऊपर ले जाकर बिड़ला-भवन के छज्जे पर रखना पड़ा, ताकि सब लोग दर्शन कर सकें।

सुबह जल्दी ही शरीर को हिन्दू-विधि के अनुसार नहलाया गया और कमरे के बीच में फूलों से ढककर रख दिया गया। विदेशी राजदूत, सुबह थोड़ी देर बाद आये और उन्होंने बापू के चरणों पर फूलों की मालाएं रखकर अपनी मान श्रद्धांजलि अर्पित की।

अवसान के दो दिन पहले ही गांधीजी ने कहा था, "मेरे लिए इससे प्यारी चीज क्या हो सकती है कि मैं हंसते-हंसते गोलियों की बौछार का सामना कर सकूं?" और मालूम होता है, भगवान् ने उन्हें यह वरदान दे दिया।

११ बजे हमारे सबके अन्तिम प्रणाम करने के बाद मृत शरीर अर्थी पर रखा गया। उस समय तक रामदास गांधी हवाई जहाज द्वारा नागपुर से आ पहुंचे थे। डा० सुशीला नायर सबसे आखिर में पहुंची, जब अर्थी रवाना होने वाली थी। उन्हें इस बात का बड़ा दुःख था कि बापू के आखिरी समय में वह उनके पास नहीं रह सकी। लेकिन इस बात के लिए उन्होंने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि वह अन्तिम दर्शन के समय पहुंच गई।

उस रात डा० सुशीला बार-बार बहुत दुःखी होकर चिल्लाती रहीं "आखिर मुझे यह सजा क्यों?" देवदास ने उन्हें आश्वासन देने की कोशिश की "यह सजा नहीं है। बापू के आखिरी मिशन को पूरा करने में जुटे रहना बड़े गौरव की बात है—यह बापू का उसीको सौंपा हुआ आखिरी काम था।" बापू की यह एक विशेषता थी कि जिन्हें उन्होंने बहुत दिया था, उनसे वे और ज्यादा की आशा रखते थे।

जब मैं बापू का अपार शांति, क्षमा, सहिष्णुता और दया से भरा आकर्षक और उदास चेहरा ध्यान से देखने लगा, तो मेरे दिमाग में उस समय से लेकर —जब मैं कालेज के विद्यार्थी रूप में चौंधियानेवाले सपनों और उज्ज्वल आशाओं से भरा बापू के पास आकर उनके चरणों में बैठा था—आजतक के २८ लम्बे वर्षों के निकटतम और अटूट सम्बन्ध का पूरा दृश्य बिजली की गति से घूम गया

और वे वर्ष कौम के बोझ से कितने लदे हुए थे।

जो कुछ हुआ था, उसके अर्थ पर मै विचार करने लगा। पहले मै घबराहट महसूस करने लगा, लेकिन बाद मे धीरे-धीरे यह पहेली अपनी आप सुलझने लगी। उस दिन जब बापू ने एक आदमी के भी अपना फर्ज पूरी और अच्छी तरह अदा करने के बारे मे कहा था, मुझे ताज्जुब हुआ था कि आखिर उनके कहने का ठीक-ठीक मतलब क्या है? उनकी मृत्यु ने उसका जवाब दे दिया। पहले जब गाधीजी उपवास करते तो वे दूसरो से प्रार्थना करने के लिए कहते थे। वे कहा करते थे, "जबतक पिता बच्चो के बीच है तबतक उन्हे खेलना और खुशी से उछलना-कूदना चाहिए। जब मै चला जाऊगा तब आज मै जो कुछ कर रहा हू वह सब वे करेगे।" मगर बापू ने जो आजादी हमारे लिए जीती है, यदि उसका फल हमे भोगना है, तो उनकी मौत ने हमे वह रास्ता दिखा दिया है, जिस पर हमे चलना है।

: २ :

अन्तिम प्रार्थना-प्रवचन

२९ जनवरी १९४८

भाइयो और बहनो,

मेरे सामने कहने को चीज तो काफी है, उनमे से जो आज के लिए चुननी चाहिए, वे चुन ली है। छ चीजे है। पद्रह मिनट मे जितना कह सकूगा, कहूगा।

एक बात तो देख रहा हू कि थोडी देर हो गई है—यह होनी नही चाहिए थी। सुशीला बहन बहावलपुर चली गई है। बहावलपुर मे दु खी आदमी है उनको देखने के लिए चली गई है—दूसरा अधिकार तो कोई है नही और न हो सकता था। फ्रेड्स सर्विस के लेस्ली क्रॉस के साथ चली गई है। फ्रेड्स यूनिट मे से किसी को भेजने का मैने इरादा किया था, ताकि वह वहा लोगो को देखे, मिले, और मुझ-को वहा के हाल बता दे। उस वक्त सुशीला बहन के जाने की बात नही थी, लेकिन जब सुशीला बहन ने सुन लिया तो उसने मुझसे कहा कि इजाजत दे दो तो मै क्रॉस साहब के साथ चली जाऊ। वह जब नोआखाली मे काम करती थी तबसे वह उनको

जानती थी। वह आखिर कुशल डाक्टर है और पंजाब के गुजरात की है, उसने भी काफी गंवाया है, क्योंकि उसकी तो वहां काफी जायदाद है, फिर भी दिल में कोई जहर पैदा नहीं हुआ है। तो उसने बताया कि मैं वहां क्यों जाना चाहती हूं, क्योंकि मैं पंजाबी बोली जानती हूं, हिन्दुस्तानी जानती हूं, उर्दू और अंग्रेजी भी जानती हूं तो वहां मैं कॉस साहब को मदद दे सकूंगी। तो मैं यह सुनकर खुश हो गया। वहां खतरा तो है, लेकिन उसने कहा कि मुझको क्या खतरा है, ऐसा डरती तो नोआखाली क्यों जाती? पंजाब में बहुत लोग मर गए हैं, बिल्कुल मटियामेट हो गए हैं, लेकिन मेरा तो ऐसा नहीं है, खाना-पीना सब मिल जाता है, ईश्वर सब करता है। अगर आप भेज दें और कॉस साहब मेरे को ले जायं तो मैं वहां के लोगों को देख लूंगी। तो मैंने कॉस साहब से पूछा कि क्या आपके साथ सुशीला बहन को भेजूं? तो वे खुश हो गए और कहा कि यह तो बड़ी अच्छी बात है। मैं उनके मारफत से दूसरों से अच्छी तरह बातचीत कर लूंगा। मित्रवर्ग में हिन्दुस्तानी जानने वाला कोई रहे तो वह बड़ी भारी चीज हो जाती है। उससे बेहतर क्या हो सकता है? वे रेडक्रास के हैं। रेडक्रास के माने यह है कि लड़ाई में जो मरीज हो जाते हैं उनको दवा देने का काम करना। अब तो दूसरा-तीसरा भी काम करते हैं। तो डाक्टर सुशीला कॉस साहब के साथ गई या डाक्टर सुशीला के साथ कॉस साहब गए हैं यह पेचीदा प्रश्न हो जाता है। लेकिन कोई पेचीदा है नहीं, क्योंकि दोनों एक-दूसरे के दोस्त हैं और दोनों एक-दूसरे को चाहते हैं, मोहब्बत करते हैं। वे सेवा-भाव से गए हैं, पैसा कमाना तो है नहीं। वे जो देखेंगे मुझे बतायंगे और सुशीला बहन भी बतायगी। मैं नहीं चाहता कि कोई ऐसा गुमान रखे कि वह तो डाक्टर है और कॉस साहब दूसरे हैं। कौन ऊंचा है, कौन नीचा है, ऐसा कोई भेदभाव न करे, लेकिन कॉस साहब, हैं तो औरत को आगे कर देते हैं और अपनेको पीछे रखते हैं। आखिर वे उनके दोस्त हैं। मैं एक बात और कह देना चाहता हूं कि नवाब साहब तो मुझको लिखते रहते हैं। मुझको कई लोग झूठ बात भी लिखते हैं तो उसे मानने का मेरा क्या अधिकार है। मैंने सोचा कि मुझको क्या करना चाहिए। तो बहावलपुर से जो आए हैं उनको बता दूं कि वे वहां से आयंगे तो मुझको सब बात बता देंगे।

अभी बन्नू के भाई लोग मेरे पास आ गए थे—शायद चालीस आदमी थे। वे परेशान तो हैं, लेकिन ऐसे नहीं हैं कि चल नहीं सकते थे। हां, किसी की छाती में घाव लगे थे, कहीं कुछ था, ऐसे थे। मैंने तो उनका दर्शन ही किया और कहा कि जो कुछ कहना है बृजकिशनजी से कह दें, लेकिन उतना समय ले कि मैं उन्हें सुना

नही हू । वे सब भले आदमी थे । गुस्से से भरे होना चाहिए था, लेकिन फिर भी वे मेरी वात मान गए । एक भाई थे, वे शरणार्थी थे या कौन थे, मैंने पूछा नही । उसने कहा कि तुमने बहुत खरावी तो कर ली है, क्या और करते जाओगे ? इससे बेहतर है कि जाओ । बड़े है, महात्मा है तो क्या, हमारा काम तो बिगाडते ही हो । तुम हम को छोड दो, भूल जाओ, भागो । मैंने पूछा, कहा जाऊ ? उन्होने कहा, तुम हिमालय जाओ । तो मैंने डाटा । वे मेरे जितने बुजुर्ग नही है—वैसे बुजुर्ग है, तगडे है, मेरे जैसे पाच-सात आदमी को चट कर सकते है । मै तो महात्मा रहा, घवराहट मे पड जाऊ तो मेरा क्या हाल होगा । तो मैंने हँसकर कहा कि क्या मै आपके कहने मे जाऊ? किसकी वात सुनू ? क्योकि कोई कहता है कि यही रहो, कोई तारीफ करता है, कोई डाटता है, कोई गाली देता है तो मै क्या करू ? ईश्वर जो हुक्म करता है वही मै करता हू । आप कह सकते है कि आप ईश्वर को नही मानते है तो इतना तो करे कि मुझे अपने दिल के अनुसार करने दे । आप कह सकते है कि ईश्वर तो हम है । मैंने कहा तो परमेश्वर कहा जायगा ? ईश्वर तो एक है । हा, यह ठीक है कि पच परमेश्वर है लेकिन यह पच का सवाल नही है । दु खी का बेली* परमेश्वर है, लेकिन दु खी खुद परमात्मा नही । जब मै दावा करता हू कि जो हर एक स्त्री है, मेरी सगी बहन है, लडकी है तो उसका दु ख मेरा दु ख है । आप ऐसा क्यो मानते है कि मै दु ख को नही जानता । आपके दु खो मे मै हिस्सा नही लेता । मै हिन्दुओ और सिखो का दुश्मन हू और मुसलमानो का दोस्त हू । उसने साफ-साफ कह दिया । कोई गाली देकर लिखता है, कोई विवेक से लिखता है कि हमको छोड दो, चाहे हम दोजख मे जाय तो क्या ? तुमको क्या पडी है, तुम भागो ? मै किसीके कहने मे कैसे भाग सकता हू ? किसीके कहने से मै खिदमतगार नही बना हू । किसीके कहने मे मै मिट नही सकता हू, ईश्वर के चाहने मे मै जो हू बना हू । ईश्वर को जो करना है करेगा । ईश्वर चाहे तो मुझको मार सकता है । मै समझता हू कि मै ईश्वर की वात मानता हू । एक डाटता है, दूसरे लोग मेरी तारीफ करते है, तो मै क्या करू । मै हिमालय क्यो नही जाता ? वहा रहना तो मुझको पसद पडेगा । ऐसा नही है कि मुझको वहा खाने, पीने, ओढने को नही मिलेगा—वहा जाकर शाति मिलेगी, लेकिन मै अशाति मे से शाति चाहता हू नही तो उस अशाति में मर जाना चाहता हू । मेरा हिमालय यही है । आप सब हिमालय चले तो मुझको भी आप लेते चले ।

मेरे पास शिकायते आती है—सही शिकायते है—कि यहा शरणार्थी पडे है,

* (गुज०) मुरब्बी, सहायता करनेवाला ।

उनको खाना देते है, पीना देते है, पहनने को देते है, जो हो सकता है सब करते है, लेकिन वे मेहनत नही करना चाहते है, काम नही करना चाहते है। जो उनकी खिदमत करते है उन लोगो ने लबा-चौडा लिख कर दिया है, उसमे से मै इतना ही कह देता हू। मैने तो कह दिया है कि अगर दुःख मिटाना चाहते है, दुःख में से सुख निकालना चाहते है, दुःख में भी हिन्दुस्तान की सेवा करना चाहते है, साथ मे अपनी भी सेवा हो जाती है, तो दुखियो को काम तो करना ही चाहिए। दुखी को ऐसा हक नही है कि वह काम न करे और मौज-शौक करे। गीता में तो कहा है, 'यज्ञ करो और खाओ'—यज्ञ करो और शेष रह जाता है उसको खाओ। यह मेरे लिए है और आप के लिए नही है ऐसा नही है—सबके लिए है। जो दुखी है उनके लिए भी है। एक आदमी कुछ करे नही, बैठा रहे और खाय तो ऐसा हो नही सकता। करोडपति भी काम न करे और खावे तो वह निकम्मा है, पृथ्वी पर भार है। जिस आदमी के घर पैसा भी है वह भी मेहनत करके खाए तब बनता है। हा कोई लाचारी है—पैर नही चल सकता है या अधा है, या वृद्ध हो गया है तो बात दूसरी है, लेकिन जो तगडा है, वह क्यो न करे ? जो काम कर सकता है वह काम करे। शिविर में जो तगडे पडे है वे पाखाना भी उठाए। चर्खा चलाए। जो काम बन सकता है, करें। जो काम नही जानते है वे काम लडको को सिखाए, इस तरह से काम ले। लेकिन कोई कहे कि केम्ब्रिज मे जैसे सिखाते है वैसे सिखाए, मै, मेरा बाबा तो केम्ब्रिज मे सीखा था तो लडको को भी वहा भेजे, तो यह कैसे हो सकता है ? मै तो इतना ही कहूगा कि जितने शरणार्थी है वे काम करके खाए। उन्हे काम करना ही चाहिए।

आज एक सज्जन आए थे। उनका नाम तो मै भूल गया। उन्होंने किसानो की बात की। मैने कहा, मेरी चले तो हमारा गवर्नर-जनरल किसान होगा, हमारा बडा वजीर किसान होगा, सब कुछ किसान होगा, क्योंकि यहा का राजा किसान है। मुझे बचपन से सिखाया था—एक कविता है, "हे किसान, तू बादशाह है।" किसान जमीन मे पैदा न करे तो हम क्या खायगे ? हिन्दुस्तान का सचमुच राजा तो वही है। लेकिन आज हम उसे गुलाम बनाकर बैठे है। आज किसान क्या करे ? एम० ए० बने, बी०ए० बने ?—ऐसा किया, तो किसान मिट जायगा, पीछे वह कुदाली नही चलायगा। जो आदमी अपनी जमीन मे से पैदा करता है और खाता है, सो जनरल बने, प्रधान बने, तो हिन्दुस्तान की शक्ल बदल जायगी। आज जो सडा पडा है, वह नही रहेगा।

मद्रास मे खुराक की तगी है। मद्रास सरकार की तरफ से दूत यह कहने के

लिए श्री जयरामदास के पास आए थे कि वे उस सूबे के लिए अन्न देने का बन्दोबस्त करे। मुझे मद्रासवालो के इस रुख से दुख होता है। मै मद्रास के लोगो को यह समझाना चाहता हू कि वे अपने ही सूबे मे मूगफली, नारियल और दूसरे खाद्य पदार्थो के रूप मे काफी खुराक पा सकते है। उनके यहा मछली भी काफी है, जिन्हे उनमे से ज्यादातर लोग खाते है। तब उन्हे भीख मॉगने के लिए बाहर निकलने की क्या जरूरत है? उनका चावल का आग्रह रखना—वह भी पालिश किया हुआ चावल, जिसके सारे पोषक तत्व मर जाते है—या चावल न मिलने पर मजबूरी से गेहू मजूर करना ठीक नही है। चावल के आटे मे वे मूगफली या नारियल का आटा मिला सकते है और इस तरह अकाल के भेडिये को आने से रोक सकते है। उन्हे जरूरत है आत्म-विश्वास और श्रद्धा की। मद्रासियो को मै अच्छी तरह से जानता हू और दक्षिण-अफ्रीका मे उस प्रात के सभी भाषावाले हिस्सो के लोग मेरे साथ थे। सत्याग्रह कूच के वक्त उन्हे रोजाना के राशन मे सिर्फ डेढ पौड रोटी और एक औस शक्कर दी जाती थी। मगर जहा कही उन्होने रात को डेरा डाला, वहा जगल की घास मे से खाने लायक चीजें चुनकर और मजे से गाते हुए उन्हे पकाकर उन्होने मुझे अचरज मे डाल दिया। ऐसे सूझ-बूझ वाले लोग कभी लाचारी कैसे महसूस कर सकते है? यह सच है कि हम सब मजदूर थे। और, ईमानदारी से काम करने मे ही हमारी मुक्ति और हमारी सभी आवश्यक जरूरतो की पूर्ति भरी है।